समकालीनों की नज़रों में मार्क्स और एंगेल्स

संस्मरण

फ़्रेडरिक एंगेल्स
व्ला० इ० लेनिन
पाल लफ़ार्ग
विल्हेल्म लीब्कनेख़्त
फ़्रेडरिक लेसनर
फ़्रेडरिक अदोल्फ़ ज़ोर्गे
ग० अ० लोपातिन
जेनी मार्क्स
एल्योनोरा मार्क्स-एवेलिंग
एडगर लान्गे
फ़्रांसिस्का कुगेलमान
नि० मोरोज़ोव
एडुअर्ड एवेलिंग
फ़० म० कव्चीन्स्काया

प्रगति प्रकाशन ● मास्को

अनुवादक : सुरेन्द्र बालूपुरी

सम्पादक : मदन लाल 'मधु'

पाठकों से

प्रगति प्रकाशन इस पुस्तक के अनुवाद और डिज़ाइन के बारे में आपके विचार जानकर आपका अनुगृहीत होगा। आपके अन्य सुझाव प्राप्त करके भी हमें बड़ी प्रसन्नता होगी। कृपया हमें इस पते पर लिखिये :

प्रगति प्रकाशन,
२१, ज़ूबोव्स्की बुलवार,
मास्को, सोवियत संघ।

ВОСПОМИНАНИЯ
О МАРКСЕ И ЭНГЕЛЬСЕ

на языке хинди

कार्ल मार्क्स की क़ब्र पर भाषण

१४ मार्च को तीसरे पहर, पौने तीन बजे, संसार के सबसे महान् विचारक की चिन्तन-क्रिया बन्द हो गयी। उन्हें मुश्किल से दो मिनट के लिए अकेला छोड़ा गया होगा, लेकिन जब हम लोग लौटे तो देखा कि वे आरामकुर्सी पर शान्ति से सो गये हैं—परन्तु सदा के लिए।

इस मनुष्य की मृत्यु से यूरोप और अमरीका के जुझारू सर्वहारा वर्ग और ऐतिहासिक विज्ञान की अपार क्षति हुई है। इस ओजस्वी आत्मा के महाप्रयाण से जो अभाव पैदा हो गया है, लोग शीघ्र ही उसे अनुभव करेंगे।

जैव जगत में जैसे डार्विन ने विकास के नियम का पता लगाया था, वैसे ही मार्क्स ने मानव-इतिहास में विकास के नियम का पता लगाया। उन्होंने इस सीधी-सादी सचाई का पता लगाया—जो अब तक विचारधारात्मक आवरण से ढंकी हुई थी—कि राजनीति, विज्ञान, कला, धर्म आदि की ओर ध्यान दे सकने के पूर्व मनुष्य को खाना-पीना, पहनना-ओढ़ना और सिर के ऊपर साया चाहिए। इसलिये जीविका के तात्कालिक भौतिक साधनों का उत्पादन और फलतः किसी युग में अथवा किसी जाति द्वारा उपलब्ध आर्थिक विकास की अवस्था ही वह आधार है जिस पर राजकीय संस्थाओं, क़ानूनी धारणाओं, कला और यहां तक कि धार्मिक धारणाओं का भी विकास होता है। इसलिए उसके ही प्रकाश में इन सब की व्याख्या की जानी चाहिए, न कि इसके उलटे, जैसा कि अब तक होता रहा है।

परन्तु इतना ही नहीं, मार्क्स ने गति के उस विशेष नियम का भी

पता लगाया जिससे उत्पादन की वर्तमान पूंजीवादी प्रणाली ग्रौर इस प्रणाली से उत्पन्न पूंजीवादी समाज, दोनों ही नियंत्रित हैं। अतिरिक्त मूल्य के आविष्कार से एकबारगी उस समस्या पर प्रकाश पड़ा जिसे हल करने की कोशिश में पूंजीवादी अर्थशास्त्रियों ग्रौर समाजवादी आलोचकों दोनों द्वारा किया गया अब तक का सारा अन्वेषण अन्ध-अन्वेषण ही था।

ऐसे दो आविष्कार एक जीवन के लिए काफ़ी हैं। वह मनुष्य भी भाग्यशाली कहा जाता, जिसे इस तरह का एक भी आविष्कार करने का सौभाग्य प्राप्त होता। परन्तु जिस भी क्षेत्र में मार्क्स ने खोज की – ग्रौर उन्होंने बहुत-से क्षेत्रों में, यहां तक कि गणित के क्षेत्र में भी, खोज की – एक में भी सतही छानबीन तक सीमित न रहकर स्वतंत्र खोजें कीं।

ऐसे वैज्ञानिक थे वे। परन्तु वैज्ञानिक का उनका रूप उनके समग्र व्यक्तित्व का मुख्य अंश भी न था। मार्क्स के लिए विज्ञान ऐतिहासिक रूप से गति प्रदान करनेवाली एक क्रान्तिकारी शक्ति था। वैज्ञानिक सिद्धान्तों में किसी भी नयी खोज से, जिसके व्यावहारिक प्रयोग का अभी अनुमान लगाना सर्वथा असंभव हो, उन्हें कितनी भी प्रसन्नता क्यों न होती उसकी तुलना में उस खोज से उन्हें बिलकुल दूसरे ही ढंग की प्रसन्नता का अनुभव होता जिससे उद्योग-धन्धों ग्रौर सामान्यत: ऐतिहासिक विकास में कोई तात्कालिक क्रान्तिकारी परिवर्तन होते दिखाई देते। उदाहरण के लिए बिजली के क्षेत्र में हुए आविष्कारों के विकासक्रम का ग्रौर मरसै देप्रे* के हाल के आविष्कारों का मार्क्स बड़े ग़ौर से अध्ययन करते थे।

मार्क्स सर्वोपरि क्रान्तिकारी थे। जीवन में उनका असली उद्देश्य किसी न किसी तरह पूंजीवादी समाज ग्रौर उससे पैदा होनेवाली राजकीय संस्थाओं के ध्वंस में योगदान करना था, आधुनिक सर्वहारा वर्ग को आजाद करने में योग देना था, जिसे सबसे पहले उन्होंने ही अपनी स्थिति ग्रौर आवश्यकताओं के प्रति सचेत किया ग्रौर बताया कि किन परिस्थितियों में उसका उद्धार हो सकता है। संघर्ष करना उनका सहज गुण था। उन्होंने जिस जोश, जिस लगन ग्रौर जिस सफलता के साथ संघर्ष किया,

---

*देप्रे, मरसै (१८४३–१९१८) – फ़्रांसीसी भौतिकज्ञ, दूरी पर विद्युत्-संचार प्रणाली के जनक। – सं०

कार्ल मार्क्स, १८७२

फ्रेडरिक एंगेल्स, १८७२

जेनी फ़ॉन वेस्टफ़ालेन – मार्क्स की पत्नी

कार्ल मार्क्स, फ्रेडरिक एंगेल्स तथा मार्क्स की बेटियां—
जेनी, एल्योनोरा तथा लौरा (सातवां दशक)

उसकी बहुत कम मिसालें हो सकती हैं। प्रथम *«Rheinische Zeitung»* (१८४२), पेरिस के *«Vorwärts!»* (१८४४), *«Deutsche-Brüsseler-Zeitung»* (१८४७), *«Neue Rheinische Zeitung»* (१८४८–१८४९), *«New York Daily Tribune»* (१८५२–१८६१) में उनका काम *, इनके अलावा अनेक जुझारू पुस्तिकाओं की रचना, पेरिस, ब्रसेल्स और लन्दन के संगठनों में काम और अन्ततः उनकी चरम उपलब्धि – महान अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर संघ की स्थापना ** – जो इतनी बड़ी उपलब्धि थी कि इस संगठन का संस्थापक, चाहे उसने और कुछ भी न किया होता, उस पर उचित ही गर्व कर सकता था।

इस सब के फलस्वरूप मार्क्स अपने युग के सबसे अधिक घृणित तथा लांछित व्यक्ति थे। निरंकुशतावादी और जनतंत्रवादी, दोनों ही तरह की सरकारों ने उन्हें अपने राज्यों से निकाला। पूंजीपति, चाहे वे रूढ़िवादी हों चाहे घोर जनवादी, मार्क्स को बदनाम करने में एक दूसरे से होड़ करते थे। मार्क्स इस सब को यूं झटकारकर अलग कर देते थे जैसे वह मकड़ी का जाला हो, उसकी जरा भी परवाह न करते थे, बहुत जरूरी होने पर ही उत्तर देते थे। और अब वह इस संसार में नहीं हैं। साइबेरिया की खानों से लेकर कैलिफ़ोर्निया तक, यूरोप और अमरीका के सभी भागों में उनके लाखों क्रान्तिकारी साथी जो उन्हें प्यार करते थे, उनके प्रति श्रद्धा रखते थे, आज उनके निधन पर आंसू बहा रहे हैं। मैं यहां तक कह सकता हूं कि चाहे उनके विरोधी बहुत-से रहे हों, परन्तु उनका व्यक्तिगत शत्रु शायद ही कोई रहा हो।

उनका नाम और वैसे ही उनका काम भी युग-युगों तक अमर रहेगा!

१७ मार्च, १८८३

---

* मार्क्स *«Rheinische Zeitung»* तथा *«Neue Rheinische Zeitung»* के संपादक थे तथा अन्य समाचारपत्रों के सम्पादक मण्डल के सहकर्मी थे। – सं०

** अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर संघ (पहला इंटरनेशनल) १८६४ में मार्क्स द्वारा स्थापित किया गया तथा १८७२ तक क़ायम रहा। वह सर्वहारा पार्टी का बीज रूप था। – सं०

व्ला० इ० लेनिन

कार्ल मार्क्स*

कार्ल मार्क्स का जन्म ५ मई, १८१८ को त्रियेर नगर (प्रशा के राइन प्रान्त) में हुआ था। उनके पिता एक वकील, यहूदी थे, जिन्होंने १८२४ में प्रोटेस्टेंट मत अंगीकार किया था। यह परिवार समृद्ध और सुसंस्कृत, परंतु क्रांतिकारी नहीं था। त्रियेर के हाई स्कूल में शिक्षा पाने के बाद, मार्क्स पहले बोन, फिर बर्लिन विश्वविद्यालय में दाख़िल हुए। वहां उन्होंने क़ानून पढ़ा और मुख्यतः इतिहास और दर्शनशास्त्र का अध्ययन किया। १८४१ में एपीक्यूरस** के दर्शनशास्त्र पर अपनी थीसिस प्रस्तुत करके उन्होंने विश्वविद्यालय की शिक्षा पूर्ण की। इस समय तक मार्क्स हेगेलवादी-भाववादी थे। बर्लिन में वह ब्रूनो बावेर आदि "वामपंथी हेगेलवादियों" में से थे, जो हेगेल*** के दर्शन से अनीश्वरवादी और क्रान्तिकारी निष्कर्ष निकालना चाहते थे।

विश्वविद्यालय से डिग्री लेने के बाद मार्क्स प्रोफ़ेसर बनने की आशा से बोन चले गये। परन्तु सरकार की प्रतिक्रियावादी नीति ने, जिसके फलस्वरूप १८३२ में लुडविग फ़ायरबाख़ को प्रोफ़ेसरी से अलग किया गया

---

*यहां व्ला० इ० लेनिन द्वारा लिखित कार्ल मार्क्स की संक्षिप्त जीवनी सम्बन्धी लेख का एक अंश दिया गया है। – सं०

**एपीक्यूरस (लगभग ३४१–२७० ई० पू०) – प्रख्यात प्राचीन यूनानी भौतिकवादी दार्शनिक, नास्तिक। – सं०

***हेगेल, गेओर्ग विल्हेल्म (१७७०–१८८१) – विख्यात जर्मन दार्शनिक, वस्तुगत भाववादी, भाववादी द्वन्द्ववाद के प्रणेता। – सं०

था, १८३६ में उनके विश्वविद्यालय में वापस आने पर रोक लगायी गयी थी, और १८४१ में नवयुवक प्रोफ़ेसर ब्रूनो बावेर को बोन में अध्यापन-कार्य करने से रोका गया था, मार्क्स को शैक्षिक वृत्ति का विचार तजने के लिये बाध्य किया। उस समय जर्मनी में वामपंथी हेगेलवाद के विचार ज़ोर पकड़ रहे थे। लुडविग फ़ायरबाख़ विशेष रूप से १८३६ के बाद धर्मदर्शन की आलोचना करने लगे थे और भौतिकवाद की ओर रुख़ कर रहे थे। १८४१ तक उनके दार्शनिक विचारों में भौतिकवाद की प्रधानता हो गयी थी ('ईसाई धर्म का सार')। १८४३ में उनकी पुस्तक 'भावी दर्शन के मूल सिद्धान्त' प्रकाशित हुई। फ़ायरबाख़ की इन कृतियों के बारे में एंगेल्स ने बाद में लिखा था – इन पुस्तकों ने जिस "स्वाधीन चेतना को जन्म दिया था, वह तो अनुभव करने की वस्तु थी"। "हम" (अर्थात मार्क्स समेत वामपंथी हेगेलवादी) "तुरन्त फ़ायरबाख़ के अनुयायी हो गये"। उस समय राइन प्रान्त के कुछ उग्रवादी पूंजीपतियों ने, जिनका वामपंथी हेगेलवादियों से सम्पर्क था, कोलोन में एक विरोधी पत्र *«Rheinische Zeitung»* (राइनी समाचारपत्र) निकाला (पहला अंक १ जनवरी १८४२ को निकला था)। मार्क्स और ब्रूनो बावेर से इसके प्रमुख मज़मून-निगार बनने का अनुरोध किया गया। अक्तूबर १८४२ में मार्क्स उसके प्रधान सम्पादक हो गये और बोन से कोलोन चले आये। मार्क्स के सम्पादन-काल में पत्र का रुझान अधिकाधिक क्रान्तिकारी-जनवादी होता गया, इसलिये सरकार ने पहले तो पत्र पर दोहरी और तेहरी सेन्सरी बिठायी, फिर १ जनवरी १८४३ से उसे एकदम बन्द ही कर देने का निश्चय कर लिया। मार्क्स को उस तिथि तक अपना त्यागपत्र देना पड़ा। परन्तु उनके अलग होने से भी पत्र बच नहीं सका। मार्च १८४३ में वह ठप हो गया। *«Rheinische Zeitung»* में प्रकाशित मार्क्स के अधिक महत्त्वपूर्ण लेखों में से एंगेल्स ने – उन लेखों के अतिरिक्त जिनका उल्लेख नीचे किया गया है (देखिये संदर्भ ग्रंथ-सूची*) – एक और लेख की चर्चा की है जो मार्क्स

---

*इस लेख के अन्त में जिसे व्ला० इ० लेनिन ने ग्रानात विश्वकोष के लिए १९१४ में लिखा था, मार्क्सवाद की तथा मार्क्सवाद सम्बन्धी साहित्य की समीक्षा दी गयी थी, जिसे प्रस्तुत पुस्तक में नहीं दिया गया है। – सं०

ने मोजेल घाटी के शराब बनानेवाले किसानों की स्थिति के बारे में लिखा था। मार्क्स ने पत्रकारिता के अपने अनुभव से जान लिया था कि अभी वे राजनीतिक अर्थशास्त्र से भली भांति परिचित नहीं हैं, इसलिये वे उसका अध्ययन करने में जुट गये।

सन् १८४३ में मार्क्स ने क्रेयत्स्नाख़ में जेनी फ़ॉन वेस्टफ़ालेन से विवाह किया। जेनी उनकी बचपन की मित्र थीं और मार्क्स जब विद्यार्थी थे, तभी जेनी के साथ उनकी सगाई हो गयी थी। जेनी का जन्म प्रशा के एक प्रतिक्रियावादी अभिजात परिवार में हुआ था। १८५०–१८५८ के अत्यन्त प्रतिक्रियावादी काल में उनका बड़ा भाई प्रशा का गृहमंत्री रहा था। १८४३ की शरद् में मार्क्स एक उग्रवादी पत्रिका निकालने के उद्देश्य से पेरिस गये। उनके साथ आर्नोल्ड रूगे भी थे (जीवन-काल १८०२–१८८०; वामपंथी हेगेलवादी, १८२५ से १८३० तक जेल में; १८४८ के बाद राजनीतिक उत्प्रवासी; १८६६–१८७० के बाद बिस्मार्क के अनुयायी)। इस पत्रिका का, जिसका नाम *«Deutsch-Französische Jahrbücher»* (जर्मन-फ़ांसीसी वार्षिक पत्रिका) था, केवल एक ही अंक प्रकाशित हुआ। जर्मनी में गुप्त वितरण की कठिनाइयों और रूगे से मतभेद होने के कारण उसे बन्द कर देना पड़ा। इस पत्रिका में प्रकाशित लेखों में ही मार्क्स के क्रांतिकारी रूप की झलक मिलती है। वे "समस्त वर्तमान वास्तविकता की निर्मम आलोचना", विशेषकर "शस्त्रों की आलोचना", की घोषणा और जनता और सर्वहारा वर्ग से अपील करते हैं।

सितम्बर १८४४ में फ़्रेडरिक एंगेल्स कुछ दिनों के लिये पेरिस आये और तभी से मार्क्स के घनिष्ठतम मित्र हो गये। पेरिस के क्रांतिकारी दलों के उबलते जीवन में दोनों ने सक्रिय भाग लिया (उस समय प्रूदों के मत का विशेष महत्व था जिसकी मार्क्स ने १८४७ में प्रकाशित 'दर्शनशास्त्र की दरिद्रता' नाम की अपनी पुस्तक में बखिया उधेड़ दिया)। निम्नपूंजीवादी समाजवाद के विभिन्न सिद्धान्तों से डटकर संघर्ष करते हुए उन्होंने क्रांतिकारी सर्वहारा समाजवाद या कम्युनिज़्म (मार्क्सवाद) के सिद्धान्त और कार्यनीति की रूपरेखा निश्चित की। (संदर्भ ग्रंथ-सूची में इस काल की, १८४४–१८४८ की मार्क्स की रचनाओं को देखिये।) १८४५ में प्रशा की सरकार के प्रबल आग्रह पर मार्क्स को एक ख़तरनाक क्रान्तिकारी क़रार देकर पेरिस से निर्वासित कर

दिया गया। पेरिस से वे ब्रसेल्स आ गये। १८४७ के वसन्त में मार्क्स और एंगेल्स एक गुप्त प्रचार-सभा 'कम्युनिस्ट लीग' के सदस्य हो गये। उसकी दूसरी कांग्रेस (लन्दन, नवम्बर १८४७) में उन्होंने प्रमुख भाग लिया, और उसके निर्देश पर उन्होंने अपना प्रसिद्ध 'कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र' तैयार किया, जो फ़रवरी १८४८ में प्रकाशित हुआ। इस रचना में प्रतिभापूर्ण स्पष्टता और भव्यता के साथ एक नया विश्वदृष्टिकोण – सुसंगत भौतिकवाद जिसका प्रसार सामाजिक जीवन तक हुआ है, विकास के सर्वांगीण और गहनतम सिद्धान्त के रूप में द्वंद्ववाद, वर्ग-संघर्ष का सिद्धान्त और एक नये, कम्युनिस्ट समाज के सृजनकर्त्ता, सर्वहारा वर्ग की विश्व-ऐतिहासिक क्रांतिकारी भूमिका – प्रस्तुत किया गया है।

फ़रवरी १८४८ की क्रान्ति भड़क उठने पर मार्क्स बेलजियम से निर्वासित कर दिये गये। वे पेरिस लौट आये और मार्च की क्रान्ति के बाद वहां से कोलोन, जर्मनी, चले गये। १ जून १८४८ से १६ मई १८४९ तक कोलोन से *«Neue Rheinische Zeitung»* (नया राइनी समाचारपत्र) निकलता रहा जिसके प्रधान सम्पादक मार्क्स थे। १८४८–१८४९ के क्रांतिकारी घटनाक्रम से नये सिद्धान्त की ज़ोरदार पुष्टि हुई जैसे कि बाद में भी संसार के सभी देशों के सर्वहारा और जनवादी आंदोलनों से उसकी पुष्टि हुई है। विजयी प्रतिक्रान्तिकारियों के उकसावे पर मार्क्स पर पहले तो मुक़दमा चलाया गया (६ फ़रवरी १८४९ को वे बरी कर दिये गये) और फिर १६ मई १८४९ को उन्हें जर्मनी से निकाल दिया गया। वे पहले पेरिस गये, जहां से १३ जून १८४९ के जुलूस के बाद उन्हें फिर निर्वासित कर दिया गया। इसके बाद वे लन्दन चले गये और फिर देहांत तक वहीं रहे।

जैसा कि मार्क्स और एंगेल्स के पत्र-व्यवहार (१९१३ में प्रकाशित) से साफ़ पता चलता है, प्रवास-जीवन अत्यन्त कठोर था। मार्क्स और उनके परिवार को दुःसह निर्धनता का सामना करना पड़ा। यदि एंगेल्स ने सदा निःस्वार्थ भाव से मार्क्स की आर्थिक सहायता न की होती, तो न केवल मार्क्स 'पूंजी' को ही पूरा न कर पाते, वरन् अभावग्रस्त होकर निश्चय ही मर मिटते। इसके अलावा निम्नपूंजीवादी समाजवाद और सामान्यतः ग़ैर-सर्वहारा समाजवाद के प्रचलित सिद्धान्तों और प्रवृत्तियों ने मार्क्स को निरन्तर ही निर्ममता से लड़ते रहने के लिये बाध्य किया। कभी-

कभी उन्हें बर्बर और बीभत्स व्यक्तिगत आक्षेपों का उत्तर देना पड़ता था («*Herr Vogt*»*)। प्रवासियों के राजनीतिक हलक़ों से दूर रहकर मार्क्स ने राजनीतिक अर्थशास्त्र के अध्ययन को अपना अधिकांश समय देते हुए, कई ऐतिहासिक कृतियों में (संदर्भ ग्रंथ-सूची देखिये) अपने भौतिकवादी सिद्धान्त को विकसित किया। 'राजनीतिक अर्थशास्त्र की समीक्षा का एक प्रयास' (१८५९) और 'पूंजी' (खंड १, १८६७) में मार्क्स ने इस विज्ञान को क्रान्तिकारी रूप प्रदान किया। (देखिये मार्क्स की शिक्षा)

छठे दशक के अन्तिम वर्षों तथा सातवें दशक में जनवादी आन्दोलनों की लहर फिर उठने लगी, इससे मार्क्स फिर राजनीतिक कार्यक्षेत्र में उतर पड़े। २८ सितम्बर १८६४ को लन्दन में 'अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर संघ'—प्रसिद्ध पहले इंटरनेशनल—की नींव डाली गयी। मार्क्स इस संगठन के प्राण थे। वे ही उसकी पहली 'अपील' और ढेरों प्रस्तावों, वक्तव्यों तथा घोषणापत्रों के लेखक थे। विभिन्न देशों के मजदूर आंदोलनों को एकताबद्ध करते हुए, ग़ैर-सर्वहारा, मार्क्सवाद से पहले के समाजवाद के विभिन्न रूपों (माज्जिनी, प्रूदों, बकूनिन, इंगलैंड में उदारतावादी ट्रेड-यूनियन आंदोलन, जर्मनी में लासाल के दक्षिणपंथी ढुलमुलपन) को एक संयुक्त मोर्चे में लाने की कोशिश करते हुए, इन सभी मतों और शाखाओं के सिद्धान्तों से संघर्ष करते हुए मार्क्स ने विभिन्न देशों में मजदूर वर्ग के सर्वहारा संघर्ष की एक ही कार्यनीति निश्चित की। पेरिस कम्यून के पतन (१८७१) के बाद—जिसका मार्क्स ने मर्मभेदी दृष्टि से, बड़ी स्पष्टता, अद्‌भुत सूझबूझ के साथ और अत्यन्त प्रभावशाली तथा क्रांतिकारी ढंग से विश्लेषण ('फ़्रांस में गृह-युद्ध', १८७१) किया था—और बकूनिनवादियों द्वारा इंटरनेशनल में फूट डाल दिये जाने के बाद इस संगठन का यूरोप में अस्तित्व असम्भव हो गया। इंटरनेशनल की हेग कांग्रेस (१८७२) के बाद मार्क्स के आग्रह पर उसकी जनरल कौंसिल को न्यूयार्क ले जाया गया। पहले इंटरनेशनल ने अपना ऐतिहासिक कार्य पूरा कर दिया। उसके बाद एक ऐसा युग आया जिसमें संसार के सभी देशों में मजदूर आन्दोलन का पहले से कहीं ज्यादा

---

* 'श्री फ़ोग्ट'—कार्ल मार्क्स की रचना, जो जर्मन पूंजीवादी जनवादी कार्ल फ़ोग्ट के विरुद्ध लिखा गया था।—सं०

विकास हुआ, जिसमें आंदोलन का प्रसार हुआ, उसकी परिधि विस्तृत हुई और अलग-अलग जातीय राज्यों में आम समाजवादी मजदूर पार्टियां बनीं।

इंटरनेशनल, और उससे भी ज्यादा अपने कठिन सैद्धान्तिक कार्यों में परिश्रम करने के कारण मार्क्स का स्वास्थ्य बिलकुल गिर गया था। वे राजनीतिक अर्थशास्त्र को नया रूप देने और 'पूंजी' को समाप्त करने के अपने काम में लगे रहे; इसके लिये उन्होंने बहुत सी नयी सामग्री एकत्रित की और कई भाषाएं (उदाहरण के लिये रूसी) सीखी, परन्तु अस्वस्थ रहने के कारण वे 'पूंजी' को पूरा न कर सके।

२ दिसम्बर १८८१ को उनकी पत्नी का देहान्त हो गया। १४ मार्च १८८३ को आरामकुर्सी पर बैठे-बैठे मार्क्स ने भी सदा के लिये आंखें मूंद लीं। वे लन्दन की हाईगेट सेमेट्री में अपनी पत्नी की क़ब्र की बगल में दफ़नाये गये। मार्क्स के बच्चों में से कुछ उनकी भयानक गरीबी की हालत में बचपन में ही लन्दन में मर गये। उनकी तीन बेटियों ने अंग्रेज और फ़ांसीसी समाजवादियों से शादी की। इन बेटियों के नाम है: एल्योनोरा एवेलिंग, लौरा लफ़ार्ग, जेनी लांग्वे। जेनी लांग्वे का बेटा फ़ांसीसी समाजवादी पार्टी का सदस्य है।

ब्ला० इ० लेनिन

फ़्रेडरिक एंगेल्स

कैसा अद्‌भुत बुद्धिदीप जो निर्वापित है!
कैसा अद्‌भुत हृदय, नहीं जो अब स्पन्दित है!"*

५ अगस्त, १८९५ को लन्दन में फ़्रेडरिक एंगेल्स का देहांत हुआ। अपने मित्र कार्ल मार्क्स (जिनका देहांत १८८३ में हुआ था) के बाद एंगेल्स ही सबसे विख्यात पंडित और समूचे सभ्य संसार के आधुनिक सर्वहारा वर्ग के शिक्षक थे। जब से भाग्य ने कार्ल मार्क्स और फ़्रेडरिक एंगेल्स को एक सूत्र में बांध दिया तब से ही इन दोनों मित्रों का जीवन-कार्य एक ही समान ध्येय को अर्पित हो गया। अतः फ़्रेडरिक एंगेल्स ने सर्वहारा वर्ग के लिए क्या कुछ किया, यह समझने के लिए समकालीन मजदूर आंदोलन के विकास के विषय में मार्क्स की शिक्षा और कार्य के महत्त्व की स्पष्ट धारणा आवश्यक है। सबसे पहले मार्क्स और एंगेल्स ने ही यह दिखाया कि अपनी मांगों समेत मजदूर वर्ग वर्तमान अर्थव्यवस्था का एक अनिवार्य परिणाम है जो पूंजीपति वर्ग के साथ-साथ अनिवार्य रूप से सर्वहारा वर्ग को जन्म देता है और उसे संगठित करता है। उन्होंने दिखा दिया कि आज मानवजाति को उसे उत्पीड़ित करनेवाली मुसीबतों के चंगुल

---

* न० अ० नेक्रासोव के 'दोब्रोल्यूबोव की स्मृति में' कविता से।—सं०

से मुक्त करने का कार्य कुछ उदारचित्त व्यक्तियों के सदाशयतापूर्ण प्रयत्नों से नहीं, बल्कि संगठित सर्वहारा के वर्ग-संघर्ष से संपन्न होगा। अपनी वैज्ञानिक रचनाओं में सबसे पहले मार्क्स और एंगेल्स ने ही यह स्पष्ट किया कि समाजवाद कोई स्वप्नदर्शियों की कल्पना नहीं, बल्कि आधुनिक समाज की उत्पादक शक्तियों के विकास का चरम लक्ष्य और अनिवार्य परिणाम है। आज तक का समूचा लिखित इतिहास वर्ग-संघर्ष का, किन्हीं सामाजिक वर्गों द्वारा दूसरे वर्गों पर प्रभुत्व जमाने और विजय पाने के सिलसिले का इतिहास रहा है। और यह तब तक जारी रहेगा जब तक वर्ग-संघर्ष और वर्ग-प्रभुत्व की बुनियादों – निजी संपत्ति और अव्यवस्थित सामाजिक उत्पादन का लोप नहीं हो जायेगा। सर्वहारा वर्ग के हितों की दृष्टि से इन बुनियादों का अवश्य नाश होना चाहिए और इसलिए संगठित मजदूरों के सचेतन वर्ग-संघर्ष का रुख़ इनके विरुद्ध मोड़ देना चाहिए। हर वर्ग-संघर्ष राजनीतिक संघर्ष है।

मार्क्स और एंगेल्स के ये विचार अब अपनी मुक्ति के लिए संघर्षरत सभी सर्वहाराओं ने अंगीकार कर लिये हैं। पर पांचवें दशक में, जब इन दोनों मित्रों ने अपने समय के समाजवादी साहित्य-सृजन और सामाजिक आंदोलनों में भाग लिया, ये मत पूर्णतया नवीन थे। उस समय बहुत-से ऐसे प्रतिभासम्पन्न और प्रतिभाहीन, ईमानदार और बेईमान लोग थे जो राजनीतिक स्वतंत्रता के संघर्ष में, राजा-महाराजाओं, पुलिस और पादरियों की स्वेच्छाचारिता के विरुद्ध संघर्ष में इस तरह लीन थे कि वे पूंजीपति वर्ग और सर्वहारा वर्ग के हितों के विरोध को न देख पाये। ये लोग इस विचार को स्वीकार करने तक को तैयार न थे कि मज़दूर एक स्वतंत्र सामाजिक शक्ति के रूप में काम करें। दूसरी ओर, कितने ही ऐसे स्वप्नदर्शी थे, और इनमें से कुछ प्रतिभाशाली भी थे, जो मानते थे कि बस, शासकों और प्रभुत्वसम्पन्न वर्गों को समकालीन सामाजिक व्यवस्था के अन्यायपूर्ण होने के बारे में विश्वास दिलाने भर की ज़रूरत है, फिर धरती पर शांति और आम ख़ुशहाली की स्थापना करना बायें हाथ का खेल हो जायेगा। वे बिना संघर्ष के समाजवाद के स्वप्न देखा करते थे। अंततः, उस समय के लगभग सभी समाजवादी और मज़दूर वर्ग के मित्र सर्वहारा को सामान्यतः व्रण मात्र मानते थे और यह देखकर भयग्रस्त होते

थे कि उद्योग की वृद्धि के साथ-साथ यह व्रण भी बढ़ता जा रहा था। अतः, वे सब इस बात पर विचार कर रहे थे कि उद्योग और सर्वहारा वर्ग का विकास, "इतिहास का चक्र" कैसे रोका जाये। सर्वहारा वर्ग के विकास के आम भय के विपरीत मार्क्स और एंगेल्स तो सर्वहारा वर्ग की अप्रतिहत वृद्धि पर ही अपनी सारी आस लगाये हुए थे। सर्वहाराओं की संख्या जितनी अधिक बढ़ेगी, क्रांतिकारी वर्ग के रूप में उनकी शक्ति उतनी ही अधिक होती जायेगी और समाजवाद उतना ही समीपतर और संभवतर बनता जायेगा। मार्क्स और एंगेल्स द्वारा की गयी मजदूर वर्ग की सेवाओं को कुछ शब्दों में यों व्यक्त किया जा सकता है : उन्होंने मजदूर वर्ग को स्वयं अपने को पहचानने और अपने प्रति सचेत होने की शिक्षा दी, और स्वप्न-दर्शन के स्थान पर विज्ञान की स्थापना की।

इसी लिए हर मजदूर को एंगेल्स के नाम और जीवन से परिचित होना चाहिए। यही कारण है कि इस लेख-संग्रह में जिसका उद्देश्य हमारे अन्य सभी प्रकाशनों की ही तरह रूसी मजदूरों में वर्ग-चेतना को जागृत करना है, हम आधुनिक सर्वहारा के दो महान शिक्षकों में से एक, फ़्रेडरिक एंगेल्स के जीवन और कार्य की रूपरेखा प्रस्तुत करना आवश्यक मानते हैं।

एंगेल्स का जन्म १८२० में प्रशा राज्य के राइन प्रान्त में स्थित बार्मेन नगर में हुआ था। उनके पिता कारख़ानेदार थे। पारिवारिक परिस्थितियों के कारण १८३८ में एंगेल्स को स्कूली शिक्षा पूरी किये बिना ही ब्रेमेन की एक कम्पानी में क्लर्क की नौकरी करनी पड़ी। पर एंगेल्स की वैज्ञानिक और राजनीतिक शिक्षा जारी रही, व्यापारिक मामले उसमें कोई बाधा न डाल सके। स्कूल के समय से ही वे निरंकुश शासन और पदाधिकारियों के अत्याचारों से घृणा करने लगे थे। दर्शन का अध्ययन उन्हें और आगे ले गया। उन दिनों जर्मन दर्शन पर हेगेल का मत छाया हुआ था और एंगेल्स उनके अनुयायी बन गये। यद्यपि स्वयं हेगेल निरंकुश प्रशियाई राज्य के प्रशंसक थे और बर्लिन विश्वविद्यालय के एक प्रोफ़ेसर के नाते उसकी सेवा कर रहे थे, फिर भी उनकी शिक्षा क्रांतिकारी थी। मनुष्य की तर्कबुद्धि और उसके अधिकारों में हेगेल का विश्वास और हेगेलवादी दर्शन का यह आधारभूत सिद्धान्त कि विश्व परिवर्तन और

विकास की एक सतत प्रक्रिया के अधीन है, बर्लिन के इस दार्शनिक के उन शिष्यों को, जो तत्कालीन परिस्थिति को अस्वीकार करते थे, इस विचार की ओर अग्रसर कर रहा था कि इस परिस्थिति के विरुद्ध संघर्ष की, वर्तमान अन्याय और फैली हुई बुराई के विरुद्ध संघर्ष की जड़ भी अनंत विकास के इस सर्वव्यापी नियम में ही निहित है। यदि संसार की प्रत्येक वस्तु विकास करती है, यदि एक प्रकार की संस्था दूसरे प्रकार की संस्था की जगह ले लेती है, तो क्या कारण है कि प्रशियाई राजा या रूसी ज़ार की निरंकुशता, विशाल बहुमत की हानि पर आधारित नगण्य अल्पमत की समृद्धि या जनता पर पूंजीपति वर्ग का प्रभुत्व सदैव बना रहे? हेगेल के दर्शन ने मन और भावों के विकास की बात की; यह **भाववादी** दर्शन था। उसने प्रकृति, मनुष्य और मानवीय, सामाजिक संबंधों के विकास को मन के विकास के परिणाम के रूप में ग्रहण किया। विकास की अनंत प्रक्रिया* विषयक हेगेल का विचार सुरक्षित रखते हुए मार्क्स और एंगेल्स ने अग्रधारित भाववादी दृष्टिकोण अस्वीकार किया; जीवन के तथ्यों की ओर मुड़ते हुए उन्होंने अवलोकन किया कि मन के विकास से प्रकृति के विकास को समझना सम्भव नहीं, बल्कि इसके विपरीत मन को प्रकृति द्वारा, भूतद्रव्य द्वारा ही समझा जा सकता है... हेगेल और अन्य हेगेलवादियों के विपरीत मार्क्स और एंगेल्स भौतिकवादी थे। संसार और मानवजाति को भौतिकवादी दृष्टिकोण से देखते हुए उन्होंने अनुभव किया कि जिस प्रकार प्रकृति के सभी व्यापारों के मूल में भौतिक कारण रहते हैं, उसी प्रकार मानव-समाज का विकास भी भौतिक शक्तियों, उत्पादक शक्तियों के विकास द्वारा निर्धारित होता है। मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अपेक्षित वस्तुओं के उत्पादन में मनुष्य मनुष्य के बीच जो परस्पर संबंध स्थापित होते हैं, वे उत्पादक शक्तियों के विकास पर ही निर्भर करते हैं। और इन संबंधों में ही सामाजिक जीवन के सभी व्यापारों,

---

* मार्क्स और एंगेल्स अक्सर कहा करते थे कि अपने बौद्धिक विकास के लिए वे महान जर्मन दार्शनिकों और विशेषकर हेगेल के ऋणी हैं। एंगेल्स कहते हैं: "जर्मन दर्शन के बिना वैज्ञानिक समाजवाद का जन्म ही न होता।" (लेनिन का नोट)

मानवीय आकांक्षाओं, विचारों और नियमों की व्याख्या निहित होती है। उत्पादक शक्तियों का विकास निजी संपत्ति पर आधारित सामाजिक संबंधों को जन्म देता है, पर अब हम जानते हैं कि उत्पादक शक्तियों का यही विकास बहुमत को उसकी संपत्ति से वंचित कर उसे नगण्य अल्पमत के हाथों में केंद्रित कर देता है। यह विकास संपत्ति को, अर्थात् आधुनिक सामाजिक व्यवस्था के आधार को नष्ट कर देता है, वह स्वयं उसी लक्ष्य की ओर बढ़ता है जिसे समाजवादी अपने सामने रखे हुए हैं। समाजवादियों को बस इतना ही समझने की जरूरत है कि कौनसी सामाजिक शक्ति वर्तमान समाज में अपनी स्थिति के कारण समाजवाद की स्थापना में दिलचस्पी रखती है, और यह समझकर इस शक्ति को उसके हितों और उसके ऐतिहासिक मिशन की चेतना प्रदान करनी चाहिए। यह शक्ति है सर्वहारा वर्ग। सर्वहारा वर्ग से एंगेल्स का परिचय इंगलैंड में, ब्रिटिश उद्योग के केंद्र मैंचेस्टर में हुआ जहां वे एक कम्पनी की नौकरी करके १८४२ में बस गये थे। उनके पिता इस कम्पनी के एक हिस्सेदार थे। यहां एंगेल्स बस फ़ैक्टरी के दफ़्तर में ही नहीं बैठे रहे, उन्होंने उन गंदी बस्तियों के चक्कर लगाये जहां मजदूर दरबों की सी जगहों में रहते थे। उन्होंने अपनी आंखों से उनकी दरिद्रता और दयनीय दशा देखी। पर वे केवल वैयक्तिक निरीक्षण करके ही नहीं रह गये। ब्रिटिश मजदूर वर्ग की स्थिति के संबंध में जो भी सामग्री प्रकाश में आ चुकी थी, उन्होंने वह सारी की सारी पढ़ डाली और जो भी सरकारी काग़ज़ात उपलब्ध हो सके, उन्होंने उन सब का भी ध्यान से अध्ययन किया। इन अध्ययनों और निरीक्षणों का फल १८४५ में प्रकाशित 'इंगलैंड के मजदूर वर्ग की स्थिति' नामक पुस्तक के रूप में प्रगट हुआ। 'इंगलैंड के मजदूर वर्ग की स्थिति' के लेखक के नाते एंगेल्स ने जो मुख्य सेवा की उसका उल्लेख हम पहले ही कर चुके हैं। एंगेल्स के पहले भी कितने ही लोगों ने सर्वहारा वर्ग के कष्टों का वर्णन और उसकी सहायता की आवश्यकता के प्रति संकेत किया था। पर एंगेल्स ही वह पहले व्यक्ति थे जिन्होंने कहा कि सर्वहारा वर्ग न केवल कष्टग्रस्त वर्ग है, पर यह कि वस्तुतः सर्वहारा वर्ग की घृणित आर्थिक स्थिति ही वह चीज है जो उसे अप्रतिहत रूप से आगे बढ़ा रही है और उसे अपनी पूर्ण मुक्ति के लिए लड़ने को विवश कर रही है। और संघर्षरत सर्वहारा वर्ग

स्वयं अपनी सहायता करेगा। मज़दूर वर्ग का राजनीतिक आंदोलन अनिवार्य रूप से मजदूरों को यह अनुभव करायेगा कि उनकी मुक्ति एकमात्र समाजवाद में निहित है। दूसरी ओर, मजदूर वर्ग के राजनीतिक संघर्ष का उद्देश्य बनने पर ही समाजवाद एक शक्ति बनेगा। ये है इंगलैंड के मजदूर वर्ग की स्थिति से संबंधित एंगेल्स की पुस्तक के मुख्य विचार। ये विचार अब सभी विचारशील और संघर्षरत सर्वहाराओं ने अंगीकार कर लिये है, पर उस समय वे पूर्णतया नवीन थे। इन विचारों का प्रकाशन हृदयग्राही शैली में लिखी हुई और ब्रिटिश सर्वहारा वर्ग की दयनीय दशा के अत्यंत प्रामाणिक और स्तंभित कर देनेवाले चित्रों से भरपूर एक पुस्तक में हुआ है। इस पुस्तक ने पूंजीवाद और पूंजीपति वर्ग को भयानक अपराधी क़रार दिया और लोगों पर गहरा असर डाला। तत्कालीन सर्वहारा वर्ग की स्थिति का सर्वोत्तम चित्र प्रस्तुत करनेवाली पुस्तक के रूप में एंगेल्स की इस रचना का सर्वत्र हवाला दिया जाने लगा। और वस्तुतः मज़दूर वर्ग की दयनीय दशा का इतना प्रभावोत्पादक और सत्यदर्शी चित्र न तो १८४५ के पहले और न उसके बाद ही और कहीं प्रस्तुत किया गया है।

इंगलैंड में आ बसने के बाद ही एंगेल्स समाजवादी बने। मैंचेस्टर में उन्होंने उस समय के ब्रिटिश मज़दूर आंदोलन में सक्रिय भाग लेनेवाले लोगों से संपर्क स्थापित किया और अंग्रेजी समाजवादी प्रकाशनों के लिए लेख लिखना आरंभ किया। १८४४ में जर्मनी लौटते समय पेरिस में मार्क्स से उनका परिचय हुआ। मार्क्स के साथ उनका पत्र-व्यवहार इससे पहले ही शुरू हो गया था। पेरिस में फ़्रांसीसी समाजवादियों और फ़्रांसीसी जीवन के प्रभाव से मार्क्स भी समाजवादी बन गये थे। यहां दोनों मित्रों ने मिलकर एक पुस्तक लिखी जिसका शीर्षक है 'पवित्र परिवार या आलोचनात्मक आलोचना की आलोचना'। यह पुस्तक 'इंगलैंड के मजदूर वर्ग की स्थिति' पुस्तक के एक वर्ष पहले प्रकाशित हुई और इसका अधिकांश मार्क्स ने लिखा। ऊपर जिस क्रांतिकारी-भौतिकवादी समाजवाद के मुख्य विचारों की व्याख्या हम कर चुके हैं उसके आधारभूत सिद्धान्त इस पुस्तक में प्रस्तुत किये गये हैं। 'पवित्र परिवार'—यह दार्शनिक बावेर बंधुओं और उनके अनुयायियों को दिया गया मज़ाक़िया लक़ब है। इन सज्जनों ने ऐसी आलोचना का ढिंढोरा पीटा जो समूची वास्तविकता के परे है, जो पार्टियों और राजनीति के परे

है, जो सारे व्यावहारिक क्रियाकलाप को ठुकरा देती है और जो केवल चारों ओर के संसार और उसमें घट रही घटनाओं का "आलोचनात्मक ढंग से" चिंतन करती है। इन सज्जनों ने, अर्थात् बावेर बंधुओं ने सर्वहारा वर्ग को नीची नज़र से देखते हुए उसे एक आलोचना-शून्य समूह माना। मार्क्स और एंगेल्स ने इस बेतुकी और हानिकारक प्रवृत्ति का जोरदार विरोध किया। एक वास्तविक मानवी व्यक्तित्व – अर्थात् शासक वर्गों और राज्य द्वारा पददलित मजदूर के नाम पर उन्होंने चिंतन की नहीं, बल्कि बेहतर समाज-व्यवस्था के लिए संघर्ष की मांग की। कहने की जरूरत नहीं कि वे सर्वहारा वर्ग को ही इस संघर्ष को चलाने में समर्थ और उसमें दिलचस्पी रखनेवाली शक्ति मानते थे। 'पवित्र परिवार' के प्रकाशित होने के पहले ही एंगेल्स मार्क्स और रूगे की 'जर्मन-फ़्रांसीसी पत्रिका' में 'राजनीतिक अर्थशास्त्र विषयक आलोचनात्मक निबंध' प्रकाशित कर चुके थे जिनमें उन्होंने समाजवादी दृष्टिकोण से समकालीन आर्थिक व्यवस्था के प्रधान व्यापारों का परीक्षण किया था और यह निष्कर्ष निकाला था कि वे निजी संपत्ति के प्रभुत्व के अनिवार्य परिणाम थे। राजनीतिक अर्थशास्त्र का अध्ययन करने के मार्क्स के निश्चय में निःसंशय एंगेल्स के साथ उनका संपर्क एक कारक तत्त्व था। इस विज्ञान के क्षेत्र में मार्क्स की रचनाओं ने वस्तुतः एक क्रांति कर दी।

१८४५ से १८४७ तक एंगेल्स ब्रसेल्स और पेरिस में रहे और वैज्ञानिक कार्य के साथ-साथ उन्होंने ब्रसेल्स और पेरिस के जर्मन मजदूरों के बीच अमली कार्रवाइयां भी कीं। यहां मार्क्स और एंगेल्स ने गुप्त जर्मन 'कम्युनिस्ट लीग' के साथ संपर्क स्थापित किया और लीग ने उन्हें उस समाजवाद के, जिसका उन्होंने निरूपण किया था मुख्य सिद्धांतों की व्याख्या करने का कार्य सौंप दिया। इस प्रकार मार्क्स और एंगेल्स के सुप्रसिद्ध 'कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र' का जन्म हुआ। यह १८४८ में प्रकाशित हुआ। यह छोटी-सी पुस्तिका अनेकानेक ग्रंथों से भी मूल्यवान है : आज भी उसकी जीवन्त भाव-धारा समूचे सभ्य संसार के संगठित और संघर्षरत सर्वहारा वर्ग को स्फूर्ति और प्रेरणा प्रदान करती है।

१८४८ की क्रान्ति ने, जो पहले फ़्रांस में भड़की और फिर पश्चिमी यूरोप के अन्य देशों में फैल गयी, मार्क्स और एंगेल्स को फिर से उनकी

मातृभूमि के दर्शन कराये। यहां, राइनी प्रशा में उन्होंने कोलोन से प्रकाशित होनेवाले जनवादी «*Neue Rheinische Zeitung*» की बागडोर अपने हाथों में ली। ये दोनों मित्र राइनी प्रशा की सारी क्रान्तिकारी-जनवादी आकांक्षाओं के केन्द्र और उत्स थे। जनता के हितों और स्वतंत्रता की रक्षा के लिए उन्होंने एड़ी-चोटी का ज़ोर लगाकर प्रतिक्रियावादी शक्तियों से लोहा लिया। जैसा कि हम जानते हैं, प्रतिक्रियावादी शक्तियों का पलड़ा भारी पड़ा। «*Neue Rheinische Zeitung*» का गला घोंट दिया गया। मार्क्स को, जो पिछले उत्प्रवासन-काल में अपनी प्रशियाई नागरिकता खो चुके थे, निर्वासित कर दिया गया; मगर एंगेल्स ने सशस्त्र जन-विद्रोह में भाग लिया, स्वतंत्रता के लिए तीन लड़ाइयों में जूझे और विद्रोहियों की पराजय के बाद स्विट्ज़रलैंड से होकर लन्दन भाग गये।

मार्क्स भी लन्दन में ही बस गये। एंगेल्स फिर एक बार मैंचेस्टर की उसी कम्पनी में क्लर्क और फिर हिस्सेदार बन गये जहां वे पांचवें दशक में काम करते थे। १८७० तक वे मैंचेस्टर में रहे जब कि मार्क्स लन्दन में रहते थे। फिर भी इससे उनके अत्यंत स्फूर्तिप्रद विचार-विनिमय के जारी रहने में कोई बाधा नहीं आयी: लगभग हर रोज उनकी चिट्ठी-पत्री चलती थी। इस पत्र-व्यवहार द्वारा दोनों मित्र विचारों एवं खोजों का आदान-प्रदान करते और वैज्ञानिक समाजवाद की रचना में उनका सहयोग जारी रहा। १८७० में एंगेल्स लन्दन चले गये और वहां उनका कठिन साधना का संयुक्त बौद्धिक जीवन १८८३ तक, अर्थात् मार्क्स के देहांत तक चलता रहा। इस साधना का फल मार्क्स की ओर से 'पूंजी' रहा, जो राजनीतिक अर्थशास्त्र के क्षेत्र में हमारे युग की सबसे महान रचना है, और एंगेल्स की ओर से कितनी ही छोटी और बड़ी रचनाएं। मार्क्स ने पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के जटिल व्यापारों के विश्लेषण पर काम किया। एंगेल्स ने सीधी-सादी और अक्सर खंडन-मंडनात्मक प्रकार की अपनी रचनाओं में इतिहास की भौतिकवादी धारणा और मार्क्स के आर्थिक सिद्धांत के प्रकाश में अधिक सामान्य वैज्ञानिक समस्याओं और अतीत तथा वर्तमान के विविध व्यापारों का विवेचन किया। एंगेल्स की इन रचनाओं में से हम निम्नलिखित रचनाओं का उल्लेख करेंगे: ड्यूहरिंग के विरुद्ध खंडन-मंडनात्मक रचना (जिसमें दर्शन, प्राकृतिक विज्ञान और सामाजिक विज्ञानों के क्षेत्र

की अत्यंत महत्त्वपूर्ण समस्याओं का विश्लेषण किया गया है)*, 'परिवार, निजी सम्पत्ति और राज्य की उत्पत्ति' (रूसी में अनूदित, सेंट-पीटर्सबर्ग में प्रकाशित, तृतीय संस्करण, १८९५), 'लुडविग फ़ायरबाख़' (टिप्पणियों सहित रूसी अनुवाद गे० प्लेख़ानोव द्वारा, जेनेवा, १८९२), रूसी सरकार की विदेश नीति के संबंध में एक लेख (जेनेवा के 'सोत्सिअल-देमोक्रात' के पहले और दूसरे अंकों में रूसी में अनूदित), आवास की समस्या पर कुछ उत्कृष्ट लेख, और अंत में, रूस के आर्थिक विकास के संबंध में दो छोटे-छोटे पर अतिमूल्यवान लेख ('रूस के संबंध में फ़्रेडरिक एंगेल्स के विचार', वेरा ज़ासुलिच द्वारा रूसी में अनूदित, जेनेवा, १८९४)। 'पूंजी' से संबंधित विशाल काम पूरा होने के पहले ही मार्क्स का देहांत हो गया। फिर भी पुस्तक अपने मूल रूप में तैयार हो चुकी थी। अपने मित्र की मृत्यु के बाद एंगेल्स ने 'पूंजी' के द्वितीय और तृतीय खंडों की प्रकाशनार्थ तैयारी और प्रकाशन का श्रम-साध्य काम अपने कंधों पर लिया। उन्होंने द्वितीय खंड १८८५ में और तृतीय खंड १८९४ में प्रकाशित किया (चतुर्थ खंड तैयार होने के पहले ही उनकी मृत्यु हो गई)। उक्त दो खंडों के प्रकाशन की तैयारी का काम बहुत ही परिश्रमपूर्ण था। आस्ट्रियाई सामाजिक-जनवादी एडलर ने ठीक ही कहा है कि 'पूंजी' के द्वितीय और तृतीय खंडों के प्रकाशन द्वारा एंगेल्स ने अपने प्रतिभाशाली मित्र का भव्य स्मारक खड़ा किया, जिसपर न चाहते हुए भी उन्होंने अपना नाम अमिट रूप से अंकित कर दिया। वस्तुतः 'पूंजी' के ये दो खंड दो व्यक्तियों – मार्क्स और एंगेल्स – की कृति हैं। प्राचीन गाथाओं में मैत्री के कितने ही हृदयस्पर्शी उदाहरण मिलते हैं। यूरोपीय सर्वहारा वर्ग कह सकता है कि उसके विज्ञान की रचना दो ऐसे विद्वानों और योद्धाओं ने की, जिनके पारस्परिक संबंधों ने मानवीय मैत्री की अत्यंत हृदयस्पर्शी पुराण-कथाओं को पीछे छोड़ दिया है। एंगेल्स सदा ही – और आम तौर पर न्यायसंगत रूप से – अपने को मार्क्स के बाद रखते थे।

---

*यह बहुत सारगर्भित और शिक्षाप्रद पुस्तक है। दुर्भाग्य से उसका एक छोटा-सा हिस्सा ही रूसी भाषा में अनूदित किया गया है। इस हिस्से में समाजवाद के विकास की ऐतिहासिक रूपरेखा दी गयी है ('वैज्ञानिक समाजवाद का विकास', द्वितीय संस्करण, जेनेवा, १८९२)। (**लेनिन का नोट**)

"मार्क्स के जीवन-काल में", उन्होंने अपने एक पुराने मित्र को लिखा था, "मैंने गौण भूमिका अदा की।" जीवित मार्क्स के प्रति उनका प्रेम और मृत मार्क्स की स्मृति के प्रति उनका आदर असीम था। इस दृढ़ योद्धा और कठोर विचारक का हृदय गहरे प्रेम से परिपूर्ण था।

१८४८–१८४९ के आंदोलन के बाद निर्वासन-काल में मार्क्स और एंगेल्स केवल वैज्ञानिक शोधकार्य में ही नहीं व्यस्त रहे। १८६४ में मार्क्स ने 'अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर संघ' की स्थापना की और दशक भर इस संस्था का नेतृत्व किया। एंगेल्स ने भी इस संस्था के कार्य में सक्रिय भाग लिया। 'अंतर्राष्ट्रीय मजदूर संघ' का कार्य, जिसने मार्क्स के विचारानुसार सभी देशों के सर्वहारा को एकजुट किया, मजदूर आंदोलन के विकास के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण था। पर आठवें दशक में उक्त संघ के बन्द होने के बाद भी मार्क्स और एंगेल्स की एकीकरण विषयक भूमिका समाप्त नहीं हुई। इसके विपरीत, कहा जा सकता है कि मजदूर आंदोलन के आध्यात्मिक नेताओं के रूप में उनका महत्त्व सतत बढ़ता रहा, क्योंकि यह आंदोलन स्वयं भी अप्रतिहत रूप से प्रगति करता रहा। मार्क्स की मृत्यु के बाद अकेले एंगेल्स यूरोपीय समाजवादियों के परामर्शदाता और नेता बने रहे। उनका परामर्श और मार्गदर्शन जर्मन समाजवादी, जिनकी शक्ति सरकारी यंत्रणाओं के बावजूद, शीघ्रता से और सतत बढ़ रही थी, और स्पेन, रूमानिया, रूस आदि जैसे पिछड़े देशों के प्रतिनिधि, जो अपने पहले क़दम बहुत सोच-विचार कर और संभल कर रखने को विवश थे, दोनों ही समान रूप से चाहते थे। वे सब वृद्ध एंगेल्स के ज्ञान और अनुभव के समृद्ध भंडार से लाभ उठाते थे।

मार्क्स और एंगेल्स दोनों रूसी भाषा जानते थे और रूसी पुस्तकें पढ़ा करते थे। रूस में उनकी गहरी दिलचस्पी थी, वे रूसी क्रांतिकारी आंदोलन की गतिविधि को सहानुभूति की दृष्टि से देखते थे और रूसी क्रांतिकारियों से संपर्क बनाये हुए थे। समाजवादी बनने से पहले वे दोनों जनवादी थे और राजनीतिक स्वेच्छाचारिता के प्रति घृणा की जनवादी भावना उनमें बहुत ही बलवती थी। इस प्रत्यक्ष राजनीतिक भावना ने, और उसके साथ-साथ राजनीतिक स्वेच्छाचारिता और आर्थिक उत्पीड़न के बीच के संबंधों की गंभीर सैद्धांतिक समझ और जीवन के उनके समृद्ध अनुभव ने मार्क्स

ग्रौर एंगेल्स को यथार्थतः **राजनीतिक** दृष्टि से असाधारण रूप में संवेदनशील बना दिया था। यही कारण है कि शक्तिशाली जारशाही सरकार के विरुद्ध मुट्ठी-भर रूसी क्रांतिकारियों के वीरत्वपूर्ण संघर्ष ने इन तपे हुए क्रांतिकारियों के हृदयों में गहरी सहानुभूति उत्पन्न की। दूसरी ग्रोर, काल्पनिक ग्रार्थिक सुविधाग्रों की प्राप्ति के लिए रूसी समाजवादियों के सबसे फ़ौरी ग्रौर सबसे महत्त्वपूर्ण काम की ग्रोर से, यानी राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त करने की ग्रोर से मुंह मोड़ लेने की प्रवृत्ति को उन्होंने संशय की दृष्टि से देखा, ग्रौर इतना ही नहीं, उन्होंने उसे सामाजिक क्रांति के महान् ध्येय के प्रति सीधे-सीधे विश्वासघात माना। "सर्वहारा की मुक्ति स्वयं सर्वहारा का काम है", — मार्क्स ग्रौर एंगेल्स बराबर यही सीख देते रहे। पर ग्रपनी ग्रार्थिक मुक्ति के लिए संघर्ष करने के लिए यह ज़रूरी है कि सर्वहारा वर्ग कुछ निश्चित **राजनीतिक** ग्रधिकार प्राप्त कर ले। इसके ग्रलावा मार्क्स ग्रौर एंगेल्स ने स्पष्ट रूप से यह भी देखा कि रूस में राजनीतिक क्रांति पश्चिमी यूरोपीय मजदूर ग्रांदोलन के लिए भी ग्रत्यंत महत्त्वपूर्ण सिद्ध होगी। निरंकुश रूस सदा से ही यूरोपीय प्रतिक्रिया का ग्राधार-स्तम्भ रहा था। एक लंबे समय तक जर्मनी ग्रौर फ़्रांस के बीच ग्रनबन के बीज बोनेवाले १८७० के युद्ध के परिणामस्वरूप रूस को प्राप्त हुई ग्रत्यधिक ग्रनुकूल ग्रंतर्राष्ट्रीय स्थिति ने ग्रवश्य ही प्रतिक्रियावादी शक्ति के रूप में निरंकुश रूस का महत्त्व बढ़ा दिया। केवल स्वतंत्र रूस, यानी वह रूस, जिसे न पोलों, फ़िन्नियों, जर्मनों, ग्रर्मीनियाइयों या ग्रन्य छोटी-मोटी जातियों को उत्पीड़ित करने की ग्रौर न ही फ़्रांस ग्रौर जर्मनी को बराबर एक दूसरे के विरुद्ध भड़काने की ग्रावश्यकता होगी, वही ग्राधुनिक यूरोप को युद्ध के भार से मुक्त होकर चैन की सांस लेने देगा, यूरोप के सभी प्रतिक्रियावादी तत्त्वों को निर्बल करेगा ग्रौर यूरोपीय मजदूर वर्ग की शक्ति बढ़ायेगा। इसलिए एंगेल्स की उत्कट इच्छा थी कि पश्चिम के मजदूर ग्रांदोलन की प्रगति के हितार्थ भी रूस में राजनीतिक स्वतंत्रता की स्थापना हो। एंगेल्स की मृत्यु से रूसी क्रांतिकारी ग्रपना बेहतरीन दोस्त खो बैठे।

सर्वहारा वर्ग के महान योद्धा ग्रौर शिक्षक फ़ेडरिक एंगेल्स की स्मृति ग्रमर रहे!

मार्क्स मेरे मानसपट पर*

इनसान थे, हर चीज़ में इनसान;
होगा न कोई दूसरा
उनके कभी समान!

(शेक्सपियर, 'हैमलेट')

१

मैं कार्ल मार्क्स से पहले पहल फ़रवरी १८६५ में मिला। पहले इन्टरनेशनल की स्थापना २८ सितम्बर, १८६४ को लन्दन के सेन्ट मार्टिन्स हॉल में हुई एक सभा में हो चुकी थी और मैं मार्क्स को पेरिस से नवजात संगठन के विकास की ख़बरें देने लन्दन गया। श्री तोलें ने, जो अब पूंजीवादी जनतंत्र में सेनेटर हैं, मेरे लिए एक परिचय-पत्र दिया।

मैं तब २४ साल का था। उस पहली भेंट की मुझपर जो छाप पड़ी, उसे मैं आजीवन नहीं भूल सकूंगा। मार्क्स 'पूंजी' के पहले खण्ड पर काम कर रहे थे, जो कहीं दो वर्ष बाद, १८६७ में प्रकाशित हुआ। वे उस समय कुछ अस्वस्थ थे और उन्हें भय था कि वे अपना काम पूरा नहीं कर सकेंगे, इसलिए नौजवानों के मुलाक़ात के लिए आने से प्रसन्न होते थे। "अपने बाद कम्युनिस्ट प्रचार को जारी रखने के लिए मुझे नौजवानों को अवश्य प्रशिक्षित करना चाहिए", वे कहा करते थे।

कार्ल मार्क्स उन विरले लोगों में से थे, जो विज्ञान और सार्वजनिक जीवन, दोनों में एकसाथ नेतृत्व कर सकते हैं। ये दोनों पहलू उनमें इतने

---

*लफ़ार्ग, पाल (१८४२–१९११) – फ़्रांसीसी तथा अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर आन्दोलन के प्रख्यात नेता, मार्क्स तथा एंगेल्स के मित्र और शिष्य, मार्क्स की बेटी लौरा के पति। लफ़ार्ग के संस्मरण १८९० में प्रकाशित किये गये। – सं०

घुले-मिले हुए थे कि विद्वान मार्क्स और समाजवादी योद्धा मार्क्स, दोनों को ध्यान में रखकर ही उन्हें समझा जा सकता है।

मार्क्स का विचार था कि अनुसंधान के अंतिम फल की चिन्ता किये बिना विज्ञान का अनुशीलन विज्ञान के लिए ही किया जाना चाहिए, लेकिन इसके साथ ही सार्वजनिक जीवन में सक्रिय सहभागिता का त्याग करके, अथवा बिल के चूहे की तरह अपने को अध्ययन-कक्ष या प्रयोगशाला में बन्द करके और समकालीनों के सार्वजनिक जीवन तथा राजनीतिक संघर्ष से तटस्थ रखकर वैज्ञानिक महज अपने को हेय ही बना सकता है।

वे कहा करते थे, "विज्ञान को आत्मानन्द नहीं होना चाहिए। जिन्हें अपने को वैज्ञानिक अनुष्ठान में लगाने का सौभाग्य प्राप्त है, उन्हें सबसे पहले अपने ज्ञान को मानवजाति की सेवा में अर्पित करना चाहिए।" "मानवजाति के लिए काम करो", यह उनका एक प्रिय कथन था।

यद्यपि मेहनतकश वर्गों के दुःखभोग के प्रति मार्क्स गहरी सहानुभूति रखते थे, फिर भी भावुकता के कारण नहीं, बल्कि इतिहास तथा राजनीतिक अर्थशास्त्र के अध्ययन से वे कम्युनिस्ट विचारों पर पहुंचे। उनका दावा था कि निजी हितों के प्रभाव और वर्गीय पूर्वाग्रहों की अन्धता से मुक्त कोई भी पक्षपातहीन व्यक्ति लाजिमी तौर से इन्हीं निष्कर्षों पर पहुंचेगा।

लेकिन किसी अवधारित मत के बिना मानव-समाज के आर्थिक तथा राजनीतिक विकास का अध्ययन करते हुए भी, मार्क्स ने मात्र अपने अनुसन्धान के नतीजों का प्रचार करने के इरादे, और उस समाजवादी आन्दोलन के लिए वैज्ञानिक आधार प्रस्तुत करने की अटल इच्छा से प्रेरित होकर ही लेखन-कार्य किया जो उस समय तक कल्पनाविहार के बादलों में खोया हुआ था। उन्होंने मजदूर वर्ग को विजयी बनाने के लिए ही, जिसका ऐतिहासिक ध्येय समाज का आर्थिक तथा राजनीतिक नेतृत्व प्राप्त करते ही कम्युनिज्म की स्थापना करना है, अपने विचारों का प्रचार किया।

मार्क्स ने अपनी सरगर्मी को अपनी जन्मभूमि तक ही सीमित नहीं रखा। वे कहा करते थे, "मैं विश्व नागरिक हूं, मैं जहां कहीं भी हूं, सक्रिय हूं।" वस्तुतः फ़्रान्स, बेल्जियम, ब्रिटेन, चाहे जिस देश में भी

घटनाओं तथा राजनीतिक अत्याचारों से बाध्य होकर वे गए, उन्होंने वहां उठनेवाले क्रान्तिकारी आन्दोलनों में प्रमुख भाग लिया।

लेकिन मेटलैण्ड पार्क रोड के उनके अध्ययनकक्ष में मैंने पहले पहल एक अथक, अतुल्य समाजवादी प्रचारक को नहीं बल्कि वैज्ञानिक को देखा। यह अध्ययनकक्ष ही वह केन्द्र था, जहां सभ्य संसार के सभी हिस्सों से समाजवादी चिन्तन के आचार्य की राय जानने के लिए पार्टी के साथी आया करते थे। उस ऐतिहासिक कक्ष को जानने के बाद ही मार्क्स के भावनात्मक जीवन के अंतरंग में प्रवेश किया जा सकता है।

वह दूसरी मंजिल पर था और पार्क की ओर खुलनेवाली एक चौड़ी खिड़की से आनेवाले प्रकाश से आप्लावित था। खिड़की की उलटी दिशा में तथा अग्निष्ठिका के दोनों तरफ़ दीवार से लगी किताबों से भरी आलमारियों की क़तार थी, जो अख़बारों और पाण्डुलिपियों से छत तक अटी थीं। अग्निष्ठिका की उलटी दिशा में तथा खिड़की के एक तरफ़ काग़ज़ों, किताबों और अख़बारों से लदी दो मेज़ें थीं। कमरे के बीचोंबीच ख़ासी रोशनी में एक छोटी (३ फ़ीट लम्बी और २ फ़ीट चौड़ी) सादी मेज़ और लकड़ी की हत्थेदार कुर्सी थी। कुर्सी और आलमारी के बीच खिड़की की उलटी दिशा में चमड़े से मढ़ा सोफ़ा था, जिसपर मार्क्स जब तब लेटकर आराम करते थे। अग्निष्ठिका के दासे पर और किताबें, सिगार, दियासलाई की डिबियां, तम्बाकू के डिब्बे, पेपरवेट और मार्क्स की पत्नी तथा पुत्रियों के, विल्हेल्म वोल्फ़* और फ़्रेडरिक एंगेल्स के फ़ोटो रखे थे।

मार्क्स धूम्रपान बहुत करते थे। उन्होंने मुझसे एक बार कहा, "'पूंजी' से उतने भी पैसे नहीं मिलेंगे, जितने के सिगार मैंने उसको लिखने में फूंक डाले हैं।" लेकिन दियासलाइयों का ख़र्च तो उनका और भी अधिक था। पाइप या सिगार की अक्सर सुध न रहने और थोड़े ही समय में उन्हें बार-बार सुलगाने से दियासलाई की न जाने कितनी डिबियां ख़ाली हो जाती थीं।

---

*वोल्फ़, विल्हेल्म (१८०९–१८६४)– जर्मन सर्वहारा क्रान्तिकारी, मार्क्स तथा एंगेल्स के मित्र और सहकर्मी। मार्क्स ने अपनी महान कृति 'पूंजी' उन्हीं को समर्पित की है।–सं०

वे अपनी किताबों या काग़ज़ों को तरतीब से – या कहें कि बेतरतीब – रखने की इजाज़त किसी को नहीं देते थे। सिर्फ़ देखने में ही ऐसा लगता था कि वे बेतरतीब हैं। दर असल सब कुछ अभिप्रेत स्थान पर होता था, जिससे उन्हें आवश्यक किताब या नोटबुक पा लेना आसान था। बातचीत के दौरान भी वे अक्सर उल्लिखित पुस्तक में से कोई उद्धरण या आंकड़ा दिखाने के लिए रुक जाते थे। अपने अध्ययनकक्ष के साथ उनका तादात्म्य हो गया था: वहां की पुस्तकों और काग़ज़ों पर उन्हें उतना ही क़ाबू था, जितना अपने अंगों पर।

मार्क्स के लिए उनकी किताबों की रस्मी तरतीब का कोई उपयोग नहीं था: विभिन्न आकार की जिल्दें और पैम्फ़लेट एक दूसरे से सटे हुए रखे थे। वे उन्हें आकार की दृष्टि से नहीं, बल्कि विषय की दृष्टि से तरतीब देते थे। किताबें उनके दिमाग़ के लिए विलास-सामग्री नहीं, औज़ार थीं। वे कहा करते थे, "ये मेरी बांदियां हैं और इन्हें मेरी इच्छा के अनुसार मेरी सेवा करनी होगी।" वे आकार या जिल्दबन्दी पर, काग़ज़ या टाइप की क़िस्म पर कोई ध्यान नहीं देते थे। वे पन्नों के कोने मोड़ देते, हाशिये में पेन्सिल के निशान बना देते और पूरी की पूरी पंक्तियां रेखांकित कर देते। वे किताबों पर कभी कुछ नहीं लिखते थे, लेकिन कभी-कभी लेखक के अति कर देने पर विस्मयबोधक अथवा प्रश्नवाचक चिन्ह लगाए बिना नहीं रह पाते थे। उनकी रेखांकन-पद्धति से, आवश्यकता होने पर किसी पुस्तक से कोई अंश ढूंढ़ लेना आसान हो जाता था। उन्हें अपनी नोटबुकों और किताबों के रेखांकित अंशों को कई-कई बरस बाद फिर-फिर पढ़ने की आदत थी, ताकि वे उनकी याद में ताज़ा बने रहें। उनकी स्मरणशक्ति असाधारण थी, जिसे उन्होंने अपनी जवानी के दिनों से हेगेल के परामर्श पर अनजानी विदेशी भाषा की कविताएं कंठस्थ करके संवर्द्धित किया था।

उन्हें हाइने और गेटे कंठस्थ थे और अपनी बातचीत में उन्हें अक्सर उद्धृत करते थे। वे सभी यूरोपीय भाषाओं में कवियों के अनुष्ठावान पाठक थे। वे हर साल एस्कीलस* को मूल यूनानी में पढ़ते थे। वे उन्हें और

---

*एस्कीलस (५२५–४५६ ई० पू०) – प्रख्यात प्राचीन यूनानी नाटककार, क्लासिकी दुखान्त नाटकों के रचयिता। – सं०

शेक्सपियर को नाटककारिता के क्षेत्र में मानवजाति की महानतम प्रतिभाएं मानते थे। शेक्सपियर के प्रति उनका सम्मान असीम था: उन्होंने उनकी कृतियों का ब्योरेवार अध्ययन किया था और उनके मामूली से मामूली पात्रों तक को जानते थे। महान अंग्रेजी नाटककार के प्रति मार्क्स का पूरा परिवार सच्ची श्रद्धा रखता था। उनकी तीनों बेटियों को शेक्सपियर की अनेक कृतियां कंठस्थ थीं। १८४८ के बाद जब मार्क्स ने अंग्रेज़ी भाषा में पारंगत होना चाहा, जिसे पढ़ सकने में वे समर्थ हो चुके थे, तो उन्होंने शेक्सपियर की सारी मौलिक अभिव्यक्तियों को ढूंढ़ निकाला और उनका वर्गीकरण किया। विलियम कॉब्बेट* की वादानुवादी कृतियों के एक अंश के साथ भी उन्होंने यही किया। कॉब्बेट के बारे में उनकी राय ऊंची थी। दान्ते और रॉबर्ट बर्नस उनके प्रियतम कवियों में से थे और वे स्काटी कवि के पंवाड़ों या विद्रूप-काव्य का अपनी पुत्रियों द्वारा पाठ अथवा गायन अत्यन्त आनन्दपूर्वक सुनते थे।

विज्ञान-क्षेत्र के अथक कार्यकर्त्ता और परम आचार्य कुविए के निजी उपयोग के लिए पेरिस म्युज़ियम में, जिसके वे संचालक थे, कई कमरे थे। हर कमरा किसी विशेष अनुष्ठान के लिए अभिप्रेत था और उसमें उसी प्रयोजन की किताबें, आले, विश्लेषणकारी उपकरण इत्यादि रखे थे। जब वे एक प्रकार के काम से थकान महसूस करते, तो दूसरे कमरे में जाकर दूसरे काम में लग जाते। बौद्धिक व्यस्तता की यह अदला-बदली ही उनके लिए आराम होती थी।

मार्क्स उतने ही अथक परिश्रमी थे, जितने कुविए। लेकिन उनके पास कई अध्ययनकक्षों को आवश्यक सामग्री से सज्जित करने के लिए साधन नहीं थे। वे कमरे के एक सिरे से दूसरे सिरे तक चहलक़दमी करके आराम करते, जिससे क़ालीन पर दरवाज़े से खिड़की तक एक पट्टी-सी बन गई थी और वह घास के मैदान में बनी पगडंडी की तरह स्पष्टतः आकृत थी।

बीच-बीच में वे सोफ़े पर लेट जाते और कोई उपन्यास पढ़ने लगते; कभी-कभी वे एकसाथ ही दो या तीन उपन्यास बारी बारी से पढ़ते थे।

***कॉब्बेट, विलियम** (१७६२–१८३५)–अंग्रेज़ी राजपुरुष तथा सार्वजनिक लेखक, ब्रिटिश राजनीतिक व्यवस्था के जनवादीकरण के योद्धा।–सं०

डार्विन की भांति वे भी उपन्यास पढ़ने के बड़े शौक़ीन थे और १८वीं सदी के उपन्यासों को, ख़ास तौर से फ़ील्डिंग के 'टाम जोन्स' को, तरजीह देते थे। अपेक्षाकृत अधिक आधुनिक उपन्यासकारों में, जिन्हें वे सर्वाधिक रुचिकर पाते थे, पोल द'कॉक, चार्ल्स लेवर, सीनियर अलेक्ज़ैन्डर ड्यूमा और वाल्टर स्कॉट थे। स्कॉट के *«Old Mortality»* को वे मूर्द्धन्य कृति मानते थे। साहसिक कारनामों और हास्यरस की कहानियों को वे निश्चित रूप से तरजीह देते थे।

वे सेर्वांते और बाल्ज़ाक को अन्य सभी उपन्यासकारों से ऊंचा स्थान देते थे। 'डॉन क्विक्ज़ोट' को वे उस दम तोड़ते हुए शौर्य का महाकाव्य समझते थे, जिसके गुणों की उदीयमान पूंजीवादी जगत में हंसी उड़ाई जाती थी, अवमानना की जाती थी। वे बाल्ज़ाक को इतना सराहते थे कि राजनीतिक अर्थशास्त्र पर अपनी कृति को समाप्त करते ही उनकी महान कृति *«La comedie Humaine»* की समीक्षा लिखना चाहते थे। वे बाल्ज़ाक को महज़ अपने युग का इतिवृत्त-लेखक ही नहीं, बल्कि ऐसे भावी चरित्रों के स्रष्टा भी मानते थे, जो लुई फ़िलिप के युग में अभी भ्रूण-रूप में थे और जो बाल्ज़ाक की मृत्यु के बाद नेपोलियन तृतीय के शासनकाल में ही पूर्णतः विकसित हुए थे।

मार्क्स सभी यूरोपीय भाषाएं पढ़ सकते थे और जर्मन, फ़्रान्सीसी तथा अंग्रेज़ी भाषाओं में लिखते हुए अपने को इतने सुन्दर ढंग से व्यक्त करने में समर्थ थे कि भाषा-पारखी मुग्ध हो उठते थे। वे इस उक्ति को बार-बार दोहराना पसन्द करते थे कि "जीवन-संघर्ष में विदेशी भाषा एक हथियार है।"

भाषाओं के लिए उनकी मेधा प्रबल थी, जिसे उनकी बेटियों ने विरसे में पाया। उन्होंने रूसी भाषा का अध्ययन तब शुरू किया, जब वे ५० साल के हो चुके थे और इस भाषा के कठिन होने के बावजूद छे महीने में ही उन्होंने इतनी रूसी सीख ली कि रूसी कवियों तथा गद्य-लेखकों की कृतियों का आनन्द लेने लगे। वे पुश्किन, गोगोल और श्चेद्रीन को अधिक पसन्द करते थे। उन्होंने रूसी भाषा इसलिए सीखी कि सरकारी जांचों की उन दस्तावेज़ों को पढ़ सकें, जिनके प्रकाशन पर रूसी सरकार ने इसलिए रोक लगा दी थी कि उनसे भयानक तथ्य सामने आते थे। श्रद्धालु मित्रों ने मार्क्स के लिए

कार्ल मार्क्स, १८६६
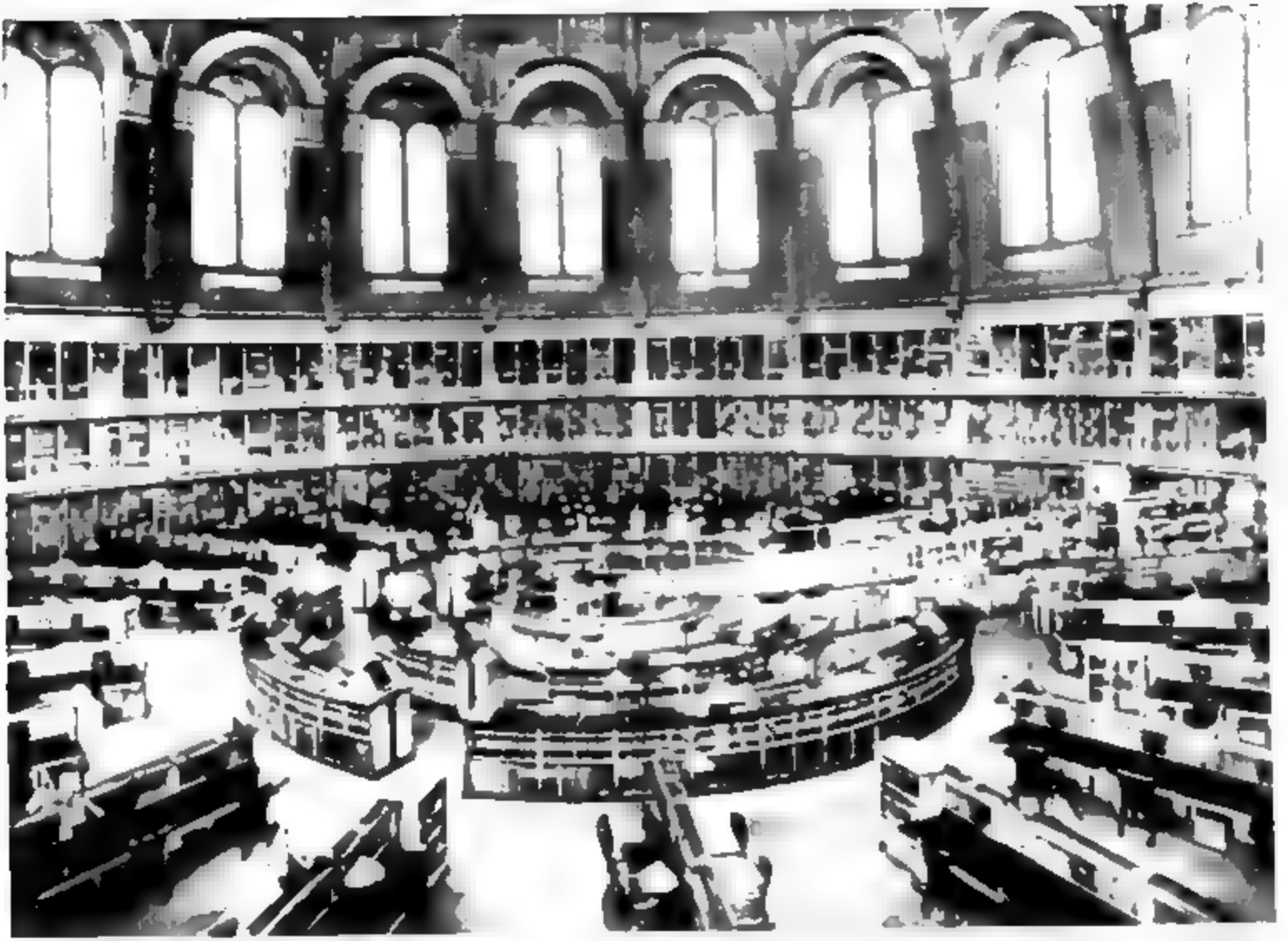
ब्रिटिश म्युजियम (लन्दन) का वाचनालय, जिसमें मार्क्स अध्ययन करते थे

उन दस्तावेज़ों को हासिल किया और पश्चिमी यूरोप में निश्चय ही वे अकेले राजनीतिक अर्थशास्त्री थे, जिसे उन दस्तावेज़ों की जानकारी थी।

कवियों और उपन्यासकारों के अलावा, मार्क्स के बौद्धिक विश्राम का एक और अद्भुत साधन गणित था, जिसमें उनकी विशेष रुचि थी। बीजगणित से तो उन्हें मानसिक सान्त्वना तक प्राप्त होती थी और अपने घटनापूर्ण जीवन की अधिकतम शोकमयी घड़ियों में वे उसका सहारा लेते थे। अपनी पत्नी की अन्तिम बीमारी के दौरान वे अपने नित्य के वैज्ञानिक कार्य में दत्तचित्त होने में असमर्थ थे और उनके लिए पत्नी के कष्टभोग से पैदा होनेवाले क्लेश से छुटकारा पाने का एकमात्र रास्ता गणित में डूब जाना ही था। मानसिक कष्ट की उस मुद्दत में उन्होंने अत्यल्पीयकलन पर एक पुस्तक लिखी, जिसका विशेषज्ञों की राय में भारी वैज्ञानिक मूल्य है और जो उनकी सम्पूर्ण कृतियों में प्रकाशित की जाएगी। उन्होंने उच्च गणित में द्वन्द्वात्मक गति का अधिकतम तार्किक और साथ ही अधिकतम सीधा-सादा रूप पाया। उनका विचार था कि जब तक कोई विज्ञान गणित का उपयोग करना नहीं सीख लेता, तब तक वस्तुतः विकसित रूप नहीं प्राप्त कर सकता।

यद्यपि मार्क्स के निजी पुस्तकालय में उनके आजीवन अनुसन्धान-कार्य के दौरान यत्नपूर्वक जमा की गई एक हज़ार से अधिक पुस्तकें थीं, फिर भी वे उनके लिए नाकाफ़ी थीं और मार्क्स सालों तक नियमित रूप से ब्रिटिश म्युज़ियम में बैठकर अध्ययन करते रहे। वहां के पुस्तक-भण्डार की वे अत्यधिक सराहना करते थे।

मार्क्स के विरोधियों तक को उनके व्यापक तथा गहन पाण्डित्य का, सो भी न केवल उनके विशेष विषय – राजनीतिक अर्थशास्त्र में, बल्कि इतिहास, दर्शन और सभी देशों के साहित्य के क्षेत्र में भी, सिक्का मानना पड़ा।

मार्क्स रात को बहुत देर से सोते, लेकिन इसके बावजूद सुबह आठ और नौ बजे के बीच उठ जाते, थोड़ी काली कॉफ़ी पीते, अख़बार पढ़ते और तब अपने अध्ययनकक्ष में जाकर रात के दो या तीन बजे तक काम करते। वे केवल खाना खाने और मौसम उपयुक्त होने पर हैम्पस्टेड हीथ*

---

* लन्दन का पहाड़ी पार्क। – सं०

में शाम को टहलने के लिए ही काम छोड़ते। दिन में वे कभी-कभी सोफ़े पर घंटा दो घंटे सो लेते थे। जवानी में वे अक्सर सारी-सारी रात काम करते रहते थे।

मार्क्स को काम का व्यसन था। वे उसमें इतना डूब जाते थे कि अक्सर खाना भी भूल जाते थे। वे अक्सर कई बार बुलाए जाने पर नीचे खाने के कमरे में आते और आख़िरी ग्रास खाते न खाते फिर अपने अध्ययनकक्ष में पहुंच जाते।

वे बहुत कमखाती थे और भूख की कमी के भी शिकार थे। खट्टी और चटपटी चीजें जैसे कि हैम, भुनी मछलियां, केवियर और अचार आदि खाकर वे भूख की कमी को दूर करने की कोशिश करते थे। मस्तिष्क की प्रकाण्ड क्रियाशीलता का फल पेट को भोगना पड़ता था।

उन्होंने अपने मस्तिष्क के लिए शरीर को क़ुर्बान कर दिया। चिन्तन उनका सबसे बड़ा सुख था। मैंने अक्सर उन्हें उनकी जवानी के दर्शन-गुरु हेगेल के शब्द दुहराते हुए सुना: "किसी कुकर्मी के अपराधमूलक चिन्तन में भी स्वर्ग के चमत्कारों से अधिक वैभव तथा गरिमा होती है"।

जीवन के इस असाधारण ढंग तथा क्लांतिकर दिमाग़ी काम के लिए उनकी शारीरिक गठन का अच्छा होना ज़रूरी था। दर-असल उनकी काठी बड़ी मज़बूत थी, वे औसत से अधिक लम्बे, चौड़े कन्धों, उभरे सीने और सुगढ़ अंगों वाले व्यक्ति थे, हालांकि टांगों की तुलना में मेरुदंड किसी क़दर लम्बा था, जैसा कि यहूदियों के अक्सर होता है। अगर उन्होंने जवानी में व्यायाम किया होता, तो वे बहुत ही बलिष्ठ आदमी बन गये होते। केवल टहलना ही एक ऐसा शारीरिक व्यायाम था जो उन्होंने कभी भी नियमित रूप से किया। वे बातें और धूम्रपान करते हुए घंटों चहलक़दमी कर सकते थे या पहाड़ियों पर चढ़ सकते थे और बिलकुल थकते नहीं थे। कहा जा सकता है कि वे अपने कमरे में टहलते हुए ही काम करते थे और टहलते हुए जो कुछ सोच लेते थे उसे लिखने के लिए ही थोड़ी-थोड़ी देर को बैठ जाते थे। वे बातचीत करते हुए कमरे के एक सिरे से दूसरे सिरे तक टहलना पसन्द करते थे और बीच-बीच में जब संभाषण अधिक जीवन्त अथवा बातचीत अधिक गंभीर हो जाती थी, तो रुक जाते थे।

मैं हैम्पस्टेड हीथ में उनके सन्ध्या भ्रमण में मानों उनके साथ जाता रहा और उनके साथ चरागाहों में टहलते हुए ही मैंने अपनी अर्थशास्त्र की शिक्षा प्राप्त की। वे 'पूंजी' का पहला खण्ड जैसे-जैसे लिखते जाते थे, वैसे-वैसे बिना खुद इस बात पर ध्यान दिये मुझे उसका पूरा अन्तर्य समझाते जाते थे।

मैं जो कुछ उनसे सुनता था, घर लौटकर उसके जहां तक मुमकिन होता, बेहतर से बेहतर नोट तैयार करता। शुरू-शुरू में मार्क्स के गहन तथा जटिल तर्क को समझ पाना मेरे लिये कठिन होता था। दुर्भाग्यवश वे मूल्यवान नोट अब मेरे पास नहीं है, क्योंकि पेरिस कम्यून के बाद पुलिस ने पेरिस और बोर्दो में मेरे कागजात छीनकर जला दिये थे।

मुझे उन नोटों को खो देने का सबसे ज्यादा अफ़सोस है, जो मैंने उस शाम को लिखे थे, जब मार्क्स ने अपने चारित्रिक प्रमाण-प्राचुर्य तथा तर्क-वैपुल्य के साथ मुझे मानव-समाज के विकास-सम्बन्धी अपना तेजस्वी सिद्धान्त समझाया था। तब मुझे ऐसे लगा था मानो मेरी आंखों के सामने से पर्दा हट गया हो। मैंने पहले पहल विश्व-इतिहास की तर्क-संगति को स्पष्ट रूप से देखा और सामाजिक विकास के व्यापारों का, जो देखने में इतने अन्तर्विरोधपूर्ण हैं, उनके भौतिक कारणों के साथ ताल-मेल बिठा पाया। मैं चकित रह गया और उसकी छाप बरसों तक बनी रही।

जब मैंने मैड्रिड के समाजवादियों के सामने अपनी अपर्याप्त शक्ति का पूरा ज़ोर लगाकर मार्क्स के उस सर्वाधिक तेजोमय सिद्धान्त की व्याख्या की, जो निस्सन्देह मानव-मस्तिष्क द्वारा सृजित एक महानतम सिद्धान्त है, तब उनपर भी ऐसा ही प्रभाव पड़ा।

मार्क्स का मस्तिष्क इतिहास तथा प्रकृति-विज्ञान के तथ्यों तथा दार्शनिक सिद्धान्तों के असाधारण भंडार से भरपूर था। बरसों के बौद्धिक काम के दौरान संचित ज्ञान और ध्यान का उपयोग करने में वे अद्भुत रूप से दक्ष थे। उनसे किसी भी समय किसी भी विषय पर प्रश्न करके मनोवांछित अधिकतम ब्योरेवार उत्तर पाया जा सकता था, जो सदा सामान्य उपयोग के दार्शनिक विचारों से संयुक्त होता था। उनका मस्तिष्क चिन्तन के किसी भी क्षेत्र में पिल पड़ने के लिए बन्दरगाह पर भाप उगलते तैयार रणपोत की तरह था।

3*

निस्सन्देह 'पूंजी' के रूप में हमें आश्चर्यजनक ओज और प्रकाण्ड ज्ञान से भरपूर मस्तिष्क के दर्शन होते हैं। लेकिन मेरे लिए और मार्क्स को घनिष्ठतापूर्वक जाननेवाले सभी लोगों के लिए न तो 'पूंजी' और न कोई अन्य कृति ही उनकी प्रतिभा की सारी विराटता अथवा उनके ज्ञान की सम्पूर्ण समृद्धता प्रदर्शित करती है। वे अपनी कृतियों से भी कहीं अधिक ऊंचे थे।

मैंने मार्क्स के साथ काम किया। मैं केवल लिपिक था, जिसे वे बोलकर लिखवाते थे। लेकिन उससे मुझे उनके सोचने और लिखने का ढंग देखने का सुयोग मिला। काम उनके लिए आसान होने के साथ ही कठिन भी था। आसान इसलिए कि संगत तथ्यों तथा विचारों को उनकी पूर्णता में ग्रहण करना उनके मस्तिष्क के लिए आसान था। लेकिन वह पूर्णता ही उनके विचारों के प्रतिपादन को देरतलब और कठिन काम बना देती थी...

मार्क्स वस्तु के सारतत्त्व को ग्रहण करते थे। वे केवल परिमुख नहीं, बल्कि अन्तरंग भी देखते थे। वे सभी संघटक अंगों की उनकी अन्योन्य क्रिया-प्रतिक्रिया में छानबीन करते थे। वे उनमें से सभी को अलग-अलग करके उनके विकास के इतिहास का पता लगाते थे। उसके बाद वे वस्तु से उसके परिवेश पर जाते थे और उनकी अन्योन्य क्रिया का निरीक्षण करते थे। वे फिर वस्तु के उद्गम की ओर लौटते थे, उसमें घटित हुए परिवर्तनों, क्रम-विकासों और उत्प्लवों का पता लगाते थे और अन्त में उसके दूरतम प्रभावों की जांच की ओर अग्रसर होते थे। वे वस्तु को एकल, उसी में और उसी के लिए, उसके परिवेश से अलग नहीं, बल्कि एक अत्यन्त जटिल, निरन्तर गतिमान संसार को देखते थे।

मार्क्स उस पूरे संसार को उसकी बहुविध और निरन्तर परिवर्तमान क्रिया और प्रतिक्रिया में उद्घाटित करना चाहते थे। फ़्लोबेअर और गोंकूर की परम्परा के साहित्यकार शिकायत करते हैं कि जो कुछ दृश्यमान है उसका ठीक-ठीक वर्णन करना कितना कठिन है। लेकिन जो कुछ वे वर्णन करना चाहते हैं, वह मात्र ऊपरी स्तर है, मात्र उनके मन पर पड़ी छाप की अनुभूति है। उनकी साहित्यिक कृति मार्क्स की कृति की तुलना में बच्चों का खेल है। यथार्थ को इतनी गहराई से समझने के लिए असाधारण

चिन्तन-शक्ति की आवश्यकता थी और जो कुछ उन्होंने देखा और कहना चाहा उसके वर्णन के लिए भी विरल कला की आवश्यकता कुछ कम नहीं थी।

मार्क्स अपनी कृति से कभी संतुष्ट नहीं होते थे, उसमें बाद को हमेशा परिवर्तन करते रहते थे और निरन्तर पाते थे कि उनकी अभिव्यक्ति उनके चिन्तन की ऊंचाई तक नहीं पहुंच पाती।

मार्क्स में मेधावी चिन्तक के दो गुण विद्यमान थे। वे विषय वस्तु को उसके संघटक भागों में विलक्षणतापूर्वक विच्छिन्न कर देते थे और बाद में उसके सारे ब्योरों तथा उसके विकास के विभिन्न रूपों के साथ, उनकी आन्तरिक परस्पर-निर्भरता को उद्घाटित करते हुए, उसे पुनर्गठित कर देते थे। उनके तर्क विविक्त विचारण नहीं थे, जैसा कि चिन्तन करने में असमर्थ अर्थशास्त्री दावा करते थे। उनकी प्रणाली ज्यामितिज्ञ की प्रणाली नहीं थी, जो अपनी परिभाषाएं परिपार्श्विक जगत से लेता है और अपने निष्कर्ष निकालने में यथार्थ की पूर्णतः उपेक्षा करता है। 'पूंजी' में हम वियुक्त परिभाषाएं अथवा वियुक्त सूत्र नहीं पाते, बल्कि यथार्थ का उच्चतम कोटि का सूक्ष्म क्रमबद्ध विश्लेषण पाते हैं, जो अधिक से अधिक हल्के रंगों और छोटे से छोटे भेदों को सामने लाता है।

मार्क्स इस प्रत्यक्ष तथ्य के कथन से प्रारंभ करते हैं कि उस समाज की सम्पदा, जिसमें पूंजीवादी उत्पादन-प्रणाली का बोलबाला है, पण्यों के विराट संचयन में निहित है। इसलिए पण्य, जो गणितीय विविक्ति नहीं, बल्कि मूर्त पदार्थ है, पूंजीवादी सम्पदा का घटक है, उसका प्रारंभिक बीज-कोष है। मार्क्स इस पण्य को पकड़ लेते हैं, उसे हर पहलू से पलटते हैं, यहां तक कि अन्दर-बाहर को उलटकर रख देते हैं और एक के बाद एक उसके रहस्यों को उद्घाटित करते जाते हैं, जिनसे आधिकारिक अर्थशास्त्री तनिक भी परिचित नहीं थे, हालांकि वे रहस्य कैथोलिक धर्म के रहस्यों से अधिक बहुसंख्यक तथा गहन हैं। पण्य के प्रश्न की सर्वांगीण समीक्षा करके वे विनिमय में एक पण्य के साथ दूसरे पण्य के सम्बन्धों पर विचार करते हैं और फिर उसके उत्पादन तथा उस उत्पादन के विकास की ऐतिहासिक शर्तों पर आते हैं। वे पण्य के अस्तित्व के रूपों पर विचार करके दर्शाते हैं कि कैसे उनमें से एक रूप दूसरे में रूपांतरित होता है, कैसे एक आवश्यक रूप से दूसरे को जन्म देता है। वे व्यापारों के विकास की तार्किक गति को इतनी खूबी

और कमाल के साथ पेश करते हैं कि वह ख़ुद मार्क्स की कल्पना प्रतीत हो सकती है, लेकिन फिर भी वह यथार्थ की देन है, पण्य की वास्तविक द्वन्द्वात्मकता का तथ्य-कथन है।

मार्क्स हमेशा घोर ईमानदारी से काम करते थे। उनके द्वारा पेश किया गया हर तथ्य, हर आंकड़ा श्रेष्ठतम अधिकारियों के हवालों से पुष्ट होता था। वे अमूल सूचनाओं से संतुष्ट नहीं होते थे। वे हमेशा ख़ुद मूल-स्रोत तक पहुंचते थे, चाहे उसमें कैसी भी कठिनाइयां क्यों न पेश आवें। किसी गौण तथ्य की पुष्टि के लिए भी वे ब्रिटिश म्युज़ियम में पुस्तकें देखने जाते। उनके आलोचक यह कभी सिद्ध नहीं कर सके कि वे लापरवाह थे अथवा अपने तर्कों को ऐसे तथ्यों पर आधारित करते थे, जो जांच की कड़ी कसौटी पर खरे न उतर सकें।

मूलस्रोत तक पहुंचने की इसी आदत के अनुसार वे अक्सर ऐसे लेखकों को पढ़ा करते थे, जो बहुत कम प्रसिद्ध थे और जिन्हें उद्धृत करनेवाले अकेले वे ही थे। 'पूंजी' में इतने अधिक ऐसे उद्धरण हैं कि यह गुमान हो सकता है कि उन्होंने अपना व्यापक अध्ययन प्रदर्शित करने के लिए उन्हें जान-बूझकर उद्धृत किया है। मार्क्स ऐसा कुछ नहीं चाहते थे। वे कहते थे, "मैं तो ऐतिहासिक न्याय बरतता हूं, प्रत्येक को उसका प्राप्य प्रदान करता हूं।" वे अपने को उस लेखक का नामोल्लेख करने के लिए बाधित समझते थे, चाहे वह लेखक जितना भी नगण्य अथवा कम प्रसिद्ध क्यों न हो, जिसने किसी विचार को सबसे पहले अभिव्यक्त किया हो अथवा उसे अधिक से अधिक सही ढंग से निरूपित किया हो।

मार्क्स की साहित्यिक ईमानदारी भी उतनी ही जबर्दस्त थी, जितनी वैज्ञानिक ईमानदारी। केवल इतना ही नहीं कि उन्होंने कभी किसी ऐसे तथ्य का हवाला नहीं दिया, जिसका उन्हें पूरा यक़ीन न हो, बल्कि पूर्ण पूर्वाध्ययन के बिना किसी विषय पर वे बात करने की भी आज़ादी नहीं लेते थे। उन्होंने पुनर्लेखन और सावधान परिमार्जन द्वारा अधिकतम उपयुक्त रूप में निखारे बिना एक भी कृति प्रकाशित नहीं कराई। किसी कच्ची चीज़ को लेकर जनता के सामने आने का विचार उन्हें असह्य था। अपनी पाण्डुलिपि को अच्छी तरह मांजे बिना उसे दिखाना तो उनके लिये सच्ची यातना थी। इस सम्बन्ध में तो वे इतने कठोर थे कि उन्होंने एक दिन मुझसे

कहा कि मैं अपनी पाण्डुलिपि को अपूर्ण छोड़ने से उसे जला देना बेहतर समझता हूं।

उनके काम करने का ढंग अक्सर उनके ऊपर ऐसे कार्यभार लाद देता था, जिनकी गुरुता की कल्पना पाठक मुश्किल से कर सकते हैं। मसलन, 'पूंजी' में ब्रिटिश फ़ैक्टरी-क़ानून की बाबत लगभग २० पृष्ठ लिखने के लिये उन्होंने इंगलैंड और स्काटलैण्ड के मजदूर-आयोगों और फ़ैक्टरी-इन्सपेक्टरों की ढेरों की सरकारी रिपोर्टें पढ़ डालीं। उन्होंने उन्हें शुरू से आख़िर तक पढ़ा, जैसा कि उनमें लगाए गये पेंसिल के निशानों से प्रगट है। उन रिपोर्टों को वे उत्पादन की पूंजीवादी पद्धति के अध्ययन के लिये अत्यधिक महत्त्वपूर्ण और प्रामाणिक दस्तावेज़ मानते थे। ये दस्तावेजें जिन लोगों द्वारा तैयार की गई थीं, उनके बारे में मार्क्स की राय इतनी ऊंची थी कि उन्हें "ब्रिटिश फ़ैक्टरी-इन्सपेक्टरों जैसे दक्ष, निष्पक्ष और दृढ़-निश्चय आदमी यूरोप के किसी दूसरे देश में पाने की" संभावना में संदेह था। उन्होंने 'पूंजी' की भूमिका में उनकी बहुत प्रशंसा की है।

मार्क्स ने उन्हीं सरकारी रिपोर्टों से तथ्यगत सूचनाओं का एक भंडार प्राप्त कर लिया। इन रिपोर्टों की मुफ़्त प्रतियां पानेवाले पार्लमेण्ट के अनेक सदस्य उन्हें केवल चांदमारी के निशाने के लिये इस्तेमाल करते थे और छिदे पन्नों की संख्या से पिस्तौल की आघात-शक्ति का हिसाब लगाते थे। कुछ दूसरे सदस्य उन्हें रद्दी के भाव बेच देते थे और यही सबसे अधिक समझदारी की बात थी, जो वे कर सकते थे, क्योंकि इस तरह मार्क्स उन्हें लांग एकर में पुरानी किताबों और दस्तावेज़ों की दुकान से, जहां वे उनकी तलाश में जाया करते थे, सस्ते दामों ख़रीद सकते थे। प्रोफ़ेसर बीस्ली का कहना है कि मार्क्स ने ही ब्रिटेन की सरकारी जांच रिपोर्टों का अधिकतम उपयोग किया और दुनिया को उनकी जानकारी कराई। पर उन्हें यह मालूम नहीं था कि १८४५ से पहले ही ब्रिटेन के मजदूर वर्ग की दशा पर अपनी पुस्तक लिखते समय एंगेल्स ने इन सरकारी रिपोर्टों से ढेरों दस्तावेज़ें ली थीं।

उस हृदय को जानने और प्यार करने के लिये, जो विद्वान मार्क्स के सीने में धड़कता था, उन्हें उस समय देखना जरूरी था, जब वे अपनी किताबें और नोटबुकें बन्द करके अपने परिवार के बीच, अथवा जब रविवार की शामों को अपने दोस्तों के साथ होते थे। उस समय वे बहुत ही ख़ुशगवार संगी साबित होते थे–हाज़िर-दिमाग़, मज़ाक़-पसन्द और दिल खोलकर हंसने में समर्थ। बातचीत के दौरान कोई पैनी उक्ति अथवा जवाबी फ़ब्ती सुनकर उनकी झुकी हुई घनी भौंहों के नीचे काली-काली आंखें ख़ुशी और व्यंग्यात्मक उपहास से चमक उठती थीं।

वे स्नेही, सदय और दयालु पिता थे। वे कहा करते थे कि "बच्चों को अपने माता-पिता का शिक्षण करना चाहिए।" उनके प्रति उनकी बेटियों का प्यार असाधारण था, जिनके साथ उनके सम्बन्धों में शासक पिता की कहीं झलक तक भी नहीं थी। वे कभी उन्हें कोई हुक्म नहीं देते थे। अगर उनसे कुछ चाहते थे, तो आभार के रूप में करने को कहते थे और अगर किसी काम के लिए मना करना चाहते थे, तो उन्हें महसूस कराते थे कि वह नहीं करना चाहिए। लेकिन इसके बावजूद किसी को बिरले ही उनके जैसे आज्ञाकारी बच्चे नसीब होंगे। बेटियां उन्हें अपना मित्र मानती थीं और वे उनसे साथी की तरह व्यवहार करती थीं। वे उन्हें पिता नहीं, बल्कि "मूर" कहती थीं, जो मज़ाक़िया नाम उन्हे अपने सांवले रंग और गहरे काले बालों तथा दाढ़ी के कारण प्राप्त हुआ था। दूसरी तरफ़ कम्युनिस्ट लीग के सदस्य उन्हें १८४८ से पहले ही "पिता मार्क्स" कहते थे, जब वे अभी तीस साल के भी नहीं हुए थे...

मार्क्स अपने बच्चों के साथ खेलते हुए कभी-कभी घंटों बिता देते थे। पानी भरे बड़े टब में होनेवाले समुद्री युद्ध और उन काग़ज़ी रणपोतों का जलाया जाना उन्हें अब तक याद है, जो मार्क्स उनके लिए बनाया करते थे और फिर उनमें आग लगा देते थे तथा जिन्हें जलते देखकर बच्चे बहुत ख़ुश होते थे।

रविवारों को उनकी बेटियां उन्हें काम नहीं करने देती थीं। वे पूरे दिन उनकी मरजी के ताबे होते थे। अगर मौसम अच्छा होता, तो पूरा परिवार देहात में सैर के लिए जाता। रास्ते में वे किसी भटियारख़ाने में रुककर

रोटी और पनीर के साथ अदरक की झागदार बियर पीते। जब उनकी बेटियां छोटी थीं, तब वे उन्हें चलते-चलते अन्तहीन अद्भुत कहानियां गढ़कर सुनाते जाते, दूरी की अधिकता अथवा कमी के लेहाज़ से उन कहानियों की घटनाओं को विस्तृत अथवा संक्षिप्त बनाते जाते, ताकि लम्बी सैर का फ़ासला कम महसूस हो और श्रोता अपनी थकान भूल जाएं।

उनकी कल्पना अतुलनीय उर्वरा थी। उनकी प्रथम साहित्यिक कृतियां कविताएं थीं। उनकी पत्नी ने अपने पति द्वारा जवानी में लिखी गई कविताएं सावधानी से संजो रखी थीं, लेकिन कभी किसी को दिखाती नहीं थीं। मार्क्स के माता-पिता ने उनके साहित्यिक अथवा प्रोफ़ेसर बनने का स्वप्न पाला था और यह समझते थे कि समाजवादी आन्दोलन में पड़कर और राजनीतिक अर्थशास्त्र को अपना विषय चुनकर, जिसे तत्कालीन जर्मनी में उपेक्षा की दृष्टि से देखा जाता था, वे अपने को हीन बना रहे हैं।

मार्क्स ने अपनी बेटियों से ग्राक्खसों* पर एक नाटक लिखने का वायदा किया था। दुर्भाग्य से वे अपनी बात रख न सके। वे, जो "वर्ग-संघर्ष के सूरमा" कहलाते थे, प्राचीन इतिहास के वर्ग-संघर्ष के उस भयानक तथा शानदार उपाख्यान का किस प्रकार परिपाक करते, यह देखना दिलचस्प होता। मार्क्स की ढेरों योजनाएं थीं, जिन्हें अमली शक्ल कभी नहीं दी जा सकी। अन्य विषयों के अलावा वे तर्कशास्त्र और दर्शन का इतिहास जो नौउम्री में उनका प्रिय विषय था, लिखने का इरादा रखते थे। अपनी सारी साहित्यिक योजनाओं की तामीली और संसार को अपने मस्तिष्क में छिपी निधि का एक अंश भी भेंट करने के लिए उन्हें शतायु होना चाहिए था!

मार्क्स की पत्नी अधिक से अधिक सच्चे और पूरे अर्थ में जीवन-पर्यन्त उनकी संगिनी रहीं। वे बचपन से एक दूसरे को जानते थे और एकसाथ बड़े हुए थे। सगाई के समय मार्क्स की उम्र केवल १७ साल थी।

---

*ग्राक्खस, टाइबेरियस (१६३–१३३ ई० पू०) तथा गैयस (१५३–121 ई० पू०)—भ्राता, प्राचीन रोम के जन-प्रवक्ता, जिन्होंने बड़ी भू-सम्पत्ति को सीमित करने के लिए कृषि क़ानूनों को अमल में लाने के लिए संघर्ष किया।—सं०

नौजवान जोड़े को सात साल इन्तजार करना पड़ा, तब कहीं १८४३ में उनका विवाह हुआ। उसके बाद वे कभी अलग नहीं हुए। मार्क्स की पत्नी उनसे कुछ ही समय पहले चल बसीं। यद्यपि वे एक अभिजात जर्मन परिवार में पैदा हुईं, फिर भी उनसे बढ़कर समता की भावना कभी किसी में नहीं रही होगी। उनके लिए सामाजिक हैसियत के आधार पर भेदभाव का अस्तित्व ही नहीं था। वे अपने घर में और अपने दस्तरख़ान पर काम की वर्दी पहने मेहनतकशों का उसी विनम्रता और शिष्टता के साथ सत्कार करती थीं, जैसे कि वे राजा-रईस हों। बहुत-से देशों के अनेक मजदूरों को उनकी मेहमान-नवाज़ी हासिल हुई और मुझे विश्वास है कि उनमें से किसी एक को भी यह गुमान न हुआ होगा कि अपने व्यवहार में निराडम्बर, उन्मुक्त हार्दिकता प्रदर्शित करनेवाली यह महिला मातृपक्ष से आर्गाइल के ड्यूक की वंशजा थीं और उनके भाई प्रशियाई बादशाह के मन्त्री थे। अपने कार्ल की अनुगामिनी बनने के लिए उन्होंने सब कुछ त्याग दिया था और घोर अभावों की घड़ी में भी उन्हें ऐसा करने का पछतावा नहीं हुआ था।

उनका दिमाग़ साफ़ और रोशन था। अपने मित्रों के नाम लिखे उनके सहज-सुगम पत्र ओजस्वी तथा मौलिक चिन्तन की अप्रतिम उपलब्धियां हैं। श्रीमती मार्क्स का पत्र पाना हर्ष-पर्व होता था। जोहान्न फ़िलिप बेकर* ने उनके कई पत्र प्रकाशित कराए। निर्मम व्यंगकार हाइने मार्क्स की वक्रोक्ति से डरते थे, और वे उनकी पत्नी की तीक्ष्ण तथा सूक्ष्म बुद्धि की बहुत सराहना करते थे। जब मार्क्स परिवार पेरिस में रहता था, तब हाइने उनके घर नियमित रूप से आने-जानेवालों में से थे। ख़ुद मार्क्स अपनी पत्नी की बुद्धि और आलोचना-शक्ति का इतना अधिक सम्मान करते थे कि उन्हें अपनी सारी पाण्डुलिपियां दिखाते थे और उनकी राय को बड़ा महत्त्व देते थे, जैसा कि उन्होंने ख़ुद १८६६ में मुझसे कहा था। मार्क्स की पत्नी अपने पति की पांडुलिपियों की प्रेस के लिये नक़लें तैयार करती थीं।

---

*बेकर, जोहान्न फ़िलिप (१८०९–१८८६) – जर्मन तथा अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर आन्दोलन के प्रख्यात नेता, पहले इंटर्नेशनल के सदस्य, पेशे से मजदूर-ब्रशर; मार्क्स तथा एंगेल्स के मित्र और सहकर्मी। – सं०

श्रीमती मार्क्स के कई बच्चे हुए। उनमें से तीन बहुत छोटी उम्र में उन कठिनाइयों के दौर में मर गये जो १८४८ की क्रान्ति के बाद परिवार को झेलनी पड़ीं। उस समय वे सोहो स्क्वेयर की डीन स्ट्रीट पर दो छोटे-छोटे कमरों में उत्प्रवासी जीवन बिता रहे थे। मैं केवल तीन बेटियों को ही जानता हूं। १८६५ में जब मार्क्स से मेरा परिचय हुआ, तब उनकी सबसे छोटी बेटी एल्योनोरा, अब श्रीमती एवेलिंग, लड़कों जैसे स्वभाव की मोहिनी बच्ची थीं। मार्क्स कहा करते थे कि उनकी पत्नी ने उसे बेटी के रूप में जन्म देकर गलती की है। दूसरी दोनों बेटियां हर दृष्टि से पूर्ण भिन्न-रूपता का अद्‌भुत नमूना थी। सबसे बड़ी, अब श्रीमती लॉन्गे, को पिता की तरह सांवला स्वस्थ रूप और आबनूसी बाल मिले थे। दूसरी, अब श्रीमती लफ़ार्ग, मां की तरह थीं: गुलाबी रंग, स्वर्णाभा बिखराते घुंघराले केश कुण्डल, जिनमें मानो अस्तायमान सूर्य की रश्मियां निरंतर दीप्तिमान रहती हों।

मार्क्स परिवार की एक और उल्लेखनीय सदस्य हेलेन देमुत थी। किसान परिवार की यह महिला अपने बचपन में, श्रीमती मार्क्स की शादी के बहुत पहले ही उनकी सेविका हो गई थी और मालकिन की शादी के बाद भी उन्हीं के साथ बनी रही। अपनी तनिक भी परवाह न करते हुए उसने मार्क्स परिवार के लिये अपना पूर्ण उत्सर्ग कर दिया था। वह अपनी मालकिन और उनके पति के सारे यूरोपी भ्रमणों में उनके साथ और उनके निर्वासन में सहभागी रही। वह घर की सचमुच मंगला प्रतिभा थी और अधिकतम कठिन परिस्थितियों में भी निस्तार का मार्ग ढूंढ़ निकाल लेती थी। उसकी ही व्यवहारकुशलता, किफ़ायतशारी और चतुराई की बदौलत मार्क्स परिवार को कम से कम जीवन की आवश्यकतम वस्तुओं का तीखा अभाव कभी नहीं झेलना पड़ा। ऐसा कुछ भी नहीं था, जो वह न कर सकती हो। वह खाना पकाती थी, घर संभालती थी, बच्चों के कपड़ों की देखभाल करती थी, उनके वस्त्रों की कटाई-सिलाई भी श्रीमती मार्क्स के साथ मिलकर करती थी। वह गृहसेविका और गृहस्वामिनी दोनों थी, वह ही सारी गृहस्थी चलाती थी।

बच्चे मां की तरह उसे प्यार करते थे और उनके प्रति उसकी मातृत्व-भावना उसे मां का अधिकार प्रदान करती थी। श्रीमती मार्क्स उसे दिली

दोस्त मानती थीं और ख़ुद मार्क्स उसके प्रति अत्यन्त मैत्रीभाव रखते थे। वे उसके साथ शतरंज खेलते थे और उससे अक्सर हार जाते थे।

मार्क्स परिवार के प्रति हेलेन की अन्ध-अनुरक्ति थी। इस परिवार के सदस्य जो कुछ भी करते थे, उसकी निगाह में वह अच्छा होने के सिवा और कुछ हो ही नहीं सकता था। उसे लगता था कि मार्क्स पर आक्षेप करने-वाले मानो ख़ुद उसी पर आक्षेप कर रहे हों। परिवार के साथ जिसकी भी घनिष्ठता हो गई, उसी के साथ उसने मातृवत संरक्षकीय स्नेह व्यवहार किया। ऐसा लगता था, जैसे उसने उन सभी को, पूरे परिवार को गोद ले लिया था। वह मार्क्स और उनकी पत्नी की मृत्यु के बाद भी जीवित रही और तब एंगेल्स के घर जाकर उनकी चिन्ता करने लगी। जब वह लड़की थी, तभी से एंगेल्स को जानती थी और उनके प्रति मार्क्स परिवार जैसा ही अनुराग रखती थी।

कहना चाहिये कि एंगेल्स भी मार्क्स परिवार के सदस्य थे। मार्क्स की बेटियां उन्हें अपना दूसरा पिता मानती थीं। वे मार्क्स का प्रतिरूप थे। जर्मनी में बहुत दिनों तक उनके नामों को अलग नहीं किया गया और इतिहास में वे सदा ही जुड़े रहेंगे।

मार्क्स और एंगेल्स हमारे युग में पुराकालीन कवियों द्वारा वर्णित मित्रता के आदर्श का मूर्त्त रूप थे। युवावस्था से ही उन दोनों का एकसाथ और एक ही दिशा में विकास हुआ, उनके बीच विचारों तथा भावनाओं की घनिष्ठतम हार्दिकता रही और उन्होंने एक ही क्रान्तिकारी आन्दोलन में योग दिया।

वे जब तक एकसाथ रह सके, तब तक मिलकर काम करते रहे। अगर घटनाओं ने उन्हें प्रायः बीस साल के लिए अलग न कर दिया होता, तो वे संभवतः जीवन भर साथ ही काम करते रहते। लेकिन १८४८ की क्रान्ति की पराजय के बाद एंगेल्स को मैन्चेस्टर जाना पड़ा और मार्क्स लन्दन में रहने के लिये बाध्य हुए।

फिर भी एक दूसरे को लगभग प्रति दिन पत्र लिखकर, वैज्ञानिक तथा राजनीतिक घटनाओं और स्वकृतियों पर अपनी रायें प्रगट करके उन्होंने अपना सम्मिलित बौद्धिक जीवन जारी रखा। ज्योंही एंगेल्स अपने काम से मुक्त हो पाए, त्योंही वे मैन्चेस्टर से लन्दन आ गए और अपने प्यारे मार्क्स से दस मिनट

की दूरी पर रहने लगे। १८७० से मार्क्स की मृत्युपर्यन्त कोई दिन ऐसा नही गुज़रा, जबकि दोनों व्यक्ति, कभी एक के तो कभी दूसरे के घर, एक दूसरे से मिले न हों।

वह दिन, जब एंगेल्स ने सूचना दी कि मैं मैन्चेस्टर से लन्दन ग्रा रहा हूं, मार्क्स परिवार के लिए उत्सव-पर्व बन गया। उनके प्रत्याशित ग्रागमन की चर्चा बहुत पहले से होने लगी ग्रौर उनके ग्रागमन के दिन तो मार्क्स इतने उद्विग्न थे कि काम ही नही कर सके। दोनों मित्र साथ-साथ धुग्रां उड़ाते, पीते-पिलाते सारी रात उन घटनाग्रों का ज़िक्र करते रहे, जो उनकी पिछली भेंट के बाद घटी थीं।

ग्रन्य किसी भी व्यक्ति की तुलना में मार्क्स एंगेल्स की राय की ग्रधिक क़द्र करते थे, क्योंकि मार्क्स के ख़्याल से एंगेल्स ही वह व्यक्ति थे, जो उनके सहकर्मी हो सकते थे। एंगेल्स में ही वे ग्रपने पाठकों का सामूहिक रूप देखते थे। वे एंगेल्स को किसी बात के लिये क़ायल करने के निमित्त, उनसे ग्रपना कोई विचार मनवाने के निमित्त कोई भी कोशिश उठा नहीं रखते थे। मिसाल के लिए, ग्रल्बिगोइयों के राजनीतिक तथा धार्मिक युद्धों* से सम्बन्धित किसी गौण प्रश्न पर, जो ग्रब मुझे याद नहीं रहा, एंगेल्स की राय को बदलने के लिए ग्रावश्यक तथ्य ढूंढ़ने की ख़ातिर मैंने उन्हें पूरी की पूरी पोथियां बार-बार पढ़ते देखा था। एंगेल्स को ग्रपनी राय से सहमत करके उन्हें बेहद ख़ुशी होती थी।

मार्क्स को एंगेल्स पर गर्व था। मुझसे उनके सारे नैतिक तथा बौद्धिक गुणों का बखान करने में उन्हें ग्रानन्द प्राप्त होता था। उन्होंने एक बार मुझे एंगेल्स से मिलाने के लिए ही मैन्चेस्टर की यात्रा ख़ास तौर से की। वे एंगेल्स की बहुज्ञता की सराहना करते ग्रघाते नहीं थे ग्रौर उन्हें ज़रा-सा

---

*ग्रल्बिगोयन युद्ध (१२०६–१२२६) – ये युद्ध पोप के साथ मिलकर उत्तरी फ़्रांस के सामंतों ने दक्षिण फ़्रांस के "विधर्मियों" के विरुद्ध लड़े, ग्रौर दक्षिण फ़्रांस के ग्रल्बी नगर के नाम पर ग्रल्बिगोयन के नाम से प्रसिद्ध थे। ग्रल्बिगोयन, जो ठाठदार कैथोलिक संस्कारों तथा धार्मिक पदसोपानता के विरुद्ध थे, सामन्तवाद के विरुद्ध दक्षिणी नगरों की व्यापारिक-दस्तकार जनता का विरोध धार्मिक रूप में प्रकट करते थे। – सं०

भी कुछ हो जाने पर चिन्तित हो उठते थे। उन्होंने मुझसे कहा था कि "मैं इस भय से निरन्तर कांपता रहता हूं कि शिकार के समय एंगेल्स के साथ कहीं कोई दुर्घटना न हो जाए, जब वे किसी भी बाधा की परवाह न करते हुए मैदानों में घोड़े को सरपट दौड़ाते होते हैं।"

मार्क्स जितने स्नेही पति और पिता थे, उतने ही अच्छे मित्र भी थे। उनकी पत्नी, बेटियां, एंगेल्स और हेलेन उन जैसे व्यक्ति के स्नेह-पात्र होने के योग्य भी थे।

३

मार्क्स ने उग्रवादी पूंजीपति वर्ग के एक नेता के रूप में अपनी सार्वजनिक सरगर्मी शुरू की थी। लेकिन ज्योंही उनके विरोध में अधिक तीव्रता आई वैसे ही उन्होंने अपने को परित्यक्त पाया और समाजवादी बनते ही दुश्मन माने जाने लगे। उन्हें सताया गया और जर्मनी से निर्वासित कर दिया गया, उन्हें बदनाम किया गया और उनपर लांछन लगाये गये। अन्त में उनके व्यक्तित्व तथा कृतित्व के विरुद्ध मौन का षड्यंत्र रचा गया। 'अठारहवीं ब्रूमेर' से यह सिद्ध होता है कि मार्क्स २ दिसम्बर १८५१ के राज्य पर्युत्क्षेपण* के कारणों और परिणामों की सच्ची प्रकृति को समझने और उद्घाटित करनेवाले १८४८ के एकमात्र इतिहासकार और राजनीतिज्ञ थे, पर उनकी उक्त कृति की नितान्त उपेक्षा की गई। इसके बावजूद कि वह युग के ज्वलंत यथार्थ पर लिखी गई रचना थी, किसी भी पूंजीवादी अख़बार ने उसका ज़िक्र तक नहीं किया।

'दरिद्रता का दर्शन'** के उत्तर में लिखित 'दर्शन की दरिद्रता' तथा 'राजनीतिक अर्थशास्त्र की समीक्षा' नामक कृतियों की भी इसी प्रकार

---

*२ दिसम्बर, १८५१ को फ़्रांसीसी जनतन्त्र के प्रेजिडेन्ट लुई बोनापार्त ने (नेपोलियन प्रथम का भतीजा) राज्य-पर्युत्क्षेपण किया, संविधान सभा को विसर्जित किया तथा अपने को जीवन भर के लिए प्रेजिडेन्ट घोषित किया।—सं०

** 'दरिद्रता का दर्शन'—फ़्रांसीसी निम्नपूंजीवादी सार्वजनिक लेखक प्रूदों की पुस्तक।—सं०

उपेक्षा की गई। मौन के इस षड्यंत्र को पहले इन्टरनेशनल और 'पूंजी' के पहले खण्ड ने पन्द्रह साल के बाद भंग किया। अब मार्क्स की उपेक्षा नहीं की जा सकती थी। इन्टरनेशनल ने विकसित होकर संसार को अपनी उपलब्धियों से गौरवान्वित कर दिया। यद्यपि मार्क्स दूसरों को आगे बढ़ाते हुए स्वयं नेपथ्य में ही बने रहे, पर शीघ्र ही यह बात किसी से छिपी न रह सकी कि सूत्रधार कौन है।

जर्मनी में सामाजिक-जनवादी पार्टी की स्थापना हुई और वह एक ऐसी शक्ति बन गई, जिसका दमन करने से पहले बिस्मार्क * ने उससे प्रेम करने की चेष्टा की। लासालवादी ** श्वीट्ज़र ने मज़दूर जनता को 'पूंजी' की जानकारी कराने के लिए एक लेखमाला प्रकाशित कराई, जिसकी मार्क्स ने बहुत सराहना की। जोहान्न फ़िलिप बेकर के प्रस्ताव पर इन्टरनेशनल की कांग्रेस ने सभी देशों के समाजवादियों से 'पूंजी' पर "मज़दूर वर्ग की इंजील" के रूप में ध्यान देने की सिफ़ारिश की।

१८ मार्च, १८७१ के विद्रोह के बाद, जिसे इन्टरनेशनल का काम बताने की चेष्टा की गई थी, और कम्यून की पराजय के बाद, जिसकी सभी देशों के पूंजीवादी अख़बारों की लांछना के प्रतिकार का ज़िम्मा इन्टरनेशनल की जनरल कौंसिल ने अपने ऊपर ले लिया था, मार्क्स का नाम सारी दुनिया में ख्यात हो गया। वे वैज्ञानिक समाजवाद के महानतम सिद्धान्ती और पहले अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर आन्दोलन के संगठनकर्त्ता के रूप में मान्य हो गए।

'पूंजी' सभी देशों के समाजवादियों की पाठ्य-पुस्तक बन गई। समाजवादी और मज़दूर वर्गी सभी अख़बार उसके वैज्ञानिक सिद्धान्तों का

---

* **बिस्मार्क, ओटो** (१८१५–१८९८)–प्रशा के राजपुरुष, १८७१ से जर्मन साम्राज्य के चैंसलर।–सं०

** **लासालवादी**–निम्नपूंजीवादी समाजवादी फ़र्दीनान्द लासाल (१८२५–१८६४) के अनुयायी। मार्क्स तथा एंगेल्स ने लासालवाद के सिद्धान्तों, कार्यनीति तथा संगठनात्मक उसूलों की जर्मन मज़दूर आन्दोलन में अवसरवादी प्रवृत्ति कहकर कड़ी आलोचना की है।–सं०

प्रचार करने लगे और न्यूयार्क की एक हड़ताल के दौरान मजदूरों को डटे रहने की प्रेरणा देने और उनकी मांगों की न्याय्यता को प्रदर्शित करने के लिए 'पूंजी' के उद्धरण पर्चों के रूप में प्रकाशित और वितरित किये गये।

मुख्य यूरोपीय भाषाओं – रूसी, फ़ान्सीसी और अंग्रेजी – में 'पूंजी' के अनुवाद हुए और जर्मन, इतालवी, फ़ान्सीसी, स्पेनी और डच भाषाओं में उसके अवतरण प्रकाशित किये गये। यूरोप या अमरीका में विरोधियों ने जब भी उसके सिद्धान्तों का खंडन करने के प्रयास किये, मार्क्सवादियों ने उन्हें ऐसे जवाब दिये कि उनके मुंह बन्द हो गये। आज 'पूंजी' वास्तव में "मजदूर वर्ग की इंजील" बन गई है, जैसा कि इन्टरनेशनल की कांग्रेस ने उसका नामकरण किया था।

अन्तर्राष्ट्रीय समाजवादी आन्दोलन में गरमजोशी से भाग लेने के कारण मार्क्स को वैज्ञानिक काम के लिए कम समय मिलता था। उनकी पत्नी और सबसे बड़ी बेटी, श्रीमती लॉन्गे, की मृत्यु से भी उस काम की हानि हुई।

अपनी पत्नी के प्रति मार्क्स का प्रेम अगाध और प्रगाढ़ था। उनके सौन्दर्य पर मार्क्स गर्व करते थे, उससे आनन्द-विभोर होते थे। पत्नी के विनम्र तथा कोमल स्वभाव से मार्क्स के चिन्तापूर्ण और अनिवार्यतः अभाव-ग्रस्त क्रान्तिकारी समाजवादी जीवन का बोझ हल्का हुआ। जेनी की बीमारी ने, जो उन की मौत का कारण भी बनी, उनके पति की उम्र भी कम कर दी। उनकी लम्बी और दर्दनाक बीमारी के दौरान अनिद्रा के कारण तथा व्यायाम और ताजा हवा के अभाव में नैतिक तथा शारीरिक रूप से श्रान्त-क्लान्त मार्क्स को निमोनिया हो गया जो आख़िर उनकी जान लेकर ही रहा।

श्रीमती मार्क्स कम्युनिस्ट और भौतिकवादी रहते हुए ही २ दिसम्बर, १८८१ को इस संसार से विदा हुईं। मृत्यु उनके लिए त्रासकारी नहीं थी। जब उन्होंने अपना अन्त निकट आते देखा, तो बोलीं: "कार्ल, मेरी शक्ति जवाब दे रही है"। ये ही उनके अन्तिम स्पष्टतः उच्चरित शब्द थे।

वे हाईगेट क़ब्रिस्तान में असंस्कारित ("धर्मच्युत" लोगों के लिए अलग की गई) भूमि में ५ दिसम्बर को दफ़नाई गईं। उनके और मार्क्स के स्वभाव को ध्यान में रखते हुए इस बात की पूरी सावधानी बरती गयी थी कि उनकी अन्त्येष्टि को सार्वजनिक न बनाया जाए और केवल चन्द

मार्क्स का जन्म-नगर – त्रियेर

लन्दन, टेमस

लन्दन के ग्रैफ्टन टिरॅसवाला घर,
जिसमें मार्क्स रहते थे

निकट के मित्र ही उनके चिरविश्राम-स्थल तक उनके साथ गए। मार्क्स के पुराने मित्र एंगेल्स ने ग्रन्त्येष्टि-भाषण किया...

पत्नी की मृत्यु के बाद मार्क्स का जीवन शारीरिक तथा नैतिक दुःखभोग की एक कड़ी बन गया, जिसे उन्होंने महान धैर्य के साथ झेला। वह साल भर बाद ही उनकी बड़ी बेटी, श्रीमती लॉन्गे, की मृत्यु से ग्रौर भी उग्र बन गया। वे टूट चुके थे ग्रौर फिर कभी संभल नहीं सके।

वे ६५ साल की उम्र में १४ मार्च, १८८३, को काम करते हुए ही चल बसे।

पाल लफ़ार्ग

एंगेल्स मेरी स्मृतियों में*

१८६७ में, जिस साल 'पूंजी' का पहला खण्ड प्रकाशित हुग्रा, एंगेल्स से मेरा परिचय हुग्रा।

मार्क्स ने मुझसे कहा "ग्रब चूंकि तुम मेरी बेटी के वर हो, मुझे तुमको एंगेल्स से मिलाना चाहिए," ग्रौर हम मैन्चेस्टर के लिए रवाना हो गए।

एंगेल्स नगर के छोर पर एक छोटे-से मकान में ग्रपनी पत्नी ग्रौर उनकी भतीजी के साथ रहते थे, जो उस समय छः या सात साल की थी। मकान के बिल्कुल पास ही खुला मैदान था। तब वे ग्रपने पिता द्वारा स्थापित किसी कारोबार में हिस्सेदार थे।

मार्क्स की तरह एंगेल्स भी यूरोप में क्रान्ति के विफल हो जाने पर लन्दन उत्प्रवासित हो गए ग्रौर उन्हीं की तरह वे भी ग्रपने को राजनीतिक प्रचार ग्रौर वैज्ञानिक ग्रध्ययन में लगाना चाहते थे।

लेकिन क्रान्ति के तूफ़ान में मार्क्स सपत्नीक ग्रपनी जीविका के साधन खो चुके थे ग्रौर एंगेल्स के पास भी जीवन-निर्वाह के लिए कुछ नहीं रह गया था। इसलिए एंगेल्स को ग्रपने पिता का निमन्त्रण स्वीकार करके मैन्चेस्टर लौटना पड़ा। वहां उन्होंने ग्रपने पिता के कारोबार में फिर से क्लर्क का वही काम करने लगे, जो वे १८४३ में कर रहे थे ग्रौर मार्क्स «*New York*

---

*१९०५ में प्रकाशित।—सं०

Daily Tribune» के लिए साप्ताहिक सम्वादपत्र लिखने लगे, जिससे उनके परिवार की अनिवार्यतम जरूरतें मुश्किल से पूरी हो पाती थीं।

तब से १८७० तक एंगेल्स एक प्रकार का दोहरा जीवन बिताते रहे। रविवार के अलावा बाक़ी दिन वे १० बजे से ४ बजे तक कारोबारी होते थे। उन्हें कई भाषाओं में फ़र्म का पत्रव्यवहार निबटाना और सराफ़ा बाज़ार जाकर फ़र्म की ओर से काम करना होता था। नगर के केन्द्र में उनका औपचारिक निवास-स्थान था, जहां वे अपने कारोबारी मित्रों की आवभगत करते थे, लेकिन नगर के बाहरवाले अपने छोटे से मकान में ही अपने राजनीतिक तथा वैज्ञानिक मित्रों से मिलते-जुलते थे। इन मित्रों में रसायनविज्ञ शोर्लेम्मर तथा सैमुएल मूर भी शामिल थे, जिन्होंने बाद में 'पूंजी' के पहले खण्ड का अंग्रेज़ी में अनुवाद किया।

एंगेल्स की पत्नी जो जन्म से आयरी और जोशीली देशभक्त थीं, मैन्चेस्टर में रहनेवाले अनेक आयरियों से निरन्तर सम्पर्क रखतीं और उन्हें उनके सारे षड्यंत्रों की राई रत्ती ख़बर रहती। कई फ़ीनियनों* को एंगेल्स के घर में पनाह मिली और उनकी पत्नी की बदौलत ही उनके एक नेता, जिन्होंने फांसी के तख़्ते पर ले जाए जानेवाले फ़ीनियनों को छुड़ा ले जाने का प्रयास किया था, पुलिस के चंगुल से बच पाये थे। एंगेल्स ने, जो फ़ीनियनों के आन्दोलन में दिलचस्पी रखते थे, आयरलैण्ड में ब्रिटिश प्रभुत्व का इतिहास लिखने के लिए दस्तावेज़ें जमा की थीं। उसके कुछ हिस्से उन्होंने लिख भी लिए होंगे, जिन्हें उनके कागज़ों में होना चाहिए।**

शाम को कारोबार की गुलामी से मुक्त होकर वे घर जाते थे। वे मैन्चेस्टर के कारख़ानेदारों के कारोबारी जीवन में ही नहीं, बल्कि उनके जशनों और जलसों में भी भाग लेते थे। उनकी सभाओं, दावतों और

---

*फ़ीनियन – १९वीं शताब्दी के छठे तथा आठवें दशकों में आयरलैण्ड के निम्नपूंजीवादी क्रान्तिकारी, जो आयरलैण्ड की राष्ट्रीय स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करते थे।–सं०

**एंगेल्स की असमाप्त पाण्डुलिपि – 'आयरलैण्ड का इतिहास' और इसकी प्रारम्भिक सामग्री का कुछ भाग मार्क्स-एंगेल्स के अभिलेखों के अंग्रेज़ी संस्करण के १०वें खण्ड में ५९–२६३ पृष्ठों पर छापा गया है।–सं०

ग्रामोद-क्रीड़ाओं में शरीक होते थे। वे बढ़िया घुड़सवार थे और उनके पास लोमड़ी के शिकार के लिए अपना ख़ास घोड़ा था। जब प्राचीन सामन्ती प्रथा के अनुसार बड़े और मझोले रईस-अमीर आसपास के घुड़सवारों को लोमड़ियों का शिकार करने के लिए निमंत्रित करते थे, तब वे उनमें भाग लेने से कभी नहीं चुकते थे। शिकार का पीछा करने के मामले में वे सदा खाइयों, झुरमुटों तथा अन्य बाधाओं को लांघ जानेवाले तेज़ घुड़सवारों की पहली पंक्ति में रहते। मार्क्स ने मुझसे एक बार कहा था: "मुझे हमेशा यह खटका बना रहता है कि किसी दिन उनके दुर्घटना-ग्रस्त होने की बात सुनने को मिलेगी..."

मुझे नहीं मालूम कि उनके पूंजीपति वर्ग के परिचितों को उनके जीवन के दूसरे पहलू का ज्ञान था अथवा नहीं, क्योंकि अंग्रेज इतने आत्मसंयत होते हैं कि अपने से असम्बन्धित चीज़ के प्रति बहुत ही कम जिज्ञासा प्रगट करते हैं। बहरहाल, वे उस व्यक्ति के महान बौद्धिक गुणों को तो नहीं ही जानते थे, जिसके साथ उनका हर रोज़ वास्ता पड़ता था, क्योंकि एंगेल्स उनके सामने अपने ज्ञान का बहुत ही कम प्रदर्शन करते थे। वह व्यक्ति, जिसका यूरोप के सबसे बड़े विद्वान के रूप में मार्क्स सम्मान करते थे, उनके लिए महज़ ख़ुशमिज़ाज साथी था, जो अच्छी शराब की क़द्र कर सकता था...

एंगेल्स सदा युवाजन की संगति पसन्द करते थे और बहुत ही मेहमान-नेवाज़ व्यक्ति थे। लन्दन के कितने ही समाजवादी, ब्रिटेन से गुज़रनेवाले कितने ही साथी और सभी देशों के कितने ही उत्प्रवासी रविवारों को उनकी मेहमानी का लुत्फ़ उठाते! ऐसी शामों को वे सभी बहुत ख़ुश होकर उनके घर से जाते। अपनी हाज़िर-दिमाग़ी, अपनी मोहक ज़िन्दादिली और अपनी सतत ख़ुशमिज़ाजी से वे उन शामों में जान डाल देते थे।

• • •

एंगेल्स का ध्यान आते ही फ़ौरन मार्क्स का ध्यान आता है और ऐसा ही इसके उलटे होता है। दोनों के जीवन इतने अधिक गुंथ गये थे कि वे एक ही जीवन प्रतीत होते थे। फिर भी उनके व्यक्तित्व में बहुत भेद था और वे न केवल बाह्य रूप में, बल्कि मिज़ाज, चरित्र और चिन्तन तथा अनुभूति के मामले में भी भिन्न थे।

१८४२ के नवम्बर के अन्त में उनका परिचय हुआ, जब एंगेल्स *«Rheinische Zeitung»* के सम्पादकीय कार्यालय में मार्क्स से मिले। सेन्सर द्वारा उस अखबार का प्रकाशन स्थगित कर दिए जाने के बाद मार्क्स ने शादी की और फ़्रान्स चले गए। सितम्बर १८४४ में एंगेल्स चन्द दिनों तक पेरिस में उनके साथ रहे। एंगेल्स द्वारा लिखित मार्क्स की जीवनी से पता चलता है कि *«Deutsch-Französische Jahrbücher»* के लिए संयुक्त कार्य करने के समय से उनका आपसी पत्राचार प्रारंभ हुआ और उसी समय उनके बीच सहयोग का सूत्रपात हुआ, जो मार्क्स की मृत्यु तक चलता रहा। १८४५ के शुरू में मार्क्स गिजो के मन्त्रिमण्डल द्वारा प्रशियाई सरकार की मांग पर फ़्रान्स से निर्वासित कर दिए गए और ब्रसेल्स चले गए। कुछ ही दिनों बाद एंगेल्स भी वहां पहुंच गए और जब १८४८ की क्रान्ति ने *«Rheinische Zeitung»** को पुनरुज्जीवित कर दिया तब एंगेल्स फिर मार्क्स के साथ उसके सम्पादन के लिए आ गए और मार्क्स की अनुपस्थिति में पत्र का संचालन करते थे।

अपनी बौद्धिक वरिष्ठता के बावजूद सम्पादकीय मंडल के साथियों की दृष्टि में, जो मेधा, क्रान्तिकारी भावना तथा पुरुषार्थ से भरे हुए युवक थे, एंगेल्स को मार्क्स के समान प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं थी। मार्क्स ने मुझे बताया कि एक बार विएना के दौरे से लौटने पर उन्होंने सम्पादकीय मंडल में फूट और झगड़ा पाया, जिसे एंगेल्स तय नहीं करा सके थे। विरोध अत्यन्त तीव्र था और सम्पादक मण्डल में फिर से शान्ति-स्थापन के लिए मार्क्स को अपनी सम्पूर्ण नीतिकुशलता का इस्तेमाल करना पड़ा।

मार्क्स पैदाइशी नेता थे। उनके सम्पर्क में आनेवाला हर व्यक्ति उनसे प्रभावित हो जाता था। एंगेल्स इस बात को स्वीकार करनेवालों में प्रथम थे। वे मुझसे अक्सर कहते थे कि मार्क्स अपने चरित्र की स्पष्टता तथा दृढ़ता द्वारा अपनी युवावस्था से ही हर किसी पर अपनी छाप डाल देते थे और अपने क्षेत्र के बाहरवाले मामलों में भी सभी के पूर्णविश्वासभाजन सच्चे नेता थे, जैसा कि निम्न तथ्य से सिद्ध होता है।

---

* अभिप्राय है *«Neue Rheinische Zeitung»* से, जो १८४८–१८४९ में कोलोन से निकलता था। मार्क्स उसके प्रधान सम्पादक थे।—सं०

वोल्फ़, जिन्हें 'पूंजी' का पहला खण्ड समर्पित किया गया था, एक बार मैन्चेस्टर में अपने घर पर बहुत बीमार हो गए। डाक्टरों ने सारी उम्मीद छोड़ दी थी, लेकिन एंगेल्स और उनके मित्र इस भयानक निर्णय पर विश्वास नहीं कर सके और उन्होंने एकमत से मार्क्स की राय जानने के लिए उन्हें तार देकर बुलाने का निर्णय किया...

मार्क्स और एंगेल्स को एकसाथ मिलकर काम करने की आदत थी। यद्यपि एंगेल्स स्वयं वैज्ञानिक काम की अचूकता में बेहद निष्ठा रखते थे, फिर भी कभी-कभी मार्क्स की अतिसतर्कता पर परेशान हो उठते थे, क्योंकि मार्क्स दसियों ढंग से अपनी बात को सिद्ध किए बिना एक वाक्य भी नहीं लिखते थे।

१८४८ की क्रान्ति की विफलता के बाद दोनों मित्रों को जुदा होना पड़ा। एक मैन्चेस्टर चले गए और दूसरे लन्दन में रहे। लेकिन एक दूसरे के विचारों में निरन्तर बसे रहे और बीस साल तक प्रतिदिन, अथवा लगभग प्रतिदिन, पत्रों द्वारा राजनीतिक घटनाओं की बाबत अपनी धारणाओं तथा विचारों और अपने अध्ययन की प्रगति की एक दूसरे को सूचना देते रहे। यह पत्रव्यवहार आज तक सुरक्षित है।

कारोबारी जीवन से मुक्ति पाते ही एंगेल्स ने मैन्चेस्टर छोड़ दिया और झटपट लन्दन आ गए, जहां मेटलैण्ड पार्क रोड वाले मार्क्स के निवासस्थान से दस मिनट की दूरी पर रीजेण्ट पार्क रोड पर रहने लगे। हर रोज़ लगभग एक बजे वे मार्क्स से मिलने जाते थे और अगर मौसम अच्छा होता और मार्क्स की तबीयत होती तो दोनों हैम्पस्टेड हीथ पर घूमने निकल जाते, अन्यथा मार्क्स के अध्ययनकक्ष में एक कोने से दूसरे कोने तक विपरीत दिशाओं में टहलते हुए घंटा दो घंटे बातें करते रहते।

मुझे अल्बिगोइयों के सम्बन्ध में एक बहस याद है, जो कई दिनों तक चलती रही। उस समय मार्क्स मध्य युग में यहूदी और ईसाई महाजनों की भूमिका का अध्ययन कर रहे थे। अपनी मुलाक़ातों के मध्यान्तर काल में वे विवादग्रस्त प्रश्न का अध्ययन करते थे, ताकि एक राय पर पहुंच सकें। उनके लिए उनके विचारों और काम की और कोई आलोचना उतना महत्व नहीं रखती थी, जितनी उनकी आपसी आलोचना। वे एक दूसरे के सम्बन्ध में ऊंची से ऊंची राय रखते थे।

मार्क्स एंगेल्स के ज्ञान की सार्वभौमिकता तथा अद्भुत बहुमुखी समझ-बूझ, जिससे उनके लिए एक से दूसरे विषय पर पहुंचना बहुत आसान होता था, सराहना करते थकते नहीं थे। दूसरी तरफ़ एंगेल्स मार्क्स की विश्लेषण-संश्लेषण शक्ति पर मुग्ध थे।

एक दिन एंगेल्स ने मुझसे कहा, "पूंजीवादी उत्पादन-पद्धति को स्वभावतः समझा जाता तथा उसकी व्याख्या तो बहरहाल स्वभावतः की ही जाती और उसके विकास के नियम उद्घाटित एवं स्पष्ट तो होते ही, लेकिन उसमें बहुत समय लगता और वह जहां-तहां से जुड़ा-जुड़ाया तथा पैवन्द लगा काम होता। सभी आर्थिक प्रवर्गों की द्वन्द्वात्मक गति का अनुसरण करने, उनके विकास की अवस्थाओं को निर्धारक कारणों के साथ जोड़ने और अर्थशास्त्र की उस सैद्धान्तिक इमारत को निर्मित करने में केवल मार्क्स ही समर्थ हैं, जिसके अलग-अलग हिस्से एक दूसरे को सहारा देते हैं, निर्धारित करते हैं।"

केवल उनके दिमाग़ ही साथ मिलकर काम नहीं करते थे, बल्कि उनके बीच अत्यधिक स्नेहमय अनुराग भी था। उनमें से प्रत्येक यह ध्यान रखता कि दूसरे को किस बात से ख़ुशी होगी, उन्हें एक दूसरे पर गर्व था। एक दिन मार्क्स को उनके हैम्बर्ग वाले प्रकाशक का पत्र मिला, जिसमें उन्होंने लिखा था कि एंगेल्स उनसे मिले थे और एंगेल्स जैसे मोहक व्यक्ति से उनकी पहले कभी भेंट नहीं हुई थी। मार्क्स ख़ुशी से कह उठे, "मैं जानना चाहता हूं कि किसने फ़्रेड को उतना ही प्रीतिकर नहीं पाया है, जितना विद्वान!"

उनका सब कुछ साझा था: धन भी, ज्ञान भी। जब मार्क्स «*New York Daily Tribune*» के सम्वाददाता हुए, तब वे अभी अंग्रेज़ी सीख ही रहे थे। इसलिए एंगेल्स उनके लेखों का अनुवाद करते थे, यहां तक कि जरूरत पड़ने पर ख़ुद ही लिख भी देते थे। इसी तरह, जब एंगेल्स अपना 'ड्यूहरिंग मतखण्डन' तैयार कर रहे थे, तब मार्क्स ने अपना काम स्थगित करके अर्थशास्त्र पर एक निबन्ध लिखा, जिसके एक अंश का एंगेल्स ने अपनी पुस्तक में इस्तेमाल किया और इस बात को सार्वजनिक रूप से स्वीकारा।

एंगेल्स पूरे मार्क्स परिवार के मित्र थे। मार्क्स की बेटियां उनके लिए अपनी बच्चियों जैसी थीं और उन्हें अपना दूसरा पिता कहती थीं। यह मित्रता मार्क्स की मृत्यु के बाद भी क़ायम रही।

मार्क्स की मृत्यु के बाद मात्र एंगेल्स ही ऐसे व्यक्ति थे, जो उनकी पाण्डुलिपियों का पारायण करके उनकी शेष रचनाओं को प्रकाशित करा सकते थे। उन्होंने 'पूंजी' के अन्तिम दोनों खण्डों को प्रकाशनार्थ तैयार करने में अपना पूरा समय लगाने की ख़ातिर विज्ञानों का सामान्य दर्शन लिखने का काम उठाकर एक तरफ़ रख दिया, जिसे वे दस साल से अधिक अर्से से कर रहे थे और जिसके लिए उन्होंने सभी विज्ञानों तथा उनकी नवीनतम प्रगति का सिंहावलोकन किया था।

एंगेल्स परम अध्ययन-प्रिय थे। उनकी दिलचस्पी सभी क्षेत्रों में थी। क्रान्ति की विफलता के बाद वे १८४९ में एक बादबानी जहाज़ से जेनोआ से ब्रिटेन गए, क्योंकि स्विट्ज़रलैण्ड से फ़्रान्स के रास्ते जाना उन्होंने ख़तरे से ख़ाली नहीं समझा। इस अवसर से लाभ उठाकर उन्होंने जहाजरानी के प्रश्नों का अध्ययन किया। इस यात्रा के दौरान वे एक डायरी में सूर्य की स्थिति में होनेवाले परिवर्तनों, हवा के रुख, समुद्र की अवस्था आदि के बारे में लिखते रहे। वह डायरी जरूर उनके काग़ज़ात में होगी, क्योंकि जल्दबाज़ और सदैव गतिशील एंगेल्स अनूढ़ा बुढ़ियों के समान व्यवस्थानिष्ठ थे। वे हर चीज सुरक्षित रखते थे और उसे अत्यधिक सतर्कता से सूची में लिख लेते थे।

भाषाविज्ञान और युद्ध-कला उनके अधिकतम प्रिय विषय थे। इन विषयों को उन्होंने कभी भी छोड़ा नहीं और सदा उनकी प्रगति का अनुसरण करते रहे। वे छोटी से छोटी तफ़सील को भी महत्त्वपूर्ण मानते थे। मुझे याद है कि स्पेनी भाषा के स्वराघात सीखने के लिए वे कैसे स्पेन से आए अपने मित्र मेसा के साथ 'रोमान्सेरो' का ऊंचे-ऊंचे पाठ किया करते थे। यूरोपीय भाषाओं, यहां तक कि बोलियों, का उनका ज्ञान आश्चर्यपूर्ण था।

जब कम्यून के पतन के बाद मैं इन्टरनेशनल की स्पेनी राष्ट्रीय समिति के सदस्यों से मिला, तो उन्होंने मुझसे कहा कि कोई "एंजल" नाम के व्यक्ति मेरी जगह जनरल कौंसिल के स्पेन-सचिव बनाए जा रहे हैं और वे शुद्ध कास्टाइली बोली में लिखते हैं। "एंजल" से उनका तात्पर्य एंगेल्स से ही था, क्योंकि स्पेनी भाषा में इस नाम का ऐसा ही उच्चारण होता

फ़्रेडरिक एंगेल्स, १८३९

Alte

Geschichte

nach dem Vortrage des

Herrn Dr. Clausen

ausgearbeitet

von

FR. ENGELS.
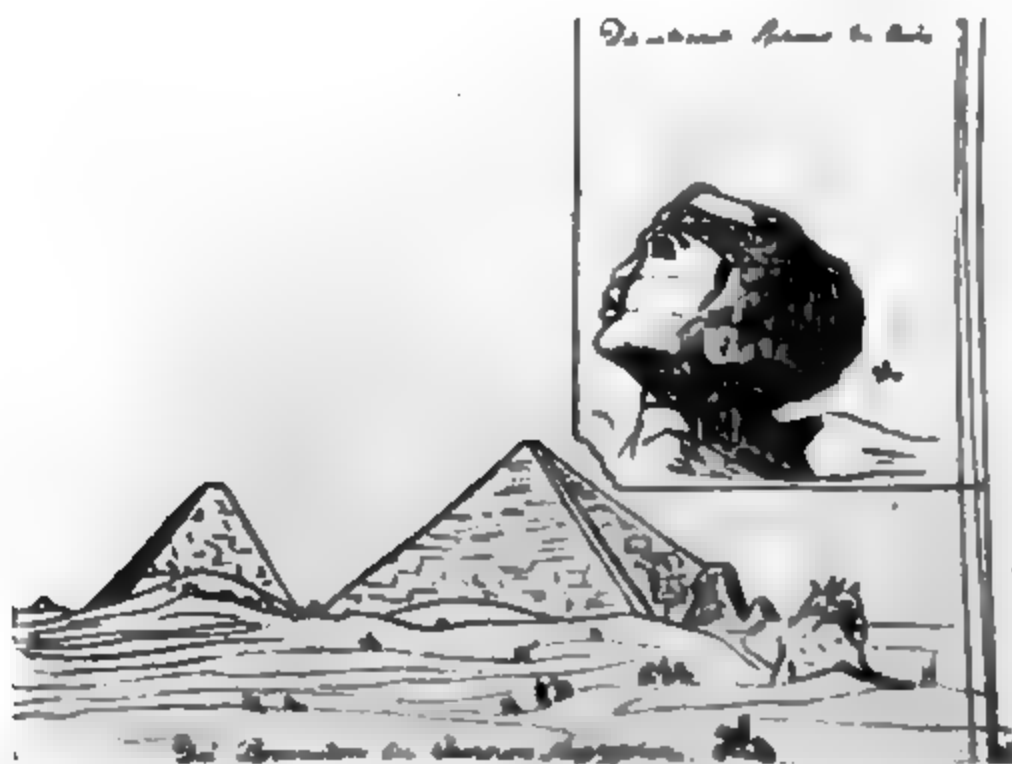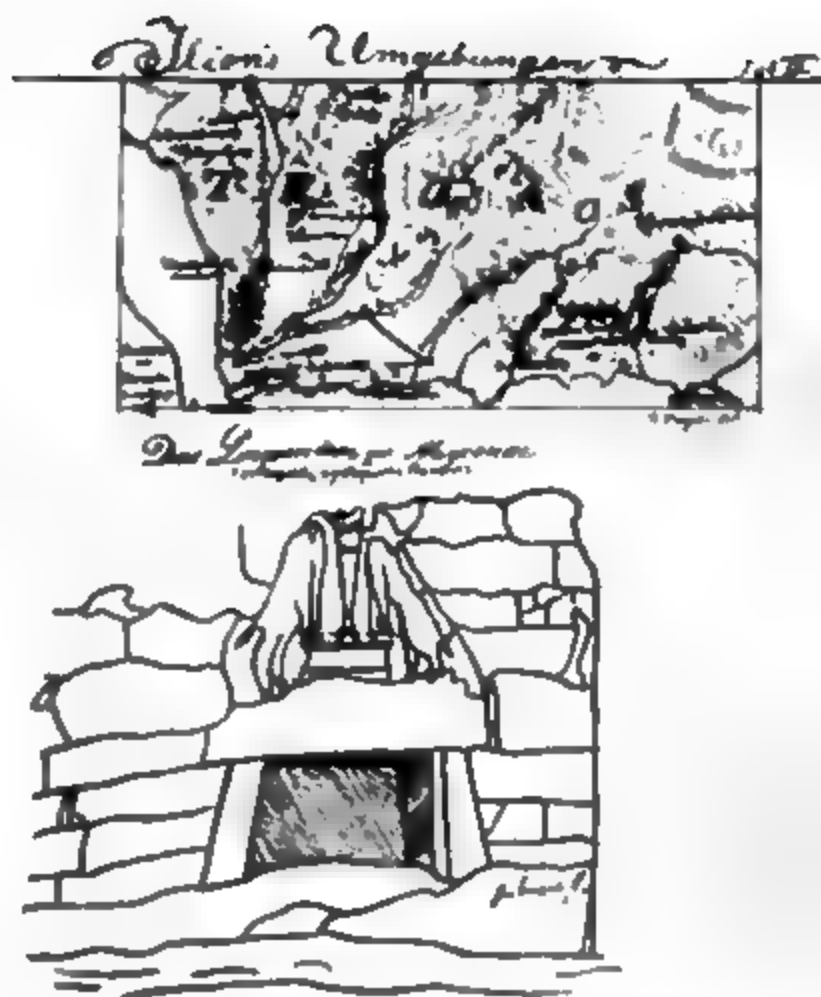
एंगेल्स की स्कूली कापियों में प्राचीन इतिहास की झांकियां

फ्रेडरिक एंगेल्स (पांचवां दशक)

ब्रसेल्स

है। जब मैं लिस्बन गया, तो पुर्तगाली राष्ट्रीय समिति के सचिव फ़ांशिया ने मुझसे कहा कि उन्हें एंगेल्स से विशुद्ध पुर्तगाली में पत्र प्राप्त हुए हैं। स्पेनी और पुर्तगाली की आपसी तथा इतालवी भाषा के साथ, जिसमें भी एंगेल्स उतने ही दक्ष थे, समानताओं और सूक्ष्म भिन्नताओं को देखते हुए यह एक बहुत बड़ी उपलब्धि थी।

अपने साथ पत्र-व्यवहार करनेवालों को उनकी मातृभाषा में पत्र लिखना एंगेल्स के लिये एक प्रकार की आत्मतुष्टि थी। वे लाव्रोव* को रूसी में, फ़ान्सीसियों को फ़ान्सीसी में, पोलों को पोलिश में और इसी प्रकार अन्य को उनकी मातृभाषाओं में पत्र लिखते थे। वे स्थानीय बोलियों में लिखित चीजें पढ़कर आनन्दित होते थे। उन्होंने बिन्यामी** की लोकप्रिय कृतियों को उनके प्रकाशित होते ही मंगा लिया। वे कृतियां मिलान की बोली में थीं।

रैम्सगेट के समुद्र तट पर ब्राजीली जनरल की वर्दी में एक दढ़ियल बौना ख़ास तमाशा बन रहता था, आम लन्दनवासियों की भीड़ उसे घेरे रहती थी। एंगेल्स ने पहले तो उससे पुर्तगाली में बात की, फिर स्पेनी में। लेकिन जवाब नदारद। अन्त में "जनरल" ने ख़ुद एक-दो शब्द कहे। एंगेल्स कह उठे, "अरे, ये ब्राज़ीली महाशय तो आयरी हैं!"—और उन्होंने "जनरल" का उनकी ही बोली में अभिनन्दन किया। अपनी बोली सुनकर उस बेचारे की ख़ुशी से आंखें छलछला आईं।

कम्यूनवाले एक उत्प्रवासी ने आवेश के क्षणों में एंगेल्स के हकलाने पर मजाक़ करते हुए कहा, "एंगेल्स बीस भाषाओं में हकलाते हैं।"

एंगेल्स ज्ञान के किसी भी क्षेत्र के प्रति उदासीन नहीं रहे। अपने जीवन के अन्तिम वर्षों में वे प्रसूति-विज्ञान पर पुस्तकें पढ़ने लगे, क्योंकि

---

*लाव्रोव, प्योत्र लाव्रोविच (१८२३–१९००)—रूसी सार्वजनिक लेखक, नरोदवादी, पहले इन्टरनेशनल के सदस्य, पेरिस कम्यून में भाग लेनेवाले।—सं०

**बिन्यामी, एन्रीको (१८४६–१९२१)—इटली में राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन में भाग लेनेवाले, सार्वजनिक लेखक तथा प्रकाशक।—सं०

उनके घर में रहनेवाली श्रीमती फ़ैबर्गर* डाक्टरी की परीक्षा देने की तैयारी कर रही थीं।

"मानवजाति के लिए काम करने की बात न सोचकर" मात्र आनन्द के लिए इतने सारे विषयों पर ध्यान बिखराने के लिए मार्क्स उन्हें झिड़का करते थे। एंगेल्स का तुर्की-बतुर्की जवाब होता था, "कृषि सम्बन्धी उन रूसी प्रकाशनों को जलाकर मुझे ख़ुशी होगी, जो तुम्हें बरसों से 'पूंजी' को पूरा नहीं करने दे रहे हैं!"

उस समय मार्क्स रूसी भाषा सीख रहे थे, क्योंकि उनके एक पीटर्सबर्गी मित्र डेनियलसन ने उनके पास रूस में कृषि की अवस्था सम्बन्धी जांच-पड़ताल की अनेक मोटी-मोटी रिपोर्टें भेज दी थीं, जिनका प्रकाशन रूसी सरकार ने इसलिए वर्जित कर दिया था कि उनसे उस समय की भयानक स्थिति पर प्रकाश पड़ता था।

किसी भी विषय की छोटी से छोटी तफ़सील तक पारंगत हुए बिना एंगेल्स की ज्ञान-पिपासा शान्त नहीं होती थी। उनके ज्ञान की विविधता और व्याप्ति और साथ ही उनके सक्रिय जीवन को ध्यान में रखनेवाले हर व्यक्ति को इस बात से आश्चर्य होता है कि एंगेल्स, जो किसी भी रूप में अध्ययन-कक्षी विद्वान नहीं थे, कैसे अपने मस्तिष्क में इतना ज्ञान-भंडार भर सके। सटीक और सर्वग्राही स्मरण-शक्ति के साथ-साथ उनमें काम की असाधारण गति थी तथा वे उतनी ही अधिक आश्चर्यजनक सुगमता से सब कुछ समझ भी जाते थे।

वे शीघ्रता और सरलता से काम करते थे। उनके दो बड़े-बड़े, रोशन अध्ययनकक्षों में, जिनकी दीवारों के साथ किताबों की आल्मारियां सजी हुई थीं, काग़ज़ का एक टुकड़ा भी फ़र्श पर नहीं होता था और उनकी मेज पर की दस-बारह किताबों को छोड़कर बाक़ी सभी किताबें अपने स्थान पर होती थीं। वे कमरे किसी विद्वान के अध्ययनकक्ष की अपेक्षा दीवानख़ानों जैसे अधिक लगते थे।

वे अपनी वेश-भूषा का भी बहुत ध्यान रखते थे। वे सदा लक़-दक़ और चुस्त-दुरुस्त रहते थे। सदा ऐसे दिखाई पड़ते थे, मानो प्रशिया की सेना

---

*फ़ैबर्गर लुईज़ा, या काउत्स्की लुईज़ा—आस्ट्रियाई समाजवादी, १८६० से एंगेल्स की सेक्रेटरी।—सं०

में अपनी एकवर्षीय स्वेच्छित सेवा के दिनों की तरह परेड पर जाने को तैयार हों। मैं दूसरे किसी भी ऐसे आदमी को नहीं जानता, जो इतने अधिक दिनों तक वही पोशाकें पहनता रहे और उनमें न तो शिकन पड़ने दे और न उन्हें गन्दा होने दे। जहां तक उनकी निजी आवश्यकताओं का सम्बन्ध था, वे किफ़ायतशार थे और केवल उन्हीं चीजों पर पैसे खर्च करते थे जिन्हें नितान्त आवश्यक समझते थे। लेकिन पार्टी और पार्टी के जरूरतमन्द साथियों के लिए उनकी उदारता की कोई सीमा नहीं थी।

* * *

पहले इन्टरनेशनल की स्थापना के समय एंगेल्स मैन्चेस्टर में रहते थे। उन्होंने इन्टरनेशनल को आर्थिक सहायता दी और जनरल कौंसिल द्वारा स्थापित उसके अख़बार «*The Commonwealth*» के लिए लेख लिखे। फ़ान्सीसी-प्रशियाई युद्ध की घोषणा और अपने लन्दन आ जाने के बाद* वे अपने सर्वलक्षित उत्साह के साथ इन्टरनेशनल के काम में लग गए।

युद्ध के सम्बन्ध में उनकी प्रमुख दिलचस्पी सैनिक दांव-पेच में थी। वे विरोधी सेनाओं की रोज-रोज की गतिविधि का अनुशीलन करते थे और एकाधिक बार उन्होंने जर्मन महाकमान के अगले क़दम की पूर्वघोषणा भी कर दी थी, जैसा कि «*Pall Mall Gazette*»** में प्रकाशित उनके लेखों से प्रगट है। उन्होंने सेदान से दो दिन पहले नेपोलियन की सेना के घिर जाने की भविष्यवाणी की थी।*** प्रसंगवश कहें कि इन भविष्यवाणियों के कारण, जिनकी ब्रिटिश अख़बारों में बहुत चर्चा हुई थी, मार्क्स की सबसे बड़ी बेटी जेनी ने उन्हें "जनरल" की उपाधि दे दी। फ़ान्सीसी साम्राज्य के पतन के बाद एंगेल्स की एकमात्र कामना और एकमात्र आशा फ़ान्सीसी जनतंत्र की विजय थी। एंगेल्स और मार्क्स का कोई पितृदेश नहीं था। मार्क्स के शब्दों में वे दोनों ही विश्व नागरिक थे।

---

*सितम्बर, १८७० में। – सं०

**«*Pall Mall Gazette*» – अंग्रेजी समाचारपत्र; १८६५ से लन्दन से प्रकाशित। – सं०

***१ सितम्बर, १८७० को सेदान की लड़ाई में नेपोलियन तृतीय समेत फ़ांसीसी सेना घेरे में ले ली गई और २ सितम्बर को उसने आत्मसमर्पण किया। – सं०

विल्हेल्म लीब्कनेख़्त

मार्क्स के संस्मरणों* के कुछ अंश

मुझसे सैकड़ों बार मार्क्स और उनके साथ अपने निजी सम्बन्ध की बाबत लिखने का तक़ाज़ा किया गया है और मैंने हर बार इनकार कर दिया है। मैंने मार्क्स के प्रति गहरे सम्मान के कारण ही ऐसा किया था, क्योंकि शायद काम मेरे बस का नहीं था या समयाभाव के कारण उनकी बाबत जल्दबाज़ी में, बेढंगे तरीक़े से लिखना मार्क्स की स्मृति के लिए अपमानकर होता।

इसपर यह आपत्ति उठाई गई कि सरसरी तौर से अंकित शब्द-चित्र का भी बेढंगा अथवा उतावली भरा होना आवश्यक नहीं है, कि मैं जो बातें बता सकता हूं वह कोई और नहीं बता सकता, कि जो कुछ भी मार्क्स की बेहतर जानकारी में हमारे मज़दूरों और हमारी पार्टी की सहायता कर सकता है, वह निर्विवाद रूप से मूल्यवान है। तो या तो जो कुछ मुझे मालूम है उसे चाहे अपूर्ण ढंग से ही कहूं या बिलकुल मौन रहूं? ज़ाहिर है कि पहली चीज़ ही बेहतर है। इस तरह मुझे अन्त में राज़ी होना पड़ा...

---

*लीब्कनेख़्त, विल्हेल्म (१८२६–१६००) – जर्मन तथा अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर आन्दोलन के प्रख्यात नेता, जर्मन सामाजिक-जनवाद के एक संस्थापक तथा नेता; मार्क्स और एंगेल्स के मित्र और सहकर्मी। संस्मरण १८६६ में प्रकाशित किये गये। – सं०

वैज्ञानिक, *«Rheinische Zeitung»* के सम्पादक, *«Deutsch-Französische Jahrbücher»* के सहसंस्थापक, 'कम्युनिस्ट घोषणापत्र' के सहलेखक, *«Neue Rheinische Zeitung»* के सम्पादक तथा 'पूंजी' के रचयिता के रूप में मार्क्स समाज के हैं... उन मार्क्स की वावत लिखना मेरे लिए मूर्खता होती, क्योंकि मेरे लिए अपने तात्कालिक दैनिक कामों से जितना थोड़ा समय निकाल सकना संभव था, उतने समय में उस तरह की चीज नहीं लिखी जा सकती थी। उसके लिए गंभीर वैज्ञानिक कार्य की आवश्यकता होती। लेकिन उसके लिए मैं समय कहां से पाता?

इसलिए इस संक्षिप्त शब्द-चित्र में वैज्ञानिक तथा राजनीतिज्ञ मार्क्स का जिक्र मैं केवल प्रसंगवश और जीवन-वृत्त के सिलसिले में ही करूंगा। मार्क्स का वह पक्ष हर किसी के लिए स्पष्ट है। मैं मार्क्स के उस मानवीय रूप को ही दर्शाने की चेष्टा करूंगा, जैसा कि मैं ख़ुद उसे जानता था।

१

मार्क्स के साथ पहली भेंट

मार्क्स की दोनों बड़ी बेटियों के साथ, जो उस समय ७ और ६ साल की थीं, मेरी मित्रता मेरे लन्दन पहुंचने के चन्द दिनों वाद शुरू हुई। मैं "आज़ाद" स्विट्ज़रलैण्ड की जेल से छूटकर गुज़रने की अनुमति लिए हुए फ़ान्स के रास्ते वहां पहुंचा था। मार्क्स परिवार से मेरी भेंट कहीं लन्दन के पास, मुझे याद नहीं कि ग्रीनविच में अथवा हैम्पटन कोर्ट में, मजदूरों की कम्युनिस्ट शिक्षा समिति* के ग्रीष्मोत्सव के अवसर पर हुई।

"पिता मार्क्स", जिन्हें मैंने पहले कभी नहीं देखा था, पैनी नजर से मेरी आंखों में झांकते और मेरे सिर को ग़ौर से जांचते हुए तत्काल मेरी कठोर परख करने लगे...

---

*मजदूर शिक्षा समिति १८४० में लन्दन में स्थापित हुई। १८४७-१८५० में तथा १९वीं शताब्दी के सातवें तथा आठवें दशकों में वह मार्क्स के अत्यधिक प्रभाव में थी।—सं०

परख सकुशल समाप्त हुई और मैं उस सघन काले केश-मंडित सिंहवत शीशवाले आदमी की तीक्ष्ण दृष्टि झेल गया। तब शुरू हुई दिलचस्प और हंसी-ख़ुशी की बातें और हम शीघ्र ही उल्लसित उत्सव-समारोही जमघट के बिलकुल केन्द्र में पहुंच गए, जिसमें मार्क्स सबसे अधिक ज़िन्दादिलों में दिखाई पड़ रहे थे। फ़ौरन श्रीमती मार्क्स, नौउम्री से ही उनकी वफ़ादार सहायिका हेलेन और सभी बच्चों से मेरा परिचय कराया गया। उस दिन से मैं मार्क्स के घर का अपना आदमी बन गया और लगभग हर दिन ही वहां जाने लगा। वे तब ऑक्सफ़ोर्ड स्ट्रीट के पास डीन स्ट्रीट पर रहते थे और मैंने पड़ोस में ही चर्च स्ट्रीट पर डेरा लगा लिया था।

२

पहली बातचीत

उपर्युक्त उत्सव में मिलने के दूसरे दिन मार्क्स के साथ मेरी पहली लम्बी बातचीत हुई। ज़ाहिर है कि हम लोग वहां कोई गंभीर बातचीत नहीं कर सके थे, इसलिए मार्क्स ने अगले दिन मज़दूरों की शिक्षा समिति की इमारत में आने का निमंत्रण दिया और कहा कि शायद एंगेल्स भी वहां होंगे।

मैं नियत समय से कुछ पहले ही पहुंच गया। मार्क्स अभी नहीं आए थे, लेकिन कई पुराने परिचितों से मुलाक़ात हो गई और मैं उनके साथ उल्लासपूर्वक बातचीत में मस्त था, जब मार्क्स ने मेरा कन्धा थपथपाकर दोस्ताना ढंग से अभिवादन किया और कहा कि एंगेल्स "बैठक-ख़ाने" में हैं, जहां हम लोग अधिक निर्विघ्न रहेंगे।

मैं नहीं जानता था कि तथाकथित "बैठकख़ाने" से उनका क्या अभिप्राय है और मुझे लगा कि अब "बड़ी" परख शुरू होनेवाली है। फिर भी मैं भरोसे के साथ मार्क्स के पीछे-पीछे हो लिया। मार्क्स ने पहले दिन के समान ही मेरे मन पर प्रीतिकर प्रभाव डाला, उनमें भरोसा पैदा करने की अद्भुत क्षमता थी। वे मेरी बांह में बांह डालकर मुझे "बैठकख़ाने"

में ले गए, जहां एंगेल्स काली बियर का मग लेकर बैठे हुए थे। उन्होंने हंसी-मजाक़ करते हुए मेरा स्वागत किया।

फुर्तीली परिचारिका एमी को फ़ौरन पीने और कुछ खाने के लिये लाने का आदेश दिया गया क्योंकि हम उत्प्रवासियों के लिये भोजन की समस्या बहुत महत्त्वपूर्ण थी। हम बैठ गये, मैं मेज़ की एक तरफ़ और मार्क्स तथा एंगेल्स दूसरी तरफ़। महोगनी की भारी मेज़, चमकते हुए जाम, फेनिल बियर, असली इंगलिश रोस्टबीफ़ की प्रत्याशा और धूम्रपान के लिए आमंत्रित करते हुए मिट्टी के लम्बे-लम्बे पाइप – इन सारी चीज़ों से एक ऐसा सुखद वातावरण प्रस्तुत था कि मुझे डिकेंस की कृति पर आधारित एक चित्र की बरबस याद आ गई। लेकिन परीक्षा तो होनी ही थी! ख़ैर, कोई बात नहीं। मैं निभा लूंगा! बातचीत अधिकाधिक अनुप्राणित होती गई...

गत साल जेनेवा में एंगेल्स से मिलने के पहले मार्क्स या एंगेल्स से मेरा कभी कोई व्यक्तिगत सम्पर्क नहीं हुआ था। पेरिस के *«Jahrbücher»* में प्रकाशित मार्क्स के लेख, उनकी पुस्तक 'दर्शन की दरिद्रता' तथा एंगेल्स की 'इंगलैण्ड में मज़दूर वर्ग की स्थिति', इन दोनों की बस यही कृतियां मैंने पढ़ी थीं। १८४६ से कम्युनिस्ट होते हुए भी मैं राइख़ संविधान आन्दोलन* के बाद एंगेल्स से मिलने के कुछ ही समय पहले 'कम्युनिस्ट घोषणापत्र' हासिल कर सका था, हालांकि मैं उसकी बाबत पहले से सुन चुका था और उसका अन्तर्य जानता था। जहां तक *«Neue Rheinische Zeitung»* का सम्बन्ध है, मैं उसे बहुत कम देख पाया था, क्योंकि उसके ग्यारह महीने के प्रकाशन-काल में या तो मैं विदेश में था, या जेल में, अथवा विद्रोही का अस्तव्यस्त तथा तूफ़ानी जीवन बिता रहा था।

मेरे दोनों परीक्षकों को मुझपर टुटपुंजिया वर्गी "जनवादिता" और "दक्षिणी जर्मन भावुकता" का सन्देह था और उन्होंने लोगों तथा चीज़ों की बाबत व्यक्त की गई मेरी चन्द रायों की कड़ी आलोचना की... लेकिन

---

*दक्षिण-पश्चिमी जर्मनी में क्रान्तिकारी संघर्ष १८४९ के वसन्त तथा गर्मी में अखिल जर्मनी के (तथाकथित राइख़) संविधान के नाम पर चला। – सं०

कुल मिलाकर परीक्षा अच्छी ही रही और बातचीत धीरे-धीरे दूसरे विषयों पर पहुंच गई।

शीघ्र ही हमारे बीच प्राकृतिक विज्ञान की चर्चा चल पड़ी और मार्क्स यूरोप के विजयी प्रतिक्रियावादी हल्कों की खिल्ली उड़ाने लगे, जो समझते थे कि उन्होंने क्रान्ति का गला घोंट दिया और यह अनुमान नहीं कर सकते थे कि प्राकृतिक विज्ञान नयी क्रान्ति की तैयारी कर रहा है। महारानी भाप ने पिछली सदी में सारी दुनिया में क्रान्ति पैदा कर दी थी, लेकिन आज उसने अपना सिंहासन खो दिया है और उसका स्थान उससे भी बड़ी क्रान्तिकारी शक्ति – बिजली की चिनगारी – ले रही है। इसी सिलसिले में मार्क्स ने बड़े उत्साह के साथ मुझसे बिजली के इंजन के उस नमूने की चर्चा की जो रीजेण्ट स्ट्रीट पर कुछ दिनों से प्रदर्शित था और जिससे रेलगाड़ी चलाई जा सकती थी।

उन्होंने कहा, "अब समस्या हल हो गई और उसके परिणामों का अन्दाजा नहीं लगाया जा सकता। आर्थिक क्रान्ति के बाद राजनीतिक क्रान्ति का होना लाजिमी है, क्योंकि दूसरी तो पहली की अभिव्यक्ति मात्र है।"

मार्क्स ने जिस तरह विज्ञान और यान्त्रिकी के विकास की बात की, उससे उनका समस्त विश्वदृष्टिकोण, विशेषतः बाद में इतिहास की भौतिकवादी अवधारणा कहलानेवाला दृष्टिकोण, इतना स्पष्ट हो गया कि मेरे रहे-सहे सन्देह भी बसन्ती धूप में बर्फ़ की तरह गल गए।

मैं उस रात घर नहीं लौटा। हम सुबह होने तक बतियाते, हंसते-हंसाते और पीते-पिलाते रहे और जब मैं बिस्तर पर गया तो दिन चढ़ चुका था। लेकिन मैं देर तक पड़ा नहीं रह सका। मुझे नींद नहीं आ रही थी, क्योंकि मेरे दिमाग़ में पिछली रात की सारी बातें चक्कर काट रही थीं और विचारों की तुमुल शृंखला ने मुझे बिस्तर छोड़कर सड़क पर निकल जाने के लिए बाध्य कर दिया।

मैं रीजेण्ट स्ट्रीट की ओर चल पड़ा, ताकि उस आधुनिक त्रायन घोड़े का नमूना देख सकूं, जिसे पूंजीवादी समाज अपनी आत्मघाती अन्धता में गद्गद होकर पुराने त्रायवासियों की तरह अपने इलियन में लाया था और जिसे उसके अनिवार्य विनाश का कारण बनना था। Essetai heemar– पावन इलियन के पतन का दिन आ रहा है!

जहां उक्त इंजन प्रदर्शित था, वहां मुझे लोगों की भारी भीड़ दिखाई दी। मैं ठेलता हुआ आगे बढ़ा और शीशे के पीछे बिजली के इंजन और रेलगाड़ी के डिब्बों को तेजी से भागते हुए पाया...

यह बात १८५० के जुलाई महीने के शुरू की है।

२

मार्क्स – क्रान्तिकारियों के शिक्षक और गुरु

"मूर" हम "तरुणों" से ५ या ६ साल ही बड़े थे, लेकिन हमारे सम्बन्ध में अपनी परिपक्वता की गुरुता का उन्हें पूरा एहसास था और हम लोगों की, ख़ासकर मेरी, जांच के लिए हर अवसर से लाभ उठाते थे। उनके प्रकाण्ड अध्ययन तथा अद्भुत स्मरण-शक्ति के कारण हममें से कइयों को लोहे के चने चबाने पड़ते थे। हममें से किसी न किसी "विद्यार्थी" को कोई टेढ़ा प्रश्न देकर और उसके आधार पर हमारे विश्वविद्यालयों तथा हमारी वैज्ञानिक शिक्षा की पूर्ण निस्सारता सिद्ध करने में उन्हें मजा आता था।

लेकिन उन्होंने शिक्षा भी दी और उनकी शिक्षा योजनाबद्ध थी। उनके बारे में मैं संकुचित और व्यापक दोनों अर्थों में कह सकता हूं कि वे मेरे गुरु थे और यह बात सभी क्षेत्रों पर लागू होती है। राजनीतिक अर्थशास्त्र की तो मैं बात ही नहीं करता, क्योंकि पोप के महल में पोप की बात नहीं की जाती। कम्युनिस्ट लीग में राजनीतिक अर्थशास्त्र पर उनके व्याख्यानों की बात मैं बाद में करूंगा। मार्क्स को प्राचीन और आधुनिक भाषाओं का बहुत अच्छा ज्ञान था। मैं भाषाविज्ञ था और अरस्तू अथवा एस्कीलस का कोई ऐसा कठिन अंश मुझे दिखाने का अवसर पाकर उन्हें बच्चों जैसी ख़ुशी होती थी, जो मैं फ़ौरन नहीं समझ सकता था। उन्होंने एक दिन मुझे इसलिए बहुत बुरा-भला कहा कि मैं... स्पेनी भाषा नहीं जानता था और किताबों के एक ढेर में से 'डॉन क्विक्ज़ोट' निकालकर मुझे सबक़ देने लगे। मैं दीत्स लिखित लातीनी भाषाओं के तुलनात्मक व्याकरण से स्पेनी के व्याकरण तथा शब्द-विन्यास के नियम जान चुका था,

इस लिए "मूर" के उत्कृष्ट पथ-प्रदर्शन और मेरे रुकने या लड़खड़ाने की सूरत में उनकी सतर्क सहायता से काम काफ़ी ढंग से चलता रहा। वे, जो वैसे तो इतने उतावले थे, पढ़ाने में कितने धैर्यवान थे! मिलनेवाले किसी व्यक्ति के आ जाने पर ही सबक़ का अन्त होता था। जब तक उन्होंने मुझे पर्याप्त योग्यता सम्पन्न नहीं समझ लिया, तब तक मुझसे रोज़ सवाल पूछते रहे और मुझे 'डॉन क्विक्ज़ोट' अथवा अन्य किसी स्पेनी पुस्तक के अंश का अनुवाद करना पड़ता था।

मार्क्स अद्भुत भाषाशास्त्री थे, यद्यपि प्राचीन भाषाओं से अधिक आधुनिक भाषाओं के ज्ञाता थे। उन्हें ग्रिम के जर्मन व्याकरण का अधिकतम अचूक ज्ञान था। वे ग्रिम-बन्धुओं के शब्दकोश को मुझ भाषाविद् की अपेक्षा अधिक अच्छी तरह समझते थे। वे किसी अंग्रेज़ या फ़्रान्सीसी की भांति ही बढ़िया अंग्रेज़ी या फ़्रान्सीसी लिख सकते थे यद्यपि उनका उच्चारण इतना अच्छा नहीं था। «*New York Daily Tribune*» के लिए उनके लेख क्लासीकी अंग्रेज़ी में और प्रूधों के 'दरिद्रता के दर्शन' के विरुद्ध उनकी 'दर्शन की दरिद्रता' क्लासीकी फ़्रान्सीसी में लिखे गए थे। छपने से पहले यह दूसरी रचना उन्होंने जिस फ़्रान्सीसी मित्र को दिखाई, उन्होंने उसमें बहुत ही कम काट-छांट की।

चूंकि मार्क्स भाषा का मर्म समझते थे और उन्होंने उसके उद्गम, विकास तथा विन्यास का अध्ययन किया था, अतः उनके लिए भाषाएं सीखना कठिन नहीं था। लन्दन में उन्होंने रूसी सीखी और क्रीमियाई युद्ध के दौरान तुर्की और अरबी सीखने का भी इरादा किया, लेकिन उसे पूरा नहीं कर सके। भाषा पर सचमुच अधिकार जमाने के आकांक्षी के अनुरूप ही, वे पठन को सर्वाधिक महत्त्व प्रदान करते थे। अच्छी स्मरण-शक्ति रखनेवाला व्यक्ति – और मार्क्स की स्मरण-शक्ति इतनी अद्भुत थी कि उसे कभी कुछ नहीं भूलता था – शीघ्र ही शब्द-भंडार और पदविन्यास संचित कर लेता है। उसके बाद व्यावहारिक इस्तेमाल आसानी से सीखा जा सकता है।

मार्क्स ने १८५० और १८५१ में राजनीतिक अर्थशास्त्र पर क्रमबद्ध रूप से कई व्याख्यान दिये। वे इसके लिये राज़ी तो नहीं थे, लेकिन चूंकि अपने कुछ निकटतम मित्रों के बीच निजी तौर से चन्द व्याख्यान दे चुके थे, इसलिये हमारे अनुरोध पर अधिक विस्तृत श्रोताओं के सामने भाषण

करने को भी तैयार हो गये। उस व्याख्यान-माला में, जिसे सुननेवाले सभी सौभाग्यशील श्रोताओं को अत्यन्त आनन्द प्राप्त हुआ, मार्क्स ने अपनी मत-पद्धति के उसूलों को ठीक वैसे ही विकसित किया, जैसे 'पूंजी' में उसका स्पष्टीकरण किया गया है। उस समय तक ग्रेट विण्डमिल स्ट्रीट पर ही स्थित कम्युनिस्ट शिक्षा-समिति के खचाखच भरे हॉल में, उसी हॉल में, जहां डेढ़ साल पहले 'कम्युनिस्ट घोषणापत्र' स्वीकृत किया गया था, मार्क्स ने ज्ञान-प्रचार की उल्लेखनीय प्रतिभा प्रदर्शित की। वे विज्ञान के भ्रष्टीकरण, अर्थात् उसके मिथ्यापन, निकृष्टीकरण और जड़ीकरण, के अनन्य विरोधी थे। अपने विचारों को स्पष्टतः अभिव्यक्त करने में उनसे अधिक समर्थ कोई नहीं था। कथन की स्पष्टता चिन्तन की स्पष्टता का फल होती है और स्पष्ट विचार अनिवार्यतः स्पष्ट अभिव्यक्ति का कारण होते हैं।

मार्क्स बहुत ढंग से शिक्षण करते थे। वे संक्षिप्ततम संभव रूप में किसी प्रस्थापना का निरूपण करते और फिर अधिकतम सावधानी के साथ मजदूरों की समझ में न आनेवाली अभिव्यक्तियों से बचते हुए उसकी विस्तृत व्याख्या करते। उसके बाद अपने श्रोताओं को प्रश्न पूछने के लिए आमंत्रित करते थे। अगर प्रश्न न पूछे जाते, तो वे जांच करना शुरू कर देते और ऐसी शैक्षणिक निपुणता के साथ जांच करते कि कोई ख़ामी, कोई ग़लतफ़हमी उनकी निगाह से बच नहीं रहती थी।

एक दिन इस निपुणता पर जब मैंने आश्चर्य प्रगट किया, तब मुझे बताया गया कि मार्क्स ब्रसेल्स की जर्मन मजदूर समिति* में भी व्याख्यान दे चुके हैं। बहर-हाल, उनमें श्रेष्ठ शिक्षक के सभी गुण मौजूद थे। शिक्षण में वे श्याम-पट्ट का भी इस्तेमाल करते थे, जिसपर सूत्र लिख देते थे। उन सूत्रों में वे भी शामिल होते थे, जिन्हें हम सभी 'पूंजी' के प्रारंभिक पृष्ठों से ही जानते थे।

---

*जर्मन मजदूर समिति – मजदूरों की राजनीतिक शिक्षा तथा वैज्ञानिक कम्युनिज्म के विचारों के प्रचार के हेतु अगस्त १८४७ में मार्क्स और एंगेल्स द्वारा ब्रसेल्स में स्थापित की गयी। फ्रांस में १८४८ की पूंजीवादी फ़रवरी क्रान्ति के शीघ्र ही बाद इसका अस्तित्व समाप्त हो गया। – सं०

खेद की बात है कि व्याख्यान-माला केवल ६ महीने अथवा उससे भी कम चली।

कम्युनिस्ट शिक्षा-समिति में ऐसे तत्त्व घुस आए, जिन्हें मार्क्स ना-पसन्द करते थे। उत्प्रवास की लहर के शान्त हो जाने पर समिति संकुचित हो गयी और उसने किसी क़दर संकीर्ण स्वरूप ग्रहण कर लिया। वाइटलिंग* और कावे** के पुराने अनुयायियों ने फिर से सिर उठाया और मार्क्स उस समिति से अलग हो गये।

मार्क्स भाषा के मामले में हठधर्मी की हद तक शुद्धताग्रही थे। अपनी उत्तर हेस्सी बोली के कारण, जो मुझसे त्वचा की भांति चिपकी रही, अथवा मैं उससे चिपका रहा, मुझे अनेक बार उनकी खरी-खोटी सुननी पड़ी। मैं सिर्फ़ यह स्पष्ट करने के लिये इन छोटी-छोटी बातों का ज़िक्र कर रहा हूं कि मार्क्स किस हद तक अपने को हम "नौजवानों" का शिक्षक समझते थे।

यह बात स्वभावतः एक दूसरे रूप में भी सामने आती थी: वे हमसे अत्यधिक का तक़ाज़ा रखते थे। हमारी जानकारी में जैसे ही वे कोई कमी पाते, वैसे ही अत्यन्त ज़ोरदार ढंग से उसकी पूर्ति के लिए आग्रह करते और ऐसा करने के लिए आवश्यक सलाह भी देते। जो कोई भी उनके साथ अकेला रह जाता, उसकी बाक़ायदा परीक्षा लेने लगते और वे परीक्षाएं कुछ खेल नहीं होती थीं। उनकी आंखों में धूल नहीं झोंकी जा सकती थी। अगर किसी पर अपनी मेहनत बेकार जाती देखते, तो उसके साथ उनकी दोस्ती का अन्त हो जाता। उनकी "मास्टरी" में होना हमारे लिए गौरव की बात थी। मैं जब भी उनसे मिलता, अवश्य कुछ न कुछ सीखता...

उन दिनों ख़ुद मज़दूर वर्ग की एक नगण्य अल्पसंख्या ही समाजवाद के स्तर तक ऊपर उठी थी और समाजवादियों में भी मार्क्स की वैज्ञानिक शिक्षा के अर्थ में, 'कम्युनिस्ट घोषणापत्र' के अर्थ में, अल्पसंख्यक ही

---

*वाइटलिंग, विल्हेल्म (१८०८–१८७१)–कल्पनावादी समतावादी कम्युनिज़्म के एक सिद्धान्तकार, पेशे से दर्ज़ी।–सं०

**कावे, एत्येन (१७८८–१८५६)–कल्पनावादी कम्युनिज़्म के विख्यात प्रतिनिधि, अमरीका में कम्युनिस्ट बस्ती के संस्थापक।–सं०

समाजवादी थे। अधिकतर मजदूर, अगर वे राजनीतिक जीवन के प्रति कुछ जागरूक हुए भी थे, तो ऐसी भावुकतापूर्ण जनवादी आकांक्षाओं और लफ़्फ़ाजियों के कुहासे में फंसे हुए थे, जो १८४८ के क्रान्तिकारी आन्दोलन, उसकी पूर्वपीठिका तथा परिणति के लिए चारित्रिक थीं। मार्क्स के लिए लोगों की शाबाशी और वाहवाही इस बात का सबूत होती थी कि आदमी ग़लत रास्ते पर है और दान्ते की यह गर्वोक्ति उनका प्रिय कथन थी कि «Segui il tuo corso, e lascia dir le genti!» ("अपनी राह चलते जाओ, लोगों को कुछ भी कहने दो!")

कितना अक्सर वे उक्त पंक्तियों का हवाला देते थे, जिनके साथ उन्होंने 'पूंजी' की भूमिका भी समाप्त की थी। चोट, धक्के, अथवा मच्छरों और खटमलों के काटने के प्रति कोई भी उदासीन नहीं रह सकता। फिर मार्क्स ने, जिन पर हर तरफ़ से हमले होते रहते थे, रोटी की चिन्ता ने जिनका सत निकाल लिया था, जिन्हें वे मेहनतकश ही सही तौर से नहीं समझते थे जिनकी आजादी की लड़ाई के लिए उन्होंने रात के सन्नाटों में हथियार गढ़े थे और जो कभी कभी कोरे बातूनियों, मक्कार ग़द्दारों या खुले दुश्मनों तक का अनुगमन करते हुए उनकी उपेक्षा भी करते थे— उन मार्क्स ने अपने को साहस तथा नूतन उत्साह से अनुप्राणित करने के लिए उन फ़्लोरेन्सी महापुरुष के उक्त शब्दों को अपने दैन्यपूर्ण, सही मानी में सर्वहारा अध्ययनकक्ष में कितना अक्सर मन ही मन दुहराया होगा!

उन्हें गुमराह नहीं किया जा सकता था। मार्क्स अलिफ़ लैला के शाहजादे की तरह नहीं थे, जिसने विजय और उसके पुरस्कार को सिर्फ़ इस कारण खो दिया था कि वह अपने चारों तरफ़ के शोर-शराबे और प्रेतछायाओं से भयभीत होकर बुज़दिली के साथ चौतरफ़ा देखता रह गया था। वे अपने उज्ज्वल लक्ष्य पर नजर टिकाये हुए आगे बढ़ते गए...

वे वाहवाही से जितनी नफ़रत करते थे, वाहवाही के पीछे दौड़नेवालों पर उन्हें उतना ही ग़ुस्सा आता था। उन्हें लफ़्फ़ाजों से घृणा थी और अगर उनकी मौजूदगी में कोई लफ़्फ़ाजी के फेर में पड़ा तो उसकी तो शामत ही समझिए। ऐसे लोगों के प्रति वे निर्मम थे। उनकी ज़बान में "लफ़्फ़ाज़" सबसे बड़ी गाली थी और जिसे वे एकबार लफ़्फ़ाज़ कह देते थे, उसके साथ हमेशा के लिए सम्बन्ध तोड़ लेते थे। हम "नौजवानों"

के सम्मुख वे "तार्किक चिन्तन और स्पष्ट अभिव्यक्ति" की आवश्यकता पर ज़ोर देते रहते थे और हमें अध्ययन के लिए मजबूर करते थे।

उस समय तक पुस्तकों के अपार भण्डारवाला ब्रिटिश म्युज़ियम का शानदार वाचनालय निर्मित हो चुका था। मार्क्स वहां रोज़ जाते थे और हमसे भी जाने का तक़ाज़ा करते थे। "अध्ययन करो, अध्ययन करो"– यह था उनका दो टूक आदेश, जो हमें अक्सर सुनने को मिलता था और जो अपने महान मस्तिष्क के सतत कार्य की अपनी निजी मिसाल द्वारा भी वे हमें देते रहते थे।

दूसरे उत्प्रवासी जब हर दिन विश्व-क्रान्ति की योजनाएं बनाया करते थे और "क्रान्ति कल शुरू हो जाएगी"–जैसे अफ़ीमी नारों से अपने को बदमस्त रखते थे, हम, "गन्धकी गिरोहिए", "डाकेज़न", "मानवजाति की तलछट", ब्रिटिश म्युज़ियम में अपना समय बिताते थे और अपने को शिक्षित करने तथा भविष्य की लड़ाई के लिए शस्त्रास्त्र तैयार करने की कोशिश करते थे।

कभी-कभी हमारे पास खाने को कुछ भी नहीं होता था, फिर भी हम म्युज़ियम ज़रूर जाते थे। कारण कि वहां बैठने को आरामदेह कुर्सियां होती थीं और जाड़ों में वह स्थान हमारे घरों की तुलना में (जिनके अपने घर थे भी) अधिक गर्म तथा सुखद होता था।

मार्क्स कठोर शिक्षक थे। वे केवल हमसे अध्ययन करने का तक़ाज़ा ही नहीं, बल्कि इस बात की जांच भी करते थे कि हम सचमुच अध्ययन करते हैं।

मैं बहुत अर्से तक ब्रिटिश ट्रेड-यूनियनों के इतिहास का अध्ययन करता रहा। वे हर रोज़ मुझसे पूछते कि मैं कहां तक पहुंचा हूं और जब तक मैंने एक बड़ी सभा में एक लम्बी वक्तृता नहीं दे डाली, उन्होंने मुझे चैन नहीं लेने दिया। वे सभा में मौजूद थे। उन्होंने मेरी प्रशंसा नहीं की, लेकिन कड़ी आलोचना भी नहीं की। चूंकि प्रशंसा करने की उनकी आदत नहीं थी और करते भी थे तो केवल दया भाव से, इसलिए उनकी प्रशंसा के अभाव पर मैंने अपने मन को तसल्ली दे ली। फिर जब वे मेरी एक प्रस्थापना पर मुझसे बहस में उलझ गए, तो मैंने उसे अप्रत्यक्ष प्रशंसा ही समझा।

मार्क्स में शिक्षक का एक विरल गुण था : वे कठोर होते हुए भी हतोत्साहकर नहीं थे। उनका दूसरा, उल्लेखनीय गुण यह था कि वे हमें आत्मालोचना के लिए बाध्य करते थे और हमारी उपलब्धियों से हमें आत्मतुष्ट नहीं होने देते थे। वे सारहीन चिन्तन पर अपनी व्यंगोक्तियों के निर्मम चाबुक बरसाते थे।

४

मार्क्स की शैली

अगर बूफ़ों* का यह कथन कि "शैली ही व्यक्ति है" किसी के बारे में सही है, तो मार्क्स के बारे में ही। मार्क्स की शैली ही मार्क्स है। हद दर्जे के सच्चे, सत्य की उपासना के अतिरिक्त और कोई उपासना न जाननेवाले परिश्रमपूर्वक उपलब्ध अपने किसी प्रिय सैद्धान्तिक निष्कर्ष की असारता समझ में आते ही उसे फ़ौरन त्याग देनेवाले मार्क्स ने लाज़िमी तौर से अपनी कृतियों में उसी रूप में सामने आये हैं, जैसे वे यथार्थ में थे। पाखण्ड, मक्कारी अथवा छल-छद्म में असमर्थ, वे जीवन की भांति अपनी कृतियों में भी सदा अपने असली रूप में दिखाई देते हैं। स्वभावतः, ऐसी बहुमुखी, सर्वग्राही और सर्व-समावेशी व्यक्तित्व की शैली भी कम जटिल, कम व्यापक व्यक्तित्व की भांति एकरस, सपाट, यहां तक कि नीरस भी नहीं हो सकती थी। 'पूंजी' के मार्क्स, 'अठारहवीं ब्रूमेर' के मार्क्स और 'श्री फ़ोग्ट' के मार्क्स तीन भिन्न-भिन्न मार्क्स हैं, पर अपनी भिन्नता के बावजूद वे एक ही मार्क्स हैं, उनके त्रित्व में एकत्व है, उनके महान् व्यक्तित्व का एकत्व, जो विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न रूपों में अपने को अभिव्यक्त करता है और फिर भी सतत वही बना रहता है।

'पूंजी' की शैली बेशक कठिन है, लेकिन क्या उसका विषय आसान है? शैली केवल व्यक्ति ही नहीं होती, वह सामग्री भी है, उसे अवश्य ही

---

*बूफ़ों, जार्ज लुई (१७०७–१७८८)–प्रख्यात फ़्रांसीसी प्रकृतिविज्ञ। –सं०

सामग्री के अनुकूल होना चाहिए। विज्ञान का कोई सीधा-सरल मार्ग नहीं है, उसकी मंज़िल पर पहुंचने के लिए तो हर किसी को, चाहे उसके साथ श्रेष्ठतम निदेशक भी क्यों न हों, पूरा ज़ोर लगाना पड़ता है। 'पूंजी' के बारे में यह शिकायत करना कि उसकी शैली कठिन, दुर्बोध अथवा बोझिल है, केवल अपनी मानसिक काहिली अथवा चिन्तन की अक्षमता स्वीकारना है।

क्या 'अठारहवीं ब्रूमेर' अबोधगम्य है? क्या वह तीर अबोधगम्य है, जो सीधे निशाने पर जा लगता है और उसमें गहरे धंस जाता है? क्या वह बर्छा अबोधगम्य है, जो सधे हाथों से फेंके जाने पर सीधे दुश्मन के कलेजे में उतर जाता है? 'अठारहवीं ब्रूमेर' के शब्द तीर और बर्छे हैं, वह ऐसी शैली है, जो गहरे घाव का निशान छोड़ती और हनन करती है। अगर घृणा, तिरस्कार और स्वतंत्रता का ज्वलंत प्रेम कभी दहकते, उन्मूलक तथा उदात्त शब्दों में अभिव्यक्त हुआ है, तो 'अठारहवीं ब्रूमेर' में ही, जिस में तासितुस* की आक्रोशभरी कठोरता के साथ जुवेनाल** का घातक व्यंग्य तथा दान्ते का नैसर्गिक कोप मिश्रित है। यहां शैली – style – रोमियों की stilus, यानी वह ताखा फ़ौलादी stiletto – कील–बन जाती है, जो लिखने और गड़ाने के काम में आती थी। शैली एक कटार है, जो दिल पर अचूक वार करती है।

फिर 'श्री फ़ोग्ट' में कितनी प्रखर व्यंजना है, फ़ल्स्ताफ़*** और उसके रूप में विडम्बना का अनन्त स्रोत प्राप्त कर कैसा शेक्सपियरी उल्लास है!

मार्क्स की शैली सचमुच मार्क्स के ही अनुरूप है। इस बात के लिए उनकी भर्त्सना की गई है कि उन्होंने कम से कम शब्दों में अधिकतम संभव अन्तर्य घुसेड़ने की चेष्टा की है। लेकिन यही तो मार्क्स है।

---

*तासितुस (५५–लगभग १२०) – विख्यात रोमन इतिहासकार। – सं०

**जुवेनाल (पहली शताब्दी का मध्य – सन् १२७ के बाद) – प्रसिद्ध रोमन प्रहसन कवि। – सं०

***शेक्सपियर के 'राजा हेनरी चतुर्थ' और 'विण्डसर की प्रोत्फुल्ल नारियां' नाम के नाटकों का एक पात्र। – सं०

मार्क्स अभिव्यक्ति की सटीकता और सुस्पष्टता को बेहद महत्त्व देते थे और भाषा के क्षेत्र में गेटे, लेस्सिंग, शेक्सपियर, दान्ते और सेर्वांते को अपने गुरु मानते थे, जिनकी कृतियों का वे प्राय: नित्य अध्ययन करते थे। भाषा की शुद्धता और अचूकता के मामले में वे अत्यधिक सतर्क थे। मुझे याद है कि मेरे लन्दन-प्रवास के शुरू के दिनों में जब मैंने अपने एक लेख में «stattgehabte Versammlung» लिखा था, तो उन्होंने मुझे कैसे फटकारा था। मैंने रूढ़ प्रचलन का सहारा लेकर अपना पक्षपोषण किया, लेकिन मार्क्स उबल पड़े: "लानत है उन जर्मन स्कूलों पर, जहां जर्मन भाषा भी नहीं पढ़ाई जाती, लानत है जर्मन विश्वविद्यालयों पर", इत्यादि। मैंने क्लासीकी साहित्य से उदाहरण प्रस्तुत करके, जितना भी कर सकता था, उतना अपना पक्षपोषण किया। लेकिन «stattgehabte» अथवा «stattgefundene» Ereignisse का फिर कभी प्रयोग नहीं किया और दूसरों से भी उसका व्यवहार छुड़वाने की कोशिश की।

मार्क्स कठोर शुद्धतावादी थे और समुचित अभिव्यक्ति के लिए अक्सर परिश्रमपूर्वक देर तक सर खपाते रहते थे। वे विदेशी शब्दों का अनावश्यक उपयोग बर्दाश्त नहीं कर पाते थे और अगर विषय की मांग न होने पर भी उनका अक्सर उपयोग करते थे, तो इसका कारण विदेशों में, विशेषत: इंगलैण्ड में, उनका लम्बा प्रवास ही समझा जाना चाहिए... लेकिन अपने जीवन का दो-तिहाई भाग विदेशों में गुजारने के बावजूद मार्क्स में जो मौलिक, विशुद्ध जर्मन शब्द-विन्यास तथा व्यवहार मिलते हैं, वे उन्हें जर्मन भाषा का महान अधिकारी बना देते हैं, जिसके वे एक प्रमुखतम आचार्य तथा निर्माता थे...

५

मार्क्स – राजनीतिज्ञ, वैज्ञानिक तथा मानव

मार्क्स राजनीति को विज्ञान मानते थे। वे क़हवाख़ानों के राजनीतिज्ञों और क़हवाख़ानों की राजनीति से नफ़रत करते थे। वास्तव में ही क्या इससे बड़ी किसी हिमाक़त की कल्पना की जा सकती है?

इतिहास मानव और प्रकृति में क्रियाशील सारी शक्तियों की, मानवीय चिन्तन, मानवीय उद्वेगों और मानवीय आवश्यकताओं की उपज है। लेकिन सिद्धान्त के रूप में राजनीति "समय के चर्खे पर" कतनेवाले करोड़ों-अरबों कारकों का बोध है और व्यवहार के रूप में वह उक्त बोध पर आधारित कार्रवाई है। इसलिए राजनीति विज्ञान है और व्यावहारिक विज्ञान है...

मार्क्स जब ऐसे बुद्धिहीनों की बात करते थे, जो चन्द घिसे-पिटे फ़िक़रों के ज़रिए सभी व्यापारों की व्याख्या करते हैं और अपनी कमोवेश उलझी हुई कामनाओं तथा कल्पनाओं को तथ्य मानकर रेस्तरानों की मेज़ों पर, अख़बारों के कार्यालयों, सार्वजनिक सभाओं अथवा संसदों में संसार की नियति निर्धारित करते हैं, तब वे रोष में आ जाते थे। सौभाग्यवश ऐसे लोगों की ओर कोई भी ध्यान नहीं देता। ऐसे बुद्धिहीनों में कभी-कभी बहुत प्रख्यात और महिमा-मंडित "महापुरुष" भी होते हैं।

इस सिलसिले में मार्क्स केवल आलोचना ही नहीं करते थे, बल्कि स्वयं उच्च उदाहरण भी प्रस्तुत करते थे। विशेषतः फ़्रान्स की नवीनतम घटनाओं और नेपोलियन द्वारा राज्य-पर्युत्क्षेपण से सम्बन्धित अपने लेखों तथा «*New York Daily Tribune*» के संवादों में उन्होंने राजनीतिक इतिहास-लेखन के क्लासीकी नमूने प्रस्तुत किए।

हठात् एक तुलना दिमाग़ में आती है, जिसे प्रस्तुत किए बिना नहीं रहा जाता। बोनापार्त का राज्य-पर्युत्क्षेपण, जिसके सम्बन्ध में मार्क्स ने 'अठारहवीं ब्रूमेर' में लिखा है, वही महानतम फ़्रान्सीसी रूमानी लेखक तथा वाग्विदग्ध विक्तोर ह्यूगो की एक प्रख्यात कृति का भी विषय बना। लेकिन दोनों कृतियों तथा दोनों लेखकों में कितनी विषमता है! एक ओर है अटपटा वागाडम्बर और वागाडम्बरपूर्ण अटपटापन तथा दूसरी ओर—व्यवस्थित ढंग से संकलित तथ्य, उन तथ्यों को धैर्यपूर्वक तौलनेवाला वैज्ञानिक और रोष भरा राजनीतिज्ञ, जिसका रोष उसके विवेक को धुंधला नहीं बनाता।

एक ओर तो तरंगित, जाज्वल्यमान फेनिलता; भावावेगपूर्ण वाग्मिता के विस्फोट; विरूप व्यंग-चित्रण हैं और दूसरी ओर—प्रत्येक शब्द सुसंधानित शर है, प्रत्येक वाक्य तथ्य-गर्भित अभियोग है, नग्न सत्य है, जिसकी नग्नता अभिभूतकारी है; वह आक्रोश नहीं, बल्कि यथार्थ को

उद्घाटित करनेवाला सीधा-सादा वक्तव्य है। विक्तोर ह्यूगो की कृति «*Napolèon le Petit*» (छोटा नेपोलियन) के एक पर एक दस संस्करण हुए, लेकिन आज वह किसी को भी याद नहीं है। मार्क्स की कृति 'अठारहवीं ब्रूमेर' हजारों बरस बाद भी शौक से पढ़ी जाएगी।

जैसा कि मैं अन्यत्र कह चुका हूं, मार्क्स जो कुछ थे, वह केवल ब्रिटेन में ही बन सकते थे। आर्थिक दृष्टि से पिछड़े हुए एक ऐसे देश में, जैसा कि जर्मनी वर्तमान शताब्दी के मध्य तक था, मार्क्स के लिए पूंजीवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र की अपनी आलोचना तथा उत्पादन की पूंजीवादी प्रणाली की जानकारी पर पहुंचना उतना ही असंभव था, जितना कि आर्थिक दृष्टि से पिछड़े जर्मनी में आर्थिक दृष्टि से विकसित ब्रिटेन की राजनीतिक संस्थाओं का अस्तित्व में आना। किसी भी अन्य व्यक्ति की तरह मार्क्स भी अपने परिवेश तथा उन स्थितियों पर आश्रित थे, जिनमें वे रहे और जिनके बिना वे वह कुछ नहीं बन सकते थे, जो थे। इस बात को उनसे बढ़कर किसी ने साबित नहीं किया।

ऐसी मेधा को परिवेश से प्रभावित होते और समाज के मर्म में अधिकाधिक गहरे उतरते हुए देखना खुद अपने आप में अत्यधिक मानसिक आनन्द का विषय था। मैं अपने उस सौभाग्य की जितनी भी सराहना करूं उतनी ही कम है कि मुझ अनुभवहीन, ज्ञानपिपासु युवक को मार्क्स जैसा पथप्रदर्शक प्राप्त हुआ और मैं उनके प्रभाव तथा उनकी शिक्षा का लाभ उठा सका।

उस बहुमुखी, मैं तो कहूंगा कि सर्वतोमुखी मेधा की, उस मेधा की, जो सर्वग्राही थी, जो प्रत्येक तात्त्विक ब्योरे की तह तक पहुंचती थी, जो किसी भी चीज का तिरस्कार नहीं करती थी और किसी भी चीज को निस्सार अथवा अनुल्लेखनीय नहीं समझती थी, उस मेधा की शिक्षा का भी बहुमुखी होना लाजिमी था।

मार्क्स उन लोगों में से थे, जिन्होंने सबसे पहले डार्विन की खोजों का महत्त्व समझा था। १८५९ से भी पहले, जो 'प्रजातियों के उद्भव' के, तथा एक अजीब संयोग के फलस्वरूप मार्क्स लिखित 'राजनीतिक अर्थशास्त्र की समीक्षा का एक प्रयास' के भी, प्रकाशन का वर्ष था, मार्क्स ने डार्विन के युगान्तरकारी महत्त्व को समझ लिया था। कारण कि डार्विन

शहर के कोलाहल से दूर, अपने शान्त जागीरी देहात में, उसी प्रकार की क्रान्ति की तैयारी कर रहे थे, जैसी क्रान्ति के लिए खुद मार्क्स संसार के कोलाहलपूर्ण केन्द्र में काम कर रहे थे। अन्तर केवल यह था कि वहां उत्तोलक दूसरे बिन्दु पर लगा हुआ था।

मार्क्स हर नए प्रकाशन पर नजर रखते थे और हर प्रगति की ओर ध्यान देते थे और प्राकृतिक विज्ञानों, जिनमें भौतिकी तथा रसायन भी शामिल हैं, तथा इतिहास के बारे में यह विशेषतः सही है। हमारे बीच मोलेशात, लीबीख़ और हक्सले* के नाम, जिनके सुबोध व्याख्यान हम आस्थापूर्वक सुनते थे, उतने ही अक्सर सुनाई देते थे, जितने रिकार्डो, ऐडम स्मिथ, मैक-कुल्लोह** और स्कॉटलैण्डी तथा इतालवी अर्थशास्त्रियों के। जब डार्विन ने अपनी खोजों के निष्कर्ष निकाले और उन्हें समाज के सामने प्रस्तुत किया, तब हमने डार्विन तथा उनकी वैज्ञानिक खोजों के प्रकाण्ड महत्त्व के अतिरिक्त महीनों तक और किसी सम्बन्ध में बात ही नहीं की...

दूसरों की योग्यता को स्वीकार करने में मार्क्स अत्यधिक उदार तथा न्यायप्रिय थे। वे इतने महान थे कि ईर्ष्या, द्वेष तथा अहंकार उनके पास नहीं फटक सकते थे। लेकिन छद्म महानता तथा मिथ्या यशस्विता की तड़क-भड़क दिखानेवाली अयोग्यता और छिछोरेपन से उन्हें उतनी ही अधिक घृणा थी, जितनी छल-कपट और ढोंग से।

मेरे महान, लघु, अथवा औसत परिचितों में से मार्क्स उन इने-गिने लोगों में एक थे, जिन्हें अहंकार छू तक नहीं गया था। वे इतने महान,

---

***मोलेशात**, **जैकोब** (१८२२–१८९३)–हालैण्ड का शरीरक्रियाविज्ञ, बाजारू भौतिकवाद का प्रतिनिधि। **लीबीख़**, **यूस्तस** (१८०३–१८७३)–प्रख्यात जर्मन वैज्ञानिक, कृषिरसायन के संस्थापकों में से एक। **हक्सले**, **टामस हेनरी** (१८२५–१८९५)–ब्रिटिश प्रकृतिविज्ञ, डार्विन के घनिष्ठ सहकर्मी तथा उनकी शिक्षा के प्रचारक।–सं०

****रिकार्डो**, **डेविड** (१७७२–१८२३), **स्मिथ**, **ऐडम** (१७२३–१७९०)–ब्रिटिश अर्थशास्त्री, क्लासीकी पूंजीवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र के प्रमुख प्रतिनिधि। **मैक-कुल्लोह**, **जान** (१७८९–१८६४)–ब्रिटिश पूंजीवादी अर्थशास्त्री, बाजारू राजनीतिक अर्थशास्त्र के प्रतिनिधि।–सं०

इतने सशक्त थे और उनमें इतना अधिक बड़प्पन था कि अहंकारी हो ही नहीं सकते थे। उन्होंने कभी कोई मुद्रा नहीं बनाई, सदा जो थे वही रहे। वे मुद्रा बनाने अथवा छद्म रूप धारण करने में शिशुवत असमर्थ थे। जब तक सामाजिक अथवा राजनीतिक कारण अवांछनीय नहीं बना देते थे, तब तक वे अपने दिल की बात पूरी तरह और बिना किसी संकोच के कह डालते थे और उनका चेहरा उनके दिल की आईनादारी करता था। लेकिन जब परिस्थितियां संयम की मांग करती थीं, तब वे एक तरह की बच्चों जैसी झेंप प्रदर्शित करते थे, जिसका उनके मित्र अक्सर मजा लेते थे।

मार्क्स तो बहुत ही सच्चे आदमी थे, साकार सचाई थे। उन्हें तो देखते ही यह भांपा जा सकता था कि आप किस के साथ बरत रहे हैं। निरन्तर युद्ध की स्थिति में रहनेवाले हमारे "सभ्य" समाज में कोई हमेशा सच नहीं बोल सकता। वैसा करना दुश्मन के हाथ में खेलना अथवा समाज-बहिष्कार का ख़तरा मोल लेना होगा। लेकिन जहां सच बोलना अक्सर अनुपयुक्त हो सकता है, वहां झूठ बोलना भी सर्वथा आवश्यक नहीं है। मैं जो कुछ सोचता या महसूस करता हूं, वह हमेशा नहीं कह सकता, लेकिन मेरे लिए वह कुछ कहना भी तो लाज़िमी नहीं है, जो मैं सोचता या महसूस नहीं करता हूं। पहली चीज बुद्धिमानी है, दूसरी–मक्कारी। मार्क्स कभी मक्कार नहीं थे। वे एक भोले-भाले बच्चे की तरह ही मक्कारी करने में असमर्थ थे। उनकी पत्नी उन्हें अक्सर "मेरा बड़ा बच्चा" कहा करती थीं और मार्क्स को उनसे बेहतर कोई भी नहीं जानता या समझता था, यहां तक कि एंगेल्स भी नहीं। सच तो यह है कि जब वे तथाकथित "शिष्ट समाज" में होते थे, जहां बाह्याचरण के आधार पर हर चीज की बाबत राय क़ायम की जाती है और जहां अपनी भावनाओं को कुचलना पड़ता है, हमारे "मूर" बड़े बच्चे जैसा ही व्यवहार करते थे, अभिभूत होकर अथवा झेंप के मारे लाल हो जाते थे।

अभिनेताओं की तरह बंधी-बंधाई भूमिका अदा करनेवालों से उन्हें नफ़रत थी। मुझे अभी तक याद है कि लुई ब्लां* के साथ अपनी पहली

---

*ब्लां, लुई (१८११–१८८२)–फ़्रांसीसी निम्नपूंजीवादी समाजवादी, १८४८ की क्रान्ति के दौरान अस्थाई सरकार के सदस्य।–सं०

मुलाक़ात का वर्णन करते हुए वे कितना हंसे थे। तब वे डीन स्ट्रीट पर एक छोटे से फ़्लैट में ही रह रहे थे, जिसमें दर-असल केवल दो कमरे थे। आगेवाला कमरा बैठकखाना और अध्ययनकक्ष था और पीछेवाला बाक़ी सभी के लिए था। लुई ब्लां ने अपना मुलाक़ाती कार्ड हेलेन को दिया। उसने उनको आगेवाले कमरे में बैठा दिया और उसी समय मार्क्स पीछे के कमरे में जल्दी-जल्दी कपड़े बदल रहे थे। दोनों कमरों के बीच का दरवाज़ा कुछ खुला छूट गया था, जिससे मार्क्स को एक मजेदार दृश्य देखने को मिला। "महान" इतिहासवेत्ता और राजनीतिज्ञ बहुत ही नाटे थे, किसी आठ साल के बच्चे जितने ही। लेकिन वे बहुत ही आडम्बरी व्यक्ति थे। उन्होंने उस सर्वहारा बैठकखाने पर चारों तरफ़ नज़र दौड़ाई, जिसके एक कोने में उन्हें एक बहुत मामूली-सा आईना दिखाई पड़ा। वे फ़ौरन उसके सामने मुद्रा बनाकर खड़े हो गए, अपने बौने क़द को यथासंभव खींच-तानकर—उनकी जैसी ऊंची एड़ियां मैंने किसी की नहीं देखीं—आह्लादित होकर अपना रूप निरखा और बसन्ती ख़रगोश की तरह अपने को संवारते-निखारते हुए प्रभावशाली दीखने की चेष्टा की। श्रीमती मार्क्स भी उस हास्योत्पादक दृश्य को देख रही थीं। उन्हें होंठ दबाकर अपनी हंसी रोकनी पड़ी। मार्क्स जब कपड़े पहन चुके, तो अपनी आमद की सूचना देने के लिए वे जोर से खांसे और उन आडम्बरप्रिय जन-प्रवक्ता ने आईने के सामने से हटकर उनको नमस्कार किया। निश्चय ही अभिनय करने और आडम्बर की मुद्रा बनाने से मार्क्स के सामने दाल नहीं गलती थी और "बौने लुई" ने, जैसा कि उन्हें पेरिस के मजदूर लुई बोनापार्त से भिन्नता प्रदर्शित करने के लिए पुकारते थे, झटपट यथासंभव स्वाभाविक रुख़ अपना लिया...

६

कार्यरत मार्क्स

किसी ने कहा है कि "प्रतिभा अध्यवसाय है" और यह बात अगर पूर्णतः नहीं, तो भी बहुत हद तक सही है।

अत्यधिक ओज तथा असाधारण कार्यक्षमता के बिना प्रतिभा हो ही

नहीं सकती। प्रतिभा अगर उक्त दोनों गुणों में से किसी से भी रहित है, तो वह केवल साबुन का सुन्दर बुलबुला है अथवा कहीं चन्द्रलोक में स्थित भावी निधि द्वारा समर्थित हुंडी है। जहां ओज और कार्यक्षमता औसत से अधिक होती है, प्रतिभा वहीं होती है। मैं अक्सर ऐसे लोगों से मिला हूं जो अपने आपको प्रतिभाशाली समझते थे और जिन्हें कभी कभी दूसरे भी प्रतिभाशाली मान लेते थे, लेकिन जिनमें कार्यक्षमता का अभाव था। वस्तुत: वे महज़ लच्छेदार बातें करने और अपना ढिंढोरा पीटने की कला में पटु निकम्मे लोग थे। मेरी जान-पहचान के वास्तविक महत्त्व रखनेवाले सभी लोग कठोर अध्यवसायी रहे हैं। मार्क्स के बारे में तो यह बात सोलह आने सही है। वे बहुत ही मेहनती थे। चूंकि दिन को काम करने में, विशेषत: उनके उत्प्रवासी जीवन के पहले दौर में, अक्सर बाधा पड़ती थी, इसलिए उन्होंने रात में काम करना शुरू कर दिया। किसी बैठक या सभा से बहुत देर में घर लौटने पर चन्द घंटों तक काम करना उनके लिए मामूल था और वे चन्द घंटे अधिकाधिक लम्बे होते गए, यहां तक कि अन्त में वे सारी रात काम करने लगे और सुबह होने पर सोने जाते। उनकी पत्नी ने इस सम्बन्ध में उन्हें कितनी ही बार सख़्ती से झिड़का, लेकिन उन्होंने हंसकर जवाब दिया कि यह तो मेरे स्वभाव के अनुरूप है...

बेहद मज़बूत काठी के बावजूद, पचासा ख़त्म होते न होते मार्क्स को विभिन्न प्रकार की शारीरिक व्याधियों की शिकायत शुरू हो गई और उन्हें डाक्टर के पास जाना पड़ा। फल यह हुआ कि उन्हें रात को काम करने की क़तई मनाही कर दी गई और अधिक व्यायाम करने—टहलने और घुड़सवारी करने—का निर्देश किया गया। उस समय हम मार्क्स के साथ लन्दन के उपान्त में, मुख्यत: पहाड़ी उत्तर में, बहुत टहले। मार्क्स शीघ्र ही निरोग हो गए। वास्तव में उनकी काया तो मानो घोर श्रम के लिए ही बनी थी।

लेकिन उन्होंने अपने को निरोगी महसूस करना शुरू ही किया था कि धीरे-धीरे फिर से रात को काम करने की आदत बना ली। फिर से संकट आने पर ही वे अधिक उचित जीवन-चर्या अपनाने के लिए बाध्य हुए, हालांकि सिर्फ़ तभी तक के लिए, जब तक उन्होंने उसे सर्वथा अनिवार्य

समझा। रोग के दौरे अधिकाधिक जोरदार होते गए। जिगर की बीमारी शुरू हो गई और घातक रसौलियां पैदा हो गई। धीरे-धीरे उनकी लौह काया जर्जर हो गई। मैं इस बात का क़ायल हूं—और जिन डाक्टरों ने उनके जीवन के अन्तिम दिनों में उनकी चिकित्सा की थी उनकी भी यही राय थी—कि अगर मार्क्स स्वाभाविक जीवन बिताने का निश्चय कर लेते, यानी ऐसा जीवन बिताते जो उनकी कायिक मांग के, अथवा कहें कि स्वास्थ्य के नियमों की मांग के, अनुकूल होता, तो वे आज भी जीते होते। जीवन के आख़िरी बरसों में ही जाकर, जब कि बहुत देर हो चुकी थी, उन्होंने रात को काम करना बन्द किया। हां, उसकी जगह वे दिन को अधिक काम करने लगे।

जब कभी ज़रा भी संभव होता, वे तभी काम करने लगते। वे टहलने के समय भी अपनी नोटबुक साथ रखते और उसमें अपनी टिप्पणियां लिखते रहते थे। उनका काम कभी सतही नहीं होता था। वैसे तो काम तरह-तरह से किया जा सकता है, लेकिन वे हमेशा गहराई में जाते थे, पूरी छानबीन करते थे। उनकी बेटी एल्योनोरा ने मुझे एक इतिहास-सारिका दी, जिसे उन्होंने अपने लिए बनाया था, ताकि उसे किसी गौण उल्लेख के लिए इस्तेमाल कर सकें। लेकिन सच तो यह है कि मार्क्स के लिए कुछ भी गौण नहीं था और जो सारिका उन्होंने अपने वक़्ती इस्तेमाल के लिए तैयार की थी, उसके लिए सामग्री इतने अध्यवसाय तथा ध्यानपूर्वक संग्रह की गई थी, मानों उसे छपवाना हो।

काम करने में मार्क्स का धैर्य देखकर तो मैं अक्सर आश्चर्यचकित रह जाता था। वे थकान का नाम ही नहीं जानते थे। थककर चूर हो जाने पर भी वे कमज़ोरी के कोई लक्षण नहीं प्रदर्शित करते थे।

अगर आदमी का मूल्य उसके काम के अनुसार आंका जाए, जिस प्रकार चीज़ों का मूल्य उनमें लगे श्रम के अनुसार आंका जाता है, तो उस दृष्टि से भी मार्क्स का मूल्य इतना अधिक है कि महज गिने-चुने प्रकाण्ड मस्तिष्क ही उनकी तुलना में रखे जा सकते हैं।

लेकिन पूंजीवादी समाज ने इतने अधिक काम के बदले में मार्क्स को क्या दिया?

मार्क्स परिवार की वफ़ादार
मित्र हेलेन देमुन

पाल लफ़ार्ग

फ्रेडरिक लेमनर

गेर्मन अलेक्सान्द्रोविच लोपातिन

मार्क्स ने 'पूंजी' पर ४० साल काम किया और वह भी ऐसा काम जिसे केवल मार्क्स ही कर सकते थे। मेरा यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि मार्क्स को हमारे युग की दो में से एक (दूसरी डार्विन की थी) महानतम वैज्ञानिक क्रांति के लिए जितना पारिश्रमिक मिला, जर्मनी में कम से कम उजरत पानेवाले रोज़ीनादार को भी ४० साल में उससे अधिक मजूरी मिली होगी।

विज्ञान का विक्रेय मूल्य नहीं है और पूंजीवादी समाज से यह आशा भी नहीं की जा सकती कि वह अपनी ही मौत की सजा क़लमबन्द करने का समुचित दाम अदा करे...

७

डीन स्ट्रीट वाले मकान में

१८५० की गर्मियों से लेकर १८६२ के शुरू तक, जब मैं जर्मनी वापस आ गया था, मैं मार्क्स के घर प्रायः रोज जाता था और बरसों वहां पूरे के पूरे दिन गुजारता रहा। मैं तो परिवार का मानो एक अंग बन गया था...

मेटलैण्ड पार्क रोड की बंगलिया में उठ आने से पहले मार्क्स सोहो स्क्वेयर की सुनसान डीन स्ट्रीट पर एक सादे-से मकान में रहते थे। जहां मुसाफ़िरों, आते-जाते लोगों और उत्प्रवासियों का जमघट रहता था और साधारण, महत्त्वपूर्ण तथा अत्यधिक महत्त्वपूर्ण लोग भी आ टपकते थे। इसके अलावा वह मकान ऐसे साथियों के मिलने-जुलने का स्थायी केन्द्र बन गया था, जो लन्दन में रहते तो थे, लेकिन जिनके आवास में सदा कोई न कोई अड़चन लगी रहती थी। बात यह थी कि लन्दन में स्थिर रूप से बस पाना बहुत कठिन था। भूख अधिकतर उत्प्रवासियों को प्रान्तों में, अथवा अमरीका भगा देती थी और कुछ बेचारों का तो काम ही तमाम करके लन्दन के किसी क़ब्रिस्तान भेज देती थी, जहां उन्हें आवास के लिए न सही, चिर विश्राम के लिए स्थान मिल जाता था। लेकिन मैं जैसे-तैसे

आजमाइश को झेल गया और वफ़ादार लेसनर और लौखनर* को छोड़कर, जो बहरहाल डीन स्ट्रीट पर यदा-कदा ही आते थे, हमारे लन्दनी "समुदाय" में से केवल मैं ही एक ऐसा था, जो एक छोटे से वक़्फ़े के अलावा, जिसकी मैं और कहीं चर्चा करूंगा, उत्प्रवास की पूरी मुद्दत भर "मूर" के घर, परिवार के एक अंग की तरह, आता-जाता रहा। इसलिए मैं बहुतेरी ऐसी बातें भी देख और जान सका, जो दूसरों की नज़र से चूक गईं।

८

उत्प्रवासियों के कुचक्र

मेरे लन्दन जाने से पहले के मेरे दोस्त और साथी मार्क्स के प्रति मेरी अनुरक्ति के कारण अक्सर मेरा मज़ाक़ बनाते थे। हाल ही में उस ज़माने का एक पत्र मेरे हाथ लग गया। यह पत्र बावेर ने मुझे लिखा था, जो अधिकतम कार्यकुशल बादेनी स्वयंसेवकों** में से थे और जिनकी चन्द साल पहले मिल्वाकी (संयुक्त राज्य अमरीका) में मृत्यु हो गई है। वे वहां पर अपने ही द्वारा संस्थापित एक उग्रवादी-जनवादी अख़बार का संपादन कर रहे थे। अन्य पर्याप्त साधन-सम्पन्न उत्प्रवासियों की तरह वे भी लन्दन में थोड़े अर्से तक रहकर अमरीका चले गए थे, जहां शीघ्र ही अपनी योग्यता के अनुकूल अख़बारी काम में लग गए थे।

लन्दन में रहनेवाले उत्प्रवासियों के लिए वह सबसे कठिन दौर था और बावेर मुझे अपने पास खींच लेना चाहते थे। वे संपादक के रूप में उचित वेतनवाले काम का आश्वासन देते हुए मुझे आने के लिए कई बार

---

*लेसनर, फ़्रेडरिक (१८२५–१९१०) – अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर आन्दोलन के सक्रिय कार्यकर्त्ता, पेशे से दर्ज़ी, मार्क्स तथा एंगेल्स के मित्र तथा सहकर्मी। लौख़नर, गेओर्ग (जन्म १८२४ के लगभग – मृत्यु की तिथि अज्ञात) – जर्मन मज़दूर आन्दोलन के नेता, कम्युनिस्ट लीग तथा पहले इन्टरनेशनल के सदस्य; पेशे से बढ़ई; मार्क्स तथा एंगेल्स के मित्र तथा समर्थक। – सं०

** १८४९ के बादेन-फ़्फ़ाल्त्स विद्रोह में भाग लेनेवाले कार्ल फ़्रेडरिक बावेर से अभिप्राय। – सं०

पत्र लिख चुके थे। उन दिनों मेरे पास एक जून की रोटी तक भी नहीं थी और ५० डालर साप्ताहिक का आश्वासन मेरे लिए बहुत ही आकर्षक चारा था। लेकिन मैंने उस लोभ का संवरण किया। मैं समर-क्षेत्र से आवश्यकता से अधिक दूर नहीं हटना चाहता था, क्योंकि मैं जानता था कि हज़ार में से ६६६ प्रतिशत सम्भावना इसी बात की है कि जो भी महासागर के पार गया, वह यूरोप के लिए खो गया।

अन्त में बावेर ने आख़िरी हथियार का सहारा लेते हुए मेरे अहंभाव को उकसाने की कोशिश की। एक पत्र में, जो मेरे काग़ज़ों में अब भी मौजूद है, उन्होंने लिखा :

"...यहां तुम आज़ाद आदमी होओगे और स्वतंत्र रूप से अपनी क्षमता प्रदर्शित कर सकोगे। लेकिन वहां तुम क्या हो? इधर-उधर फेंका जानेवाला महज़ एक गेंद, एक गधा, जिसका इस्तेमाल भार ढोने के लिए किया जाता है और जिसका पीठ पीछे मज़ाक़ उड़ाया जाता है। तुम्हारे स्वर्ग-राज्य में क्या स्थिति है? उच्चतम सिंहासन पर सर्वज्ञाता, सर्वबुद्धिमान, दलाई लामा – मार्क्स आसीन हैं। उसके बाद बहुत-सी जगह ख़ाली है और तब आते हैं एंगेल्स। उसके बाद फिर से बहुत बड़ी जगह ख़ाली है। तब वोल्फ़ आते हैं और उसके बाद फिर बहुत-सी जगह ख़ाली रह जाती है। तब शायद आता है 'भावुक गर्दभ' लीब्कनेख़्त..."

मैंने उत्तर में लिखा कि इसमें मुझे कोई आपत्ति नहीं है कि जो लोग मुझसे अधिक सम्मान के अधिकारी हैं, उनके बाद ही मेरा स्थान हो, कि ऐसे आदमियों की सोहबत की अपेक्षा, जिन्हें मुझे नीची निगाह से देखना पड़े, जैसे कि बावेर के सभी "महापुरुष", मैं ऐसों की सोहबत में रहना अधिक बेहतर समझता हूं, जिनसे कुछ सीख सकूं और जिन्हें ऊंची निगाह से देखना पड़े।

फलतः मैं जहां का तहां बना रहा और सीखता-पढ़ता रहा। लेकिन हमारे हल्क़े से बाहर के उत्प्रवासी मार्क्स और हमारे "समुदाय" के बारे में उक्त राय ही रखते थे। हम अपने को उन लोगों से इतना दूर रखते थे कि वे कल्पना के घोड़े दौड़ाने को विवश हो जाते थे, और उन्होंने मनगढ़न्तों का एक अम्बार लगा लिया था। लेकिन हमने इसकी कोई परवाह नहीं की।

९

मार्क्स के घर मुलाक़ातें

मेरे विकास पर मार्क्स की पत्नी का प्रायः उतना ही प्रभाव पड़ा, जितना स्वयं मार्क्स का। मैं अभी तीन साल का ही था कि मेरी मां मर गई थीं और खासी कठिन परिस्थितियों में मेरा पालन-पोषण हुआ था... मार्क्स की पत्नी में मुझे एक ऐसी सुघड़, उदार और समझदार महिला मिलीं, जो हालात द्वारा टेमस तट पर ला पटके गये मुझ उपेक्षित और मित्रहीन स्वयंसेवक के लिए मां और बहन बन गयीं। मुझे मानना पड़ेगा कि मार्क्स परिवार के साथ मेरे परिचय ने मुझे उत्प्रवास की विपत्ति में विनष्ट होने से बचा लिया...

मार्क्स के घर पर और उनकी सोहबत में जिन लोगों के साथ उस दौर में मेरी मुलाक़ातें हुईं, उन सब की सरसरी रूपरेखा प्रस्तुत करने के लिए भी यहां न तो पर्याप्त समय है और न स्थान। उन जर्मन तथा अन्य उत्प्रवासियों के अतिरिक्त, जो किसी उसूली विरोध के कारण हमसे अलग नहीं थे, मैं ब्रिटिश मजदूर आन्दोलन के नेताओं से भी मिला – चार्टिज्म* के दो अन्तिम महान प्रतिनिधि – स्पार्तकसी जार्ज जूलियन हार्नी और व्याख्यान-पटु जन-प्रवक्ता तथा ओजस्वी पत्रकार एर्नेस्ट जोन्स; फ़ास्ट, जो "शारीरिक शक्ति के पक्षधरों"** के एक श्रेष्ठ प्रतिनिधि थे और जिन्हें चार्टिस्ट विद्रोह के नेता होने के कारण आजीवन निर्वासन-दंड दिया गया था और बाद में क्षमित होकर छठी दशाब्दी में ब्रिटेन लौटे थे, तथा समाजवाद के वयोवृद्ध पितामह, वैज्ञानिक समाजवाद के पूर्व-पुरुषों में सर्वाधिक परिग्राही, गूढ़दर्शी तथा व्यवहार-प्रिय रॉबर्ट ओवेन इनमें शामिल थे। हमने उनकी ८०वीं

---

*ब्रिटेन में मजदूर वर्ग का पहला आम क्रान्तिकारी आन्दोलन (१९वीं शताब्दी की चौथी–पांचवीं दशाब्दी)। – सं०

** चार्टिज्म में वामपंथी क्रान्तिकारी प्रवृत्ति, जो आन्दोलन को शान्तिमय हलचल की सीमाओं में बांध रखने के आकांक्षी "नैतिक शक्ति के पक्षधरों" के विपरीत शारीरिक बल-प्रयोग के पक्ष में थी। – सं०

सालगिरह के समारोह में भाग लिया और मुझे अक्सर उनके घर जाने का भी सौभाग्य प्राप्त हुआ था...

मेरे जल्दी ही बाद एक फ़्रान्सीसी मजदूर लन्दन आए। उन्होंने न केवल फ़्रान्सीसी, बल्कि हम सभी उत्प्रवासियों और हमारी "छायाओं", यानी अन्तर्राष्ट्रीय पुलिस, में भी ख़ासी दिलचस्पी पैदा कर दी। उनका नाम बार्थेलेमी था। पेरिस की जेल से चालाकी और साहस के साथ उनके फ़रार हो जाने की बात हमने अख़बारों में पढ़ी थी। औसत से कुछ ऊंचा क़द, पुष्ट और गठीला बदन, आबनूसी घुंघराले बाल और तेजोद्दीप्त काली आंखें – वे विशिष्ट दक्षिणी फ़्रांसीसी और दृढ़-निश्चयता के अवतार थे।

उनका गर्वोन्नित व्यक्तित्व दन्त-कथाओं के उजले ताने-बाने से कुंडलित था। उन्हें काले पानी की सजा दी गई थी और उनके कंधे पर अमिट दाग़ अंकित था। वे अभी केवल सत्तरह साल के ही थे कि उन्होंने १८३६ में ब्लांकी – बार्बे विद्रोह* के दौरान एक पुलिसवाले की हत्या कर दी थी और एक दण्ड-बस्ती में भेज दिए गए थे। १८४८ की फ़रवरी क्रान्ति के दौरान आम रिहाई में मुक्त होकर पेरिस लौटे थे और सर्वहारा वर्ग के सभी आन्दोलनों तथा प्रदर्शनों में भाग ले चुके थे। वे जून की लड़ाई** में लड़े और अन्तिम मोर्चेबन्दी में से एक पर लड़ते हुए पकड़ लिए गए। सौभाग्यवश पहले कई दिनों में उन्हें कोई पहचान नहीं पाया, वरना अनेक अन्यों की भांति उन्हें भी "सरसरी अदालती कारंवाई" के बाद गोली मार दी गई होती। जब उन्हें फ़ौजी अदालत के सामने पेश किया गया, तो ख़ून-ख़राबे की पहली लहर गुजर चुकी थी और उन्हें महज "ठंडी फांसी" की, यानी कायेन्ने में आजीवन जलावतनी की, सजा दी गई। किसी कारणवश उनका मामला देर तक खिंच गया और जून १८५० में वे अभी जेल में ही थे और उस स्थान पर जलावतन किये जाने से ठीक पहले, जहां मिर्च उगती है और इनसान मरते हैं, वे फ़रार हो जाने में कामयाब हो गए।

---

*पेरिस में मई १८३६ में गुप्त क्रांतिकारी 'वर्षावधि समाज' द्वारा किया गया विद्रोह। – सं०

**जून १८४८ में पेरिस का सर्वहारा विद्रोह। – सं०

स्वभावतः वे लन्दन पहुंच गए, जहां हमारे निकट सम्पर्क में आए और मार्क्स के यहां अक्सर आते थे...

मैं अक्सर उनसे दो-दो हाथ करता था, बिलकुल शाब्दिक अर्थ में। बात यह है कि फ़ान्सीसी उत्प्रवासियों ने ऑक्सफ़ोर्ड स्ट्रीट पर राथबोन प्लेस में एक "तलवार-मंडप" बना रखा था, जहां तेग़ों-तलवारों की पटेबाज़ी और पिस्तौली निशानेबाज़ी का अभ्यास किया जा सकता था। समय-समय पर मार्क्स भी वहां जाते थे और फ़ान्सीसियों के साथ डटकर लोहा लेते थे। वे अपनी कौशलहीनता की कमी को उग्रता द्वारा पूरा करने की चेष्टा करते और कभी कभी धैर्यहीनों पर हावी हो जाते। जैसा कि सर्वविदित है, फ़ान्सीसी लोग तलवार का उपयोग प्रहार और चकमा देने के लिए भी करते हैं और यह चीज़ शुरू में जर्मनों को हकबका देती है, लेकिन शीघ्र ही आदमी इसका आदी हो जाता है। बार्थेलेमी अच्छे पटेबाज़ थे और वे अक्सर पिस्तौल से चांदमारी का भी अभ्यास करते थे, जिससे वे बहुत जल्दी अच्छे निशानेबाज़ बन गए। लेकिन वे शीघ्र ही विलिख़* के गुट में जा मिले और मार्क्स के सरगर्म दुश्मन बन गए।

विलिख़ के गुट के साथ मतभेद कटुतर हो गए और एक शाम को विलिख़ ने मार्क्स को द्वन्द्व-युद्ध की चुनौती दे दी। मार्क्स ने इस नेक प्रस्ताव को यथोचित रूप में ग्रहण किया, जिससे छोटी प्रशियाई अफ़सरी की बू आ रही थी, लेकिन तुनक-मिज़ाज नौजवान कोनराद श्राम्म** ने अपनी ओर से विलिख़ का अपमान कर दिया। इसलिए विलिख़ ने उसे अपनी विद्यार्थी-संहिता के अनुसार द्वन्द्व-युद्ध के लिए ललकारा। द्वन्द्व-युद्ध बेल्जियम के समुद्र तट पर होना तय पाया और उसके लिए हथियार चुनी गई पिस्तौल। श्राम्म ने पहले कभी पिस्तौल को छुआ तक नहीं था और उधर विलिख़ का बीस क़दम की दूरी से पान के एक्के का निशाना कभी नहीं

---

*कम्युनिस्ट लीग में १८५० में फूट पड़ गई थी। विलिख़ उस "वामपंथी" जोखिमबाज़ दल के अगुआ थे, जिसे लीग से निकाल दिया गया था।–सं०

**श्राम्म, कोनराद (१८२२–१८५८)–जर्मन क्रान्तिकारी, कम्युनिस्ट लीग के सदस्य, मार्क्स और एंगेल्स के मित्र।–सं०

चूकता था। बार्थेलेमी उनके परिचर बने। हमें अपने दिलेर सूरमा श्राम्म की बड़ी चिन्ता थी।

द्वन्द्व-युद्ध के लिए निर्धारित दिन गुज़र गया और हम एक-एक मिनट गिनते रहे। दूसरी शाम को, जब मार्क्स घर पर नहीं थे और केवल उनकी पत्नी और हेलेन घर पर थीं, दरवाज़ा खुला और बार्थेलेमी दाख़िल हुए। उन्होंने तनिक सिर झुकाकर अभिवादन किया और समाचार के लिए व्यग्र प्रश्नों के उत्तर में उदास स्वर में उत्तर दिया: «Schramm a une balle dans la tête» – श्राम्म के सिर में गोली लगी है! इसके बाद उन्होंने फिर तनिक झुककर अभिवादन किया, घूमे और बाहर चले गये। श्रीमती मार्क्स की भयाकुलता का आसानी से अनुमान लगाया जा सकता है... वे तो बेहोश सी हो गईं। एक घंटे बाद उन्होंने उक्त बुरा समाचार हमें सुनाया। हम स्वभावत: श्राम्म के जीवन के प्रति निराश हो गए। दूसरे दिन ठीक उस समय, जब हम उनके बारे में दु:खपूर्वक बातें कर रहे थे, दरवाज़ा खुला और वही व्यक्ति, जिसे हम मरा समझ रहे थे, अन्दर आया। उसके सिर पर पट्टी बंधी थी, लेकिन वह ख़ुशी से हंस रहा था। उसने हमें बताया कि गोली सिर को छीलती हुई ऊपर ही ऊपर गुज़र गई थी और मैं बेहोश हो गया था। होश आने पर मैंने अपने को परिचर और डाक्टर के साथ समुद्र-तट पर पाया। विलिख़ और बार्थेलेमी ओस्टेन्ड से मिलनेवाले पहले जहाज़ से लौट गये थे। श्राम्म दूसरे जहाज़ से लौटा था...

१०

मार्क्स और बच्चे

हर पुष्ट और स्वस्थ व्यक्ति की तरह, मार्क्स भी बच्चों को बेहद प्यार करते थे। वे अपने बच्चों के साथ घंटों बच्चा बने रह सकनेवाले अति-अनुरक्त पिता ही नहीं, बल्कि दूसरे बच्चों की ओर, विशेषत: राह चलते मिलनेवाले असहाय और दुर्भाग्य-ग्रस्त बच्चों की ओर भी चुम्बक की तरह खिंचते थे। जब हम ग़रीब बस्तियों को देखने जाते, तो सैंकड़ों बार ऐसा होता कि वे हमें छोड़कर किसी दहलीज़ की चौखट पर चिथड़े पहने बैठे

किसी बच्चे के पास जाकर उसके सिर पर हाथ फेरने लगते और उसके हाथ में एकाध पेनी का सिक्का थमा देते। वे भिखारियों का विश्वास नहीं करते थे, क्योंकि लन्दन में भीख मांगना एक बाक़ायदा रोज़गार बन गया था और वह भी लाभकर रोज़गार, जो बेशक तांबे के टुकड़े बटोर कर ही चलता था। फलतः वे भिखमंगे-भिखमंगिनें, जिन्हें शुरू के दिनों में जेब में कुछ होने पर मार्क्स कभी भीख देने से इनकार नहीं करते थे, उन्हें बहुत दिनों तक धोखा नहीं दे सके। अगर उनमें से कोई बीमारी अथवा जरूरतमन्दी का ढोंग रचकर मक्कारी से उन्हें करुणा-विगलित करने की चेष्टा करता, तो उन्हें गुस्सा आता था, क्योंकि वे मानवीय दया से अनुचित लाभ उठाने की प्रवृत्ति को ख़ास तौर पर बड़ी नीचता और ग़रीबों को लूटने के समान समझते थे। लेकिन अगर रोता हुआ बच्चा लिए कोई भिखारी या भिखारिन उनके पास आती, जिसके चेहरे पर बेशक बिल्कुल साफ़ मक्कारी झलकती होती, तो मार्क्स बच्चे की अनुनय भरी आंखों के सामने बेबस हो जाते थे।

शारीरिक दुर्बलता और असहायता से मार्क्स सदा दया-द्रवित हो जाते तथा उनमें सहानुभूति का उद्रेक होता था... अपनी पत्नी को पीटनेवाले पुरुष को – और उस समय लन्दन में यह आम प्रचलन था – कोड़े लगवाकर अधमरा कर देने से मार्क्स को बहुत ख़ुशी होती। ऐसी हालतों में उनकी उद्वेलनशील प्रकृति उन्हें और हमें अक्सर कठिनाई में डाल देती थी।

एक शाम को हम मार्क्स के साथ बस में बैठकर हैम्पस्टेड रोड जा रहे थे। रास्ते में एक मदिरालय के पासवाले स्टॉप पर जब हमारी बस रुकी, तो वहां हंगामा मचा हुआ था और एक औरत चीख़ रही थी: "मार डाला! मार डाला!" मार्क्स पलक झपकते ही बस से नीचे पहुंच गये और मैं भी उनके पीछे हो लिया। मैं उन्हें रोकने की कोशिश कर रहा था, लेकिन वह तो छूटी हुई गोली को हाथों से थामने की कोशिश के समान थी। आन की आन में हम हंगामे के बीच में थे और हमारे पीछे लोगों की रेल-पेल हो रही थी। "आख़िर मामला क्या है?" हमें जल्दी ही इसका पता चल गया। कोई मदहोश औरत अपने पति से लड़ रही थी। वह उसे घर ले जाना चाहता था, पर औरत प्रतिरोध कर रही थी और दीवानावार चीख़ रही थी। हमने समझ लिया कि हमारे हस्तक्षेप की कोई आवश्यकता

नहीं है। लेकिन लड़नेवाले पति-पत्नी भी यह समझ गए और झटपट सुलह करके हमारे खिलाफ़ पिल पड़े। हमारे गिर्द भीड़ बढ़ती गई, धकमपेल करती हुई नज़दीक आती गई और उसने "लानतज़दा विदेशियों" के प्रति खतरनाक रवैया अपना लिया। उस औरत ने खास तौर से मार्क्स पर हमला किया और उनकी बढ़िया काली दाढ़ी को अपने क्रोध का निशाना बनाया। मैंने उस तूफ़ान को शान्त करने की निष्फल कोशिश की और केवल दो हट्टे-कट्टे पुलिसवालों की आमद ही हमें अपने उपकारी हस्तक्षेप का महंगा मोल चुकाने से बचा सकी। घर लौटने के लिए एक बस में सही-सलामत सवार हो जाने पर हमें ख़ुशी हुई। बाद को मार्क्स ऐसे मामलों में हस्तक्षेप करने के सम्बन्ध में अधिक सतर्क रहने लगे...

मार्क्स की उदात्त स्नेहशीलता और सादगी को समझने के लिए उन्हें अपने बच्चों के बीच देखना ज़रूरी था। अवकाश की घड़ियों में अथवा टहलने के दौरान वे उनके साथ दौड़ते थे और उनके अधिक से अधिक उल्लासमय तथा कल्लोलपूर्ण खेलों में हिस्सा लेते थे। वे बच्चों के बीच बिलकुल बच्चा बन जाते थे। कभी-कभी हम हैम्पस्टेड की वनस्थली में "घुड़सवार" का खेल खेलते थे। मैं किसी एक बेटी को कन्धों पर चढ़ा लेता और मार्क्स दूसरी को और उसके बाद दौड़ें शुरू हो जातीं या घुड़सवार आपस में भिड़ने लगते। लड़कियां बिलकुल लड़कों की तरह उत्कट थीं और छोटी-मोटी चोट से कभी नहीं रोती थीं।

दोनों लड़कियों में से बड़ी जेनी तो अपने पिता की बिलकुल प्रतिमूर्ति थी। वही काली-काली आंखें, वही पेशानी। वह कभी-कभी पाइथिया (आगमज्ञानी) बन जाती और उसमें पाइथिया के समान कोई "रूह" आ जाती। उसकी आंखें चमकने लगतीं, उनसे मानो चिनगारियां निकलने लगतीं और वह धाराप्रवाह भाषण करने लगती, जिसमें अक्सर अद्भुत कल्पना-विलास का समावेश होता। एक दिन उसे हैम्पस्टेड की वनस्थली से घर लौटते हुए इसी ढंग का "दौरा" आ गया और वह सितारों पर जीव के अस्तित्व की बातें करने लगी। उसकी वर्णना ने कविता का रूप ग्रहण कर लिया। श्रीमती मार्क्स के कई बच्चे चूंकि बचपन में ही मर गए थे, इसलिए वे मातृसुलभ चिन्ता के साथ बोलीं: "इसकी उम्र के बच्चे ऐसी बातें नहीं करते। इसकी अकाल-प्रौढ़ता बुरे स्वास्थ्य की निशानी है।"

लेकिन "मूर" ने उन्हें झिड़का और मैंने उनकी "पाइथिया" की ओर संकेत किया, जो अपने आगमज्ञानी के नाटक को समाप्त कर उल्लासपूर्वक हंसते हुए उछल-कूद रही थी और स्वास्थ्य की साक्षात् प्रतिमा लग रही थी...

मार्क्स के दोनों बेटे छुटपन में ही मर गए थे, लन्दन में पैदा होनेवाला तो बहुत ही छोटी उम्र में और ब्रसेल्स में जन्म लेनेवाला लम्बी बीमारी के बाद। दूसरे की मृत्यु मार्क्स के लिए भयानक चोट थी। मुझे उस आशारहित बीमारी के ग़मगीन हफ़्ते अब भी याद हैं। लड़के का नाम एक मामा के नाम पर एडगर रखा गया था, लेकिन उसे पुकारा "मुश"* जाता था। वह अत्यन्त मेधावी, किन्तु बचपन से ही रोगी था, बिलकुल सन्ताप-शिशु। सुन्दर आंखें, होनहार मस्तक, जो उसके दुर्बल शरीर के लिए अत्यन्त भारी प्रतीत होता था। बेचारे "मुश" को अगर देहात में अथवा समुद्र-तट पर शान्त वातावरण मिलता तथा उसकी निरन्तर अच्छी देखभाल होती, तो शायद वह जीता रह जाता। लेकिन उत्प्रवास के दौरान जगह-जगह मारे-मारे फिरने और लन्दन के जीवन की कठोरताओं में कोमलतम पैतृक स्नेह तथा मातृक सेवा भी दुर्बल पौधे को जीवन के लिए संघर्ष की आवश्यक शक्ति नहीं प्रदान कर सकती थी और "मुश" की मृत्यु हो गई...

मैं वह दृश्य कभी नहीं भूल सकता: मृत बच्चे के ऊपर झुकी मां मौन विलाप कर रही थी, पास ही खड़ी हेलेन सिसकियां भर रही थी और आश्वासन के किसी भी प्रयत्न पर मार्क्स भयानक रूप से उद्विग्न हो उठते थे; दोनों लड़कियां मां से चिपटकर मौन रुदन कर रही थीं तथा शोकमग्ना मां तड़प-तड़पकर अपनी बच्चियों को ऐसे अपने साथ सटा लेती थीं, मानो पुत्रों को लूट ले जानेवाली मौत से उनकी रक्षा कर रही हों।

दो दिन बाद "मुश" को दफ़नाया गया। लेसनर, फ़ैन्दर**, लौख़नर,

---

*फ़्रांसीसी में "मुश" («Mouche») का अर्थ है – मक्खी। – सं०

**फ़ैन्दर, कार्ल (लगभग १८१८–१८७६) – जर्मन मजदूर आन्दोलन के कार्यकर्त्ता, कम्युनिस्ट लीग की केन्द्रीय समिति तथा पहले इन्टरनेशनल की जनरल कौंसिल के सदस्य; पेशे से चित्रकार; मार्क्स और एंगेल्स के पक्षपाती। – सं०

कोनराद श्राम्म, लाल वोल्फ़* और मैं मौजूद थे। मैं मार्क्स के साथ बग्घी में गया था। वे हाथों में सिर थामे गुम-सुम बैठे रहे...

बाद में तुस्सी पैदा हुई। नन्ही-सी प्रफुल्ल सर्जना, गेंद जैसी गोल-मटोल, दूधिया और गुलाबी। पहले उसे बच्चागाड़ी में घुमाया जाता रहा, बाद में वह गोदी चढ़ी फिरती रही और फिर अपने नन्हे-नन्हे पैरों से ठुमकने लगी। जब मैं जर्मनी वापस लौटा, तो वह छे साल की थी, मेरी सबसे बड़ी बेटी की आधी उम्र की, और जो पिछले दो सालों से हैम्पस्टेड की वनस्थली में मार्क्स परिवार की रविवारी सैर के दौरान उसके साथ जाती थी।

मार्क्स के लिए बच्चों की संगत विश्राम और ताज़गी का स्रोत थी। वे उसके बिना रह ही नहीं सकते थे। उनके अपने बच्चों के बड़े हो जाने पर उनका स्थान नातियों-नातिनों ने ले लिया। जेनी, जिसने आठवीं दशाब्दी के शुरू में कम्यून में भाग लेनेवाले एक उत्प्रवासी, लॉन्गे से शादी कर ली थी, मार्क्स को कई नटखट नाती दिए। जॉन अथवा जॉनी, जो सबसे बड़ा और सबसे अधिक नटखट था, अपने नाना का चहेता था। वह उन्हें जैसे चाहता अपने इशारों पर नचा सकता था और यह बात वह जानता भी था।

एक दिन का क़िस्सा मुझे याद आ रहा है। मैं लन्दन आया हुआ था। जॉनी के मां-बाप ने उसे पेरिस से लन्दन भेज दिया था, जैसा कि वे साल में कई बार करते थे। उसके दिमाग़ में अपने नाना को बस बनाकर उनपर, यानी "मूर" के कन्धों पर, सवारी करने का ख़याल पैदा हुआ। मैं और एंगेल्स घोड़े बनाए गए। जब हम ठीक तरीक़े से नाध दिए गए, तब मेटलैण्ड पार्क रोड पर स्थित मार्क्स की बंगलिया के पीछेवाले छोटे से बाग़ के गिर्द दीवानावार घुड़दौड़ – मेरा मतलब है कि सवारी – शुरू हो गई। हो सकता है यह घटना रीजेण्ट पार्क रोड पर एंगेल्स के घर हुई हो, क्योंकि लन्दन के मकान इतने समान हैं कि उनके बारे में – बाग़ों के बारे में तो और भी अधिक – आसानी से धोखा हो सकता है। बजरी

---

*लाल वोल्फ़ – फ़र्दीनान्द वोल्फ़, कम्युनिस्ट लीग के सदस्य तथा १८४८–१८४९ में *«Neue Rheinische Zeitung»* के एक सम्पादक। – सं०

ग्रौर घास से ढके चन्द वर्ग मीटर, जिनपर "काली बर्फ़" ग्रथवा लन्दनी कालिख बिछी रहती है, जिसकी बदौलत यह तमीज़ नहीं की जा सकती कि कहां पर बजरी ख़तम ग्रौर घास शुरू होती है – ऐसे होते हैं लन्दन के "बाग़"।

सवारी चल पड़ी: टिक-टिक! अंग्रेजी, जर्मन ग्रौर फ़ान्सीसी – ग्रन्तर्राष्ट्रीय सिसकारें गूंजने लगीं: «Go on! Plus vite! Hurrah!»।* "मूर" उस वक़्त तक दुलकते रहे, जब तक उनकी पेशानी से पसीना न बहने लगा। ग्रगर एंगेल्स या मैं चाल को धीमी करने की कोशिश करते तो बेरहम कोचवान का चाबुक हमारी पीठों पर पड़ता: "नटखट घोड़े! बढ़ते चलो!" ग्रौर यह सिलसिला तब तक चलता रहा, जब तक मार्क्स बेदम नहीं हो गए ग्रौर तब हमें जॉनी से समझौता-वार्ता करनी पड़ी ग्रौर विराम-सन्धि सम्पन्न हुई...

११

हेलेन

मार्क्स की एक बेटी के शब्दों में हेलेन, मार्क्स परिवार के प्रादुर्भाव के पहले दिन से ही घर का जीवन-प्राण थी। वह क्या कुछ नहीं करती थी, ग्रौर सब कुछ ख़ुशी के साथ। हमेशा ख़ुशदिल, मुस्कराती हुई, हर घड़ी सभी की सहायता के लिए तत्पर। लेकिन वह ग़ुस्सा भी हो सकती थी ग्रौर "मूर" के दुश्मनों से बेहद घृणा करती थी।

जब श्रीमती मार्क्स बीमार या खिन्न होतीं, तब हेलेन मां का स्थान ग्रहण कर लेती। यों भी, बहरहाल, वह बच्चों की दूसरी मां के समान थी। वह बहुत ही पक्के इरादेवाली, बहुत ही दृढ़ थी। वह जो कुछ ज़रूरी समझती, उसे ग्रमली शक्ल देकर ही दम लेती।

जैसा कि कहा जा चुका है, घर में हेलेन एक प्रकार की ग्रधिनायक थी। बल्कि यह कहना ग्रधिक सही होगा कि हेलेन ग्रधिनायक थी ग्रौर

---

*बढ़ते चलो! ग्रौर तेज़! हुर्रा! – सं०

श्रीमती मार्क्स स्वामिनी। मार्क्स मेमने की भांति उस अधिनायकत्व को स्वीकारते थे।

कहा जाता है कि अपने नौकर की नज़र में कोई भी महान नहीं होता, निश्चय ही मार्क्स भी हेलेन की निगाह में महान नहीं थे। वह उनके लिए अपने को क़ुर्बान कर सकती थी; आवश्यक और संभव होने पर उनके, उनकी पत्नी या उनके किसी भी बच्चे के लिए हज़ार बार अपनी जान न्योछावर कर सकती थी। वास्तव में उसने उनके लिए अपनी जान न्योछावर की भी। लेकिन मार्क्स उसपर सिक्का नहीं जमा सकते थे। वह उनकी सारी सनकें और सारी कमज़ोरियां जानती थी और उन्हें अपने इशारों पर नचा सकती थी। यहां तक कि जब वे चिड़चिड़ाए होते और इस क़दर गरजते-तड़पते होते कि कोई उनके पास फटकने का भी साहस नहीं कर पाता था, तब भी हेलेन सीधे शेर की मांद में घुस जाती और अगर मार्क्स उनपर गुर्राते तो ऐसे फटकारती कि शेर भीगी बिल्ली बन जाता।

१२

मार्क्स के साथ हवाख़ोरी

हैम्पस्टेड हीथ की वह हवाख़ोरी! अगर मैं हज़ार साल भी जीता रहूं तो उन सैरों को नहीं भूल सकूंगा।

हैम्पस्टेड हीथ प्रिमरोज हिल की दूसरी तरफ़ है और ग़ैर-लन्दनवासी उस पहाड़ी की तरह ही डिकेन्स के पिकविकवालों की बदौलत उससे सुपरिचित हैं। उसका अधिकांश अब भी वीरान है, अब भी ग़ैर-आबाद है। यह झाड़-झंखाड़ों, टीलों तथा वादियों वाली पहाड़ी वनस्थली है। यहां कोई भी इस भय से निश्चिंत होकर घूम-फिर सकता है कि पहरेदार अनधिकार प्रवेश के लिए पकड़कर जुर्माना करवा देगा। अब भी वह लन्दनवासियों के सैर-सपाटे का प्रिय स्थल है और जब रविवार को मौसम अच्छा होता है, तब वनस्थली में मर्दों के काले सूट और औरतों की रंग-बिरंगी पोशाकें ही पोशाकें दिखाई देती हैं। औरतें तो वहां सवारी के लिए मिलनेवाले निस्सन्दिग्ध रूप से धैर्यशील खच्चरों और घोड़ों के धैर्य की परीक्षा लेना

ख़ास तौर से पसन्द करती हैं। चालीस साल पहले हैम्पस्टेड हीथ आज की अपेक्षा कहीं अधिक लम्बी-चौड़ी और कम कृत्रिम थी और वहां रविवार बिताना हमारे लिए अधिकतम आनन्द का स्रोत था।

बच्चे पूरे हफ़्ते उसकी बात करते रहते और वयस्क भी, बूढ़े और जवान सभी, अगले रविवार की प्रतीक्षा किया करते थे। वहां का तो सफ़र ही बड़ा आनन्ददायक होता था। लड़कियां चलने में माहिर थीं, गिलहरियों जैसी फुर्तीली और अनथक। मार्क्स परिवार डीन स्ट्रीट पर रहते थे और कुछ ही क़दमों की दूरी पर चर्च स्ट्रीट में मैं बस गया था। वहां से कोई डेढ़ घंटे का रास्ता था और हम आम तौर पर ग्यारह बजे रवाना हो जाते थे। लेकिन ऐसा हमेशा नहीं होता था, क्योंकि लन्दन में लोग तड़के नहीं उठते और सब कुछ ठीक-ठाक करते, बच्चों को तैयार करते और टोकरी को अच्छी तरह से भरते-भराते कहीं अधिक देर लग जाती थी।

ओह, वह टोकरी! वह मेरे "मन की आंखों" के सामने उतने ही वास्तविक और यथार्थ, आकर्षक और स्वादिष्ट रूप में मंडराती रहती है, जैसे अभी कल ही मैंने हेलेन को उसे लेकर चलते देखा हो।

जब किसी स्वस्थ और सशक्त व्यक्ति की जेब में तांबे के सिक्के भी बहुत न हों (उन दिनों चांदी के सिक्कों का तो सवाल ही नहीं पैदा होता था), तो भोजन का महत्त्व मुख्य बन जाता है। हमारी नेक हेलेन यह जानती थी और उसके दयालु हृदय को अपने मेहमानों पर तरस आता था, जिन्हें अक्सर भरपेट खाना नहीं मिलता था और जो इस कारण सदा भूखे रहते थे। हैम्पस्टेड हीथ की रविवारी सैर के लिए गोश्त का एक बड़ा-सा भुना हुआ टुकड़ा परम्परा-प्रतिष्ठित मुख्य भोजन होता था। हेलेन द्वारा त्रियेर से लायी गयी एक टोकरी में, जो लन्दन के लिए असाधारण रूप से बड़े आकार की थी, सब कुछ रखकर ले जाया जाता था। उसी में चाय और शकर और कभी-कभी फल भी रख लिए जाते थे। रोटी और पनीर हैम्पस्टेड हीथ में ख़रीदे जा सकते थे, जहां बर्लिन के कॉफ़े की तरह बर्तन, गरम पानी और दूध भी उपलब्ध होता था। इसके अलावा वहां जरूरत और जेब की समाई को देखते हुए मक्खन, झींगे, सलाद आदि भी ख़रीदे जा सकते थे...

तो हमारी सैर इस प्रकार शुरू होती थी। आम तौर से

दोनों लड़कियों को लेकर मैं आगे-आगे चलता और कहानियों, अथवा कलाबाज़ी के करतबों या आज की अपेक्षा अधिक प्रचुर वन्य-पुष्पों के चयन द्वारा उनका मनोरंजन करता रहता। हमारे पीछे चन्द दोस्त होते और तब मुख्य क़ाफ़िला होता – मार्क्स, उनकी पत्नी और विशेष ध्यान योग्य कोई रविवारी मेहमान। सबसे पीछे होती थी हेलेन और हमारे दल का सबसे भूखा व्यक्ति, जो टोकरी ढोने में उसकी मदद करता था। अगर हमारे दल में अधिक लोग होते, तो वे विभिन्न टुकड़ियों में बंट जाते थे। ज़ाहिर कि इस यात्रा-क्रम में इच्छा और आवश्यकता के अनुसार भिन्नता आती रहती थी।

हैम्पस्टेड हीथ में पहुंचकर हम सबसे पहले तो अपना ख़ेमा गाड़ने की कोई जगह तलाश करते थे और इस सम्बन्ध में चाय और बियर मिलने की सुविधा का यथासंभव ध्यान रखते थे।

खा-पीकर सैर में शरीक सभी लोग लेटने या बैठने की सबसे आरामदेह जगह तलाश कर लेते थे और जिनकी झपकी लेने की इच्छा नहीं होती थी, वे रास्ते में ख़रीदे गए रविवारी अख़बार निकाल लेते और राजनीति की चर्चा करने लगते। बच्चे शीघ्र ही खेलने के लिए साथी ढूंढ़ निकालते और झाड़ियों में आंख-मिचौनी खेलने लगते।

लेकिन उन सुखकर मनबहलावों में भी विविधता पैदा करना ज़रूरी होता था: दौड़ें, कुश्तीबाज़ी, अधिक से अधिक दूरी तक पत्थर फेंकने की होड़ें आयोजित की जाती थीं और तरह-तरह के दूसरे खेल खेले जाते थे। एक दिन हम लोगों को पके फलों से लदा चेस्टनट का पेड़ पास ही नज़र आ गया। किसी ने कहा, "अच्छा देखें, कौन सबसे अधिक इसके फल गिराता है!" और हम लोग हुर्रा की ललकार लगाकर काम में जुट गए। मार्क्स भी किसी से पीछे नहीं रहे। यह गोलाबारी तब तक बन्द नहीं हुई, जब तक कि आख़िरी फल नीचे नहीं गिरा लिया गया। एक हफ़्ते तक मार्क्स अपना दाहिना हाथ न हिला-डुला सके और मेरी हालत भी कुछ अधिक बेहतर नहीं थी।

सबसे अधिक मज़ेदार चीज़ हम लोगों की ख़च्चरों की सवारी होती थी। तब हम कितना हंसते और ठट्ठा मारते थे और हम कैसे अजीब-अजीब से दृश्य प्रस्तुत करते थे! मार्क्स ख़ुद भी ख़ुश होते थे और हमें

भी ख़ुशी प्रदान करते थे – हमें दुगुनी, क्योंकि एक तो वे सवारी के फ़न में अनाड़ी थे और दूसरे हमें उस हुनर में अपने कमाल का विश्वास दिलाने के लिए जाने कितनी अजीबोगरीब हरकतें करते थे। उस हुनर में उनके कमाल का सार यह था कि कभी विद्यार्थी जीवन में उन्होंने घुड़सवारी के कुछ सबक़ लिए थे – एंगेल्स का दावा था कि वे तीसरे सबक़ से आगे कभी नहीं बढ़े थे – और मैन्चेस्टर की अपनी विरल यात्राओं में एक वयोवृद्ध रोज़िनान्टे* की सवारी करते थे, जो संभवतः बूढ़े फ़िल्स द्वारा दिलेर गेलर्ट** को समर्पित परमधीर घोड़े का पोता था।

हैम्पस्टेड हीथ से घर को वापसी का रास्ता हमेशा बहुत आनन्ददायक होता था, हालांकि विगत आनन्द की अपेक्षा आगामी आनन्द हमेशा अधिक सुखकर होता है। हमारे लिए उदासी के पर्याप्त कारण थे, लेकिन हम अपनी असाध्य विनोदप्रियता द्वारा उससे सुरक्षित रहते थे। हमारे लिए उत्प्रवास की परेशानियों का अस्तित्व नहीं था और जो कोई भी उनकी शिकायत करता, उसे फ़ौरन ज़ोर-शोर से समाज के प्रति उसके कर्त्तव्यों की याद दिलायी जाती थी।

वापसी के समय सैलानियों का क्रम बदल जाता था। दिन भर की भागदौड़ से थके हुए बच्चे हेलेन के साथ सबसे पीछे-पीछे चलते थे और टोकरी के ख़ाली होने से भारमुक्त हेलेन उनकी देखभाल कर सकती थी। आम तौर से हम कोई न कोई गाना शुरू कर देते थे। हम राजनीतिक गाने विरले ही गाते थे। हमारे गाने अधिकतर भावनापूर्ण लोक-गीत होते थे – मैं यह बिलकुल सच कह रहा हूं – देशभक्ति के गीत, जैसे कि "ओ स्ट्रासबुर्ग, स्ट्रासबुर्ग, तू है अद्भुत नगर!", जो हमें ख़ास तौर से प्रिय था। अथवा बच्चे हमें नीग्रो लोगों के गान सुनाते और अगर बहुत थके न होते तो उनकी धुनों पर नाचते भी। सैर के दौरान राजनीति की भी उतनी ही कम बातें होती थीं, जितनी उत्प्रवास की परेशानियों की। अक्सर

---

*सेर्वांते के उपन्यास के पात्र डॉन क्विक्ज़ोट के घोड़े से अभिप्राय है। – सं०

**प्रशिया के बादशाह फ़्रेडरिक द्वितीय ने दरबारी कवि गेलर्ट को भेंटस्वरूप यह घोड़ा दिया था। – सं०
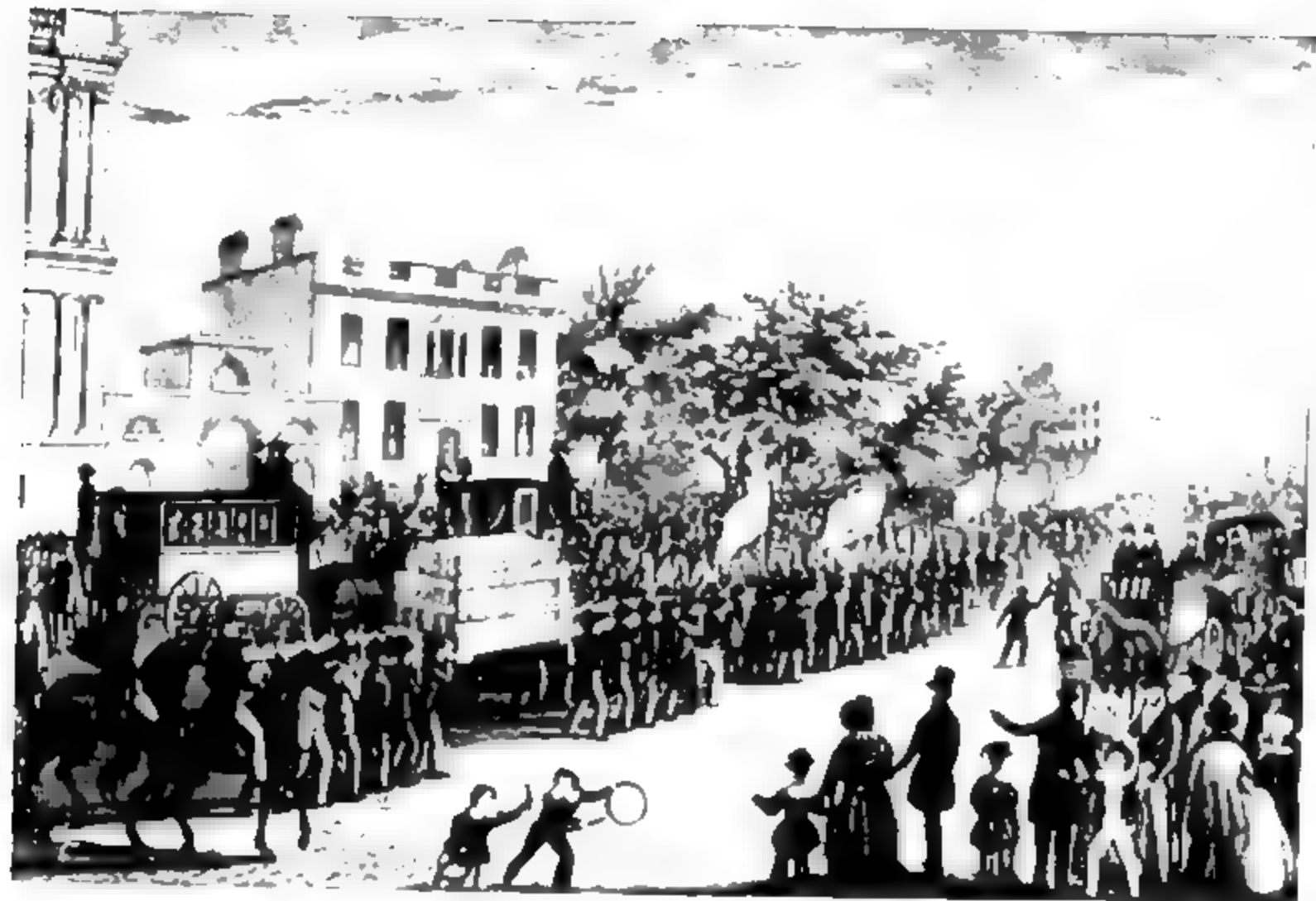
मई, १८४२ में चार्टिस्टों का जुलूस

सर्वहारा की पहली क्रान्तिकारी लड़ाइयां। १८३४ में लियों नगर के बुनकरों का विद्रोह

साहित्य और कला की ही चर्चा होती, जिससे मार्क्स को अपनी आश्चर्यजनक स्मरण-शक्ति प्रदर्शित करने का अवसर मिलता था। «*Divine comedy*»* उन्हें प्राय: कण्ठस्थ थी, जिसके लम्बे-लम्बे अंश तथा शेक्सपियर के नाटकों के दृश्य वे सुनाया करते थे। अक्सर उनके स्थान पर उनकी पत्नी शेक्सपियर सुनाती थीं। शेक्सपियर सम्बन्धी उनका ज्ञान भी उत्कृष्ट था...

छठी दशाब्दी के अन्त में हम उत्तरी लन्दन के केन्टिश टाउन और हैवर्स्टाक हिल नामक स्थानों पर बसे। तब हैम्पस्टेड और हाईगेट के बीच और परे के पहाड़ी मैदान हमारी हवाख़ोरी के प्रिय स्थान बन गये। वहां हम फूल चुनते और पौधों की जानकारी प्राप्त करते, जिससे शहरी बच्चों को दोहरी ख़ुशी होती, जिनके मन में बड़े नगर के नीरस, कोलाहलपूर्ण पाषाण-सागर के कारण हरियाली और प्राकृतिक सौन्दर्य के लिए लगाव पैदा हो गया था। उस दिन हमें कितनी ख़ुशी हुई थी, जब अपनी एक सैर के दौरान हमें कुछ पेड़ों की छाया में एक तालाब मिल गया था और मैंने बच्चों को पहला वन्य "फ़ोर्गेट मि नॉट" फूल दिखाया था। उससे भी बढ़कर ख़ुशी हमें तब हुई थी, जब हम सावधानी से चारों तरफ़ का सुराग़ लेकर और "प्रवेश-निषेध" की अवज्ञा करके गहरे हरे रंग के मख़मली कुंज में पहुंचे थे और एक पवन-सुरक्षित स्थान पर हमने हायसिन्थ के और अन्य वसंती फूल पाये थे... पहले तो मुझे अपनी आंखों पर विश्वास नहीं हुआ, क्योंकि अब तक मैं यही जानता था कि वन्य हायसिन्थ पुष्प केवल दक्षिणी देशों में ही उगते हैं – स्विट्ज़रलैण्ड में जेनेवा झील के पास, इटली में और यूनान में, उससे आगे उत्तर में नहीं। यहां मैंने उक्त धारणा के विरुद्ध प्रत्यक्ष प्रमाण देखा और अंग्रेज़ों के इस दावे की अप्रत्याशित पुष्टि हुई कि जहां तक फूलों का सम्बन्ध है, ब्रिटेन की जलवायु इटली जैसी ही है। निस्सन्देह वे हायसिन्थ के ही फूल थे – सामान्य, हल्के नीले, उतने बड़े नहीं जितने फुलवारियों में उगनेवाले होते हैं और एक डाली पर उतने बहुसंख्यक भी नहीं, लेकिन वही ख़ुशबू, यद्यपि कुछ अधिक तीखी।

हमने अपने इस सुगंधिपूर्ण कुंज से दुनिया पर, कुहासे के कुरूप रहस्य से आच्छादित अपनी विराटता में सामने फैले हुए संसार के उस प्रकाण्ड असीम नगर पर गर्व के साथ दृष्टि डाली।

---

*महान इतालवी कवि दांते का महाकाव्य। – सं०

१३

कुछ अप्रिय क्षण

रैब्ले* के चन्द अप्रिय क्षणों से कौन परिचित नहीं, जिनके दौरान मदिरालय के मालिक को पैसे अदा करना ज़रूरी होता था, वरना हालत और बदतर हो सकती थी। ऐसे क्षण किसने नहीं झेले हैं? मैंने भी झेले हैं। ऐसे क्षण आये परीक्षा से पहले, मेरे प्रथम भाषण के पूर्व और उस समय, जब पहली बार जेल के दरवाज़े के सामने सन्तरी ने मुझे अपनी पेटी और टाई उतार देने का आदेश दिया था, ताकि मैं आत्महत्या करके कोर्ट मार्शल से बचने की कोशिश न कर सकूं। यह बात उसने मेरी चकित जिज्ञासा के उत्तर में बेलाग साफ़दिली के साथ बताई थी। वे और वैसी ही अन्य घड़ियां भी निश्चय ही अप्रिय थीं। लेकिन जिन क्षणों का मैं ज़िक्र करना चाहता हूं, उनकी तुलना में उक्त क्षण सह्य ही नहीं, प्रिय भी थे। उनकी अवधि पन्द्रह मिनट भी नहीं रही होगी, हद से हद दस मिनट या शायद पांच मिनट ही। मैंने समय जांचा नहीं, ऐसा करने का वक़्त ही नहीं था। वक़्त होता भी तो मेरे पास घड़ी नहीं थी। उत्प्रवासी और घड़ी! मैं केवल इतना ही जानता हूं कि वे क्षण मेरे लिए अनन्त थे।

यह घटना लन्दन में १८ नवम्बर १८५२ को हुई।

"लौह ड्यूक" और "शत युद्ध-विजेता", लार्ड वेलिंगटन, जिन्हें ब्रिटिश जनता ने सुधार-आन्दोलन के दौरान विनम्र-विनीत बना दिया था, १४ सितम्बर को वामर की अपनी गढ़ी में मर गए थे... उस "राष्ट्रीय नायक" की अन्त्येष्टि "राष्ट्रीय सजधज" के साथ सन्त पॉल के चर्च में होनी थी, जहां उन्हें अन्य "राष्ट्रीय नायकों" के पहलू में दफ़नाया जाना था। उनकी मौत के दिन से ही, यानी प्रायः दो महीने तक सारा ब्रिटेन, ख़ास तौर से सारा लन्दन इसी अन्त्येष्टि समारोह की बात कर रहा था, जो शान और शौक़त में पहले के सभी राष्ट्रीय अनुष्ठानों को मात दे देनेवाला

---

*रैब्ले, फ़्रांसुआ (लगभग १४९४–१५५३) – पुनरुद्धारकाल के महानतम फ़्रांसीसी लेखक-मानवतावादी। – सं०

था, जैसे कि अंग्रेज़ों के दावे के अनुसार स्वय उक्त ड्यूक ने पहले के सभी नायकों को पीछे छोड़ दिया था... अनुष्ठान का दिन आया।

सारा ब्रिटेन गतिमान था। सारा लन्दन चल रहा था। देश के कोने-कोने से आनेवाले लाखों और विदेश से आनेवाले हज़ारों लोगों ने लन्दन की लाखों की संख्या को और भी बहुत बढ़ा दिया था।

मैं ऐसे तमाशों और जुलूसों को नापसन्द करता हूं और अपने अनेक उत्प्रवासी साथियों की तरह उस समय या तो अपने घर पर पड़े रहने अथवा जेम्स पार्क चले जाने को तरजीह देता हूं। लेकिन दो सहेलियों ने मुझे अपना इरादा बदलने को मजबूर कर दिया...

वे सचमुच ही मेरी बहुत पक्की सहेलियां थीं—श्यामनयना तथा कृष्ण-कुंचित-केशिनी जेनी, जो "मूर" की, अपने पिता की बिलकुल प्रतिमूर्ति थी, तथा कोमलांगी, स्वर्णकेशिनी, चपलनयना लौरा, जो अपनी प्रफुल्ल मां का ही रूप थी।

दोनों लड़कियां प्रथम परिचय के समय ही मेरे साथ हिल-मिल गई थीं और मेरे पहुंचते ही मुझ पर अपना अधिकार कर लेती थीं। लन्दन के अपने उत्प्रवासी जीवन के दौरान अगर मैं ज़िन्दगी को ख़ुशगवार बनानेवाली अपनी ख़ुशदिली क़ायम रख सका, तो उसका अधिकतर श्रेय उन्हें ही था। मन के अत्यधिक खिन्न होने पर मैं अक्सर अपनी नन्हीं प्रिय सहेलियों के पास भाग जाता था और उनके साथ सड़कों तथा बाग़ों की सैर किया करता था! तब मेरी उदास चिन्तना के बादल छंट जाते थे और संघर्ष के निमित्त शक्ति तथा सुख देनेवाली ख़ुशमिज़ाजी लौट आती थी।

आम तौर से मुझे उन्हें कहानियां सुनानी पड़ती थीं—परिचय के चन्द दिनों बाद ही मैं अच्छा कथक्कड़ मान लिया गया था और मेरा सदैव तुमुल आह्लाद के साथ स्वागत होता था। सौभाग्य से मुझे बहुतेरी कहानियां याद थीं और जब मेरा कथा-भण्डार समाप्त हो गया, तब मुझे और कहानियां गढ़नी पड़ीं...

जब मैं बेसब्री से उछलती-कूदती लड़कियों को लेकर तमाशे के लिए रवाना हुआ, तो श्रीमती मार्क्स ने कहा, "बच्चों का ध्यान रखिएगा। जहां भीड़ बहुत अधिक हो, वहां मत जाइएगा।" और हम अभी दरवाज़े पर ही थे कि चिन्ताकुल भाव से हमारे पीछे दौड़कर आनेवाली हेलेन ने

पुकारकर कहा, "प्यारे लाइब्रेरी, बहुत सावधान रहिएगा!" (यह अजीब-सा उपनाम मुझे बच्चों ने दे रखा था)।

मेरी योजना तैयार थी। किसी खिड़की या किसी अड्डे पर जगह पाने के लिए हमारे पास पैसे नहीं थे। चूंकि जुलूस स्ट्रेण्ड से होकर नदी के किनारे-किनारे जानेवाला था, इसलिए हमें स्ट्रेण्ड से नदी की ओर जानेवाली किसी एक सड़क पर ही बढ़ जाना था।

लड़कियां दोनों तरफ़ से मेरे हाथ पकड़े हुई थीं। मेरी जेब में कलेवा था। हम अपने निर्धारित स्थान की ओर चल पड़े, जो टेम्पुल बार और पुराने नगर-फाटकों के पास वेस्टमिनस्टर तथा सिटि के बीच था। सुबह से ही सड़कों पर लोगों की भरमार थी और अब तो वे खचाखच भर गई थीं। लेकिन चूंकि जुलूस को राजधानी के दूरस्थ हलक़ों से होकर गुज़रना था, इसलिए भीड़ विभिन्न सड़कों पर बंट गई और हम रेल-पेल के बिना ही निर्धारित स्थान पर पहुंच गए। जगह का मेरा चुनाव अच्छा साबित हुआ। मैं वहां बनी सीढ़ियों पर खड़ा हो गया और दोनों लड़कियां मुझसे एक सीढ़ी ऊपर, मेरा हाथ पकड़े और एक दूसरी से सटकर खड़ी हो गयीं।

अरे, वह क्या है? उमड़ता हुआ जन-सागर। दूरस्थ सागर की दबी-घुटी गूंज निकट से निकटतर आती गयी... बच्चियां पुलकित हो उठीं। कोई धकापेल नहीं हुई और मेरी चिन्ता दूर हो गई।

बड़ी देर तक हमारे सामने से स्वर्णदीप्त जुलूस अन्तहीन तारतम्य में गुज़रता रहा, यहां तक कि सोने की झालरों से सज्जित अन्तिम घुड़सवार भी गुज़र गया और तमाशा समाप्त हो गया।

अचानक हमारे पीछे संकुलित भीड़, जुलूस का अनुगमन करने की उत्सुकता में झोंक के साथ आगे उझकी। मैंने पूरी ताक़त से अपने पैर जमा दिए और बच्चियों का बचाव करने की कोशिश की, ताकि भीड़ उनसे टकराए बग़ैर ही आगे निकल जाए। किन्तु व्यर्थ! उमड़ती भीड़ की शक्ति के सामने कोई भी मानवीय बल उसी तरह नहीं टिक सकता, जैसे कठोर शीत के बाद प्लावी हिमखण्ड को कोई नाज़ुक नौका नहीं तोड़ सकती। मुझे अपना यह प्रयास छोड़ना पड़ा और लड़कियों को मजबूती से अपने साथ चिमटाए हुए मैंने मुख्य रेले में से निकल जाने की कोशिश की। लगा कि मैं सफल हो रहा हूं और मैंने इतमीनान की सांस ली। लेकिन इतने

में दाईं ओर से एक और प्रचंडतर इंसानी रेला हम पर पिल पड़ा: हम तटबन्ध पर ठेल दिए गए और वहां संकुलित हजारों-लाखों लोग जुलूस का पीछा कर रहे थे, ताकि उस तमाशे को एक बार फिर देख सकें। मैंने लड़कियों को अपने कंधों पर उठा लेने की कोशिश की, लेकिन भीड़ का दबाव मेरे आस-पास बेहद अधिक था। मैंने बच्चियों की बांहें कसकर पकड़ लीं, लेकिन जन-बवंडर हमें रेलता चला गया। यकायक मुझे महसूस हुआ कि मेरे और बच्चियों के बीच कोई शक्ति चीरती हुई घुसी आ रही है जिसने बच्चियों को झटके के साथ मुझसे झपट लिया। प्रतिरोध व्यर्थ था। मुझे इस डर से उनकी बांहें छोड़ देनी पड़ीं कि कहीं वे टूट न जाएं या कहीं उनकी हड्डी न उतर जाए। वह बहुत ही भयानक क्षण था।

अब क्या करूं? अपनी तीन गुजरगाहों के साथ टेम्पुल बार का फाटक मेरे सामने था। बीच की गुजरगाह सवारियों के लिए थी और अग़ल-बग़ल की गुजरगाहें पैदल चलनेवालों के लिए। मानवीय ज्वार फाटकों पर वैसे ही उमड़ रही थी, जैसे पुलों के स्तंभों पर जलावर्त। मुझे इस भीड़ को चीरते हुए आगे जाना ही था! मेरे चतुर्दिक उठती हुई भयानक चीखों ने परिस्थिति की समस्त विपन्नता स्पष्ट कर दी। अगर बच्चियां पैरों तले कुचली नहीं गईं, तो वे मुझे उस पार मिलेंगी, जहां दबाव हलका हो गया होगा। काश कि ऐसा ही हो! मैंने कुहनियों और सीने से दीवानों की तरह धक्के दिये। लेकिन ऐसी तूफ़ानी ज्वार में अकेला आदमी बवंडर में तिनके के समान होता है। लेकिन मैं जूझता ही गया, जूझता ही गया। दर्जनों बार मुझे लगा कि मैं निकल गया, लेकिन बार-बार एक ओर को ठेल दिया जाता था। अंत में एक हिचकोला आया, प्रचंड धकमपेल हुई और पलक मारते ही मैं घनी भीड़ में से निकल गया। मैंने बेचैनी से इधर-उधर देखकर बच्चियों की तलाश की। कहीं नहीं! मेरा दिल बैठ गया। तभी दो स्पष्ट बचकानी आवाज़ें आईं:

"लाइब्रेरी!"

मुझे लगा कि जैसे मैं सपना देख रहा होऊं। मगर दोनों बच्चियां मेरे सामने खड़ी थीं, मुस्कुराती हुई और सही-सलामत। मैंने उन्हें चूमा और गले लगाया।

क्षण भर को मैं बिलकुल अवाक था। तब उन्होंने मुझे बताया कि कैसे उस तूफ़ानी धारा ने, जिसने उन्हें मेरी मुट्ठियों से झटककर छीन लिया था, उन्हें फाटक से सुरक्षित रूप में पार निकालकर उन्हीं दीवारों के पास एक तरफ़ को फेंक दिया था, जिनके कारण दूसरी जानिब भीड़ गतिरुद्ध हो गई थी। वहां पर वे दीवार के आगे को निकले हुए एक भाग के साथ सटकर खड़ी रह गई थीं, क्योंकि उन्हें मेरी यह हिदायत याद आ गई थी कि अगर हमारी सैरों में वे कभी खो जाएं, तो यथासंभव जहां हों, वहीं बनी रहें।

हम विजयोल्लास के साथ घर लौटे। मार्क्स, उनकी पत्नी और हेलेन ने हमारा हर्षपूर्वक स्वागत किया, क्योंकि वे सभी बहुत चिन्तित थे। वे सुन चुके थे कि भीड़ भयानक थी और बहुत-से लोग कुचल दिये गये थे, घायल हो गए थे। बच्चियों को इस बात का गुमान तक भी नहीं था कि वे कितने बड़े ख़तरे में पड़ गई थीं। वे तो बहुत ही ख़ुश थीं और मैंने भी उस शाम किसी को यह नहीं बताया कि उन चन्द क्षणों में मुझपर क्या कुछ गुजर चुकी थी।

कई औरतों की उसी जगह जान चली गई थी, जहां बच्चियां मुझसे झपट ली गई थीं। उन मनहूस घड़ियों की याद मेरे लिए इस तरह ताजा है, जैसे अभी कल की ही बात हो...

१४

मार्क्स और शतरंज

मार्क्स ड्राफ़्ट बहुत अच्छा खेलते थे। इस खेल में वे इतने सिद्धहस्त थे कि उन्हें हराना मुश्किल था। शतरंज खेलने में भी उन्हें मजा आता था, लेकिन उसमें वे कुछ ख़ास माहिर नहीं थे। उसमें दक्षता की कमी को वे जोश-ख़रोश और आकस्मिक हमले द्वारा पूरा करने की कोशिश करते थे।

छठी दशाब्दी के शुरू में हम उत्प्रवासियों के बीच शतरंज आम खेल था। हमारे पास जरूरत से ज्यादा समय था और हम लाल वोल्फ़ के नेतृत्व में,

जो पेरिस के बेहतरीन शतरंजी हल्कों में अक्सर खेले थे और खेल के कुछ दांव-पेच सीख चुके थे, यह "बुद्धिमानों का खेल" बहुत खेला करते थे।

कभी-कभी हमारे बीच पुरजोश शतरंजी दंगल होते थे। जो हार जाता था, उसका ख़ूब मज़ाक़ बनाया जाता था। खेल के दौरान जिन्दादिली रहती थी और अक्सर बहुत शोर-शराबा रहता था।

मार्क्स कठिन स्थिति में पड़ने पर चिढ़ जाते और हार जाने पर आग बबूला हो उठते। ओल्ड कॉम्प्टन स्ट्रीट के मॉडल लॉजिंग-हाउस* में, जहां हम में से कई लोग कुछ समय तक साढ़े तीन शिलिंग साप्ताहिक किराए पर रहते थे, हम हमेशा अंग्रेज़ों से घिरे रहते थे। वे हमारे खेल को उत्कंठित दिलचस्पी के साथ देखा करते थे (ब्रिटेन के मजदूरों में भी शतरंज लोकप्रिय था) और खेल के साथ चलनेवाले हंसी-ख़ुशी के कोलाहल का भी मजा लेते थे, क्योंकि दो-एक दर्जन अंग्रेजों की तुलना में दो जर्मन कहीं अधिक शोर मचाते हैं।

एक दिन मार्क्स ने हमें उल्लासपूर्वक सूचना दी कि उन्होंने एक ऐसी नई चाल खोज निकाली है, जो हम सभी को पराजित कर देगी। उनकी चुनौती स्वीकार कर ली गई और उन्होंने सचमुच हम सभी को बारी-बारी से हरा दिया। लेकिन हमने अपनी हार से शीघ्र ही सबक़ लिया और मैं मार्क्स को मात देने में कामयाब हो गया। काफ़ी देर हो चुकी थी, इसलिए उन्होंने दूसरी सुबह अपने घर पर जवाबी खेल के लिए आग्रह किया।

***मॉडल लॉजिंग-हाउस** – बैरक जैसी इमारत जिसमें किरायेदारों के लिये अलग-अलग कमरे, साझा रसोईघर और बैठकख़ाना तथा पढ़ने और धूम्रपान का एक साझा कमरा होता था। लन्दन में ऐसे अनेक मकान थे। ऐसी कुछ इमारतों में परिवारों के लिये अनेक कमरों और उपर्युक्त साझे कमरों के अलावा धुलाई का एक साझा कमरा भी होता था। एक विशेष कारिन्दा ऐसी इमारतों का प्रबन्धक होता था। इमारतें बेहद साफ़-सुथरी रखी जाती थीं। लन्दन में अभी भी ऐसी कई संस्थाएं सफलतापूर्वक चलाई जा रही हैं। (**लीब्कनेख़्त का नोट**)

ठीक ग्यारह बजे, जो लन्दन के लिए बहुत सवेरा समझा जाता है, मैं मार्क्स के यहां पहुंच गया। वे अपने कमरे में नहीं थे, लेकिन मुझे बताया गया कि जल्द ही आनेवाले हैं। श्रीमती मार्क्स कहीं दिखाई नहीं पड़ीं और हेलेन का मूड भी कुछ अच्छा नहीं दिख रहा था। मैं पूछूं-पूछूं कि मामला क्या है कि "मूर" आ गए। उन्होंने मुझसे हाथ मिलाया और शतरंज की बिसात निकाल ली।

मोर्चा जम गया। मार्क्स ने रात में अपनी चाल को और बेहतर बना लिया था और जल्दी ही मैं बुरी तरह फंस गया। मैं मात खा गया और मार्क्स बाग़-बाग़ हो गए। उन्होंने सैण्डविचों के साथ कुछ पीने को मंगवाया। फिर हम दूसरी बाज़ी खेले और मैं जीत गया और इस प्रकार हम बदलते हुए मिज़ाज के साथ हारते-जीतते खेलते रहे...

श्रीमती मार्क्स एक बार भी दिखाई नहीं पड़ीं और किसी बच्ची ने भी नज़दीक फटकने का साहस नहीं किया। बाज़ियां चलती रहीं, कभी एक के पक्ष में, तो कभी दूसरे के। अन्त में मैंने मार्क्स को लगातार दो बार मात दे दी। उन्होंने खेल को जारी रखने का आग्रह किया, लेकिन तभी हेलेन ने निर्णायक ढंग से कह दिया: "बस, बहुत हो चुका!"...

१५

अभाव और तंगदस्ती

मार्क्स की बाबत अविश्वसनीय संख्या में झूठी बातें उड़ायी गयी हैं। दूसरी बातों के अलावा यह भी कहा गया है कि वे रंगरेलियों का हंगामी जीवन बिताते थे, जबकि उनके हल्क़े के अधिकतर उत्प्रवासी भूखे रहते थे। मैं यह दावा नहीं करता कि मुझे ब्योरे में जाने का अधिकार है, लेकिन इतना कह सकता हूं कि श्रीमती मार्क्स की टीपों से मुझे इस बात के बारम्बार और ज्वलन्त प्रमाण मिले हैं कि मार्क्स और उनके परिवार के लिए निर्धनता की कटु घड़ियां विरली और संयोगवश ही नहीं थीं, जो सर्वथा असहाय उत्प्रवासित लोगों के लिए सदा ही संभव हैं, बल्कि उन्हें उत्प्रवास में बरसों

तीव्रतम अभाव के कष्ट झेलने पड़े। मार्क्स और उनके परिवार से अधिक कष्टभोगी उत्प्रवासी शायद बहुत नहीं थे। यहां तक कि बाद में भी, जब उनकी आमदनी अपेक्षाकृत अधिक और ज्यादा नियमित हो गई थी, वे अभाव की चिन्ता से मुक्त नहीं हुए। बदतरीन दिनों के बीत जाने पर भी बरसों तक «*New York Daily Tribune*» से लेखों के लिए हर सप्ताह मिलनेवाला एक पौण्ड ही मार्क्स की एकमात्र सुनिश्चित आमदनी था ...

१६

मार्क्स की बीमारी और मौत

(तुस्सी का पत्र)*

"मुस्ताफ़ा (अल्जीरिया) में 'मूर' के आवास के बारे में मैं बस इतना ही कह सकती हूं कि मौसम बहुत बुरा था, कि 'मूर' एक बहुत अच्छा और योग्य डाक्टर पा गए और यह कि होटल में हर कोई उन्हें चाहता था, उनका ध्यान रखता था।

"१८८१–१८८२ की पतझड़ और जाड़ों में 'मूर' पहले पेरिस के निकट आर्जेन्त्योए में जेनी के साथ रहे। हम उनसे वहीं मिले और चन्द हफ़्ते ठहरे। उसके बाद वे फ़ान्स के दक्षिण में और अल्जीरिया चले गए। लेकिन जब लौटे तो उनकी तबीयत काफ़ी ख़राब थी। १८८२–१८८३ की पतझड़ और जाड़ा उन्होंने वेन्तनोर (व्हाइट टापू) में बिताया और जेनी की मौत के बाद १२ जनवरी, १८८३ को वापस आये।

"अब सुनिए कार्ल्सबाद की बात। हम वहां पहले पहल १८७४ में गए थे। तब 'मूर' को जिगर की तकलीफ़ और अनिद्रा के कारण वहां भेजा गया था। चूंकि प्रथम आवास के दौरान उन्हें वहां असाधारण स्वास्थ्य-

---

*यहां लीब्कनेख़्त ने मार्क्स की सबसे छोटी बेटी, एल्योनोरा, (जिसे परिवार में तुस्सी कहा जाता था) से प्राप्त एक पत्र उद्धृत किया है।–सं०

लाभ हुआ था, इसलिए १८७५ में वे अकेले वहां दुबारा गए। अगले साल १८७६ में मैं फिर उनके साथ गई, क्योंकि उन्होंने कहा कि पिछले साल मेरा अभाव उन्हें बहुत महसूस हुआ था। कार्ल्सबाद में वे अपने इलाज के बारे में अधिक विवेकशील थे और नियमनिष्ठा के साथ अपने लिए विहित सब कुछ का पालन करते थे।

"वहां हमारे अनेक मित्र बन गए। 'मूर' के साथ यात्रा करना आनन्ददायक था। वे हमेशा ख़ुशमिज़ाज रहते और हर चीज़ से, चाहे वह कोई सुन्दर दृश्य हो अथवा एक गिलास बियर, आनन्द-लाभ करने को तत्पर रहते थे। उनका अपार इतिहास-ज्ञान हर उस स्थान को जहां हम जाते, वर्तमान की अपेक्षा अतीत में अधिक सजीव और अधिक विद्यमान बना देता।

"मेरा अनुमान है कि 'मूर' के कार्ल्सबाद के आवास की बाबत थोड़ा-बहुत लिखा जा चुका है। मैंने एक लम्बे लेख की बात भी सुनी है, लेकिन मुझे यह याद नहीं रहा कि वह किस अख़बार में था।

"१८७४ में हम आप से लाइप्ज़िग में मिले थे। वापसी में हम चक्कर काटकर बिन्गेन गए। 'मूर' मुझे बिन्गेन दिखाना चाहते थे, क्योंकि वे मेरी मां के साथ मधु-मास मनाने वहां गए थे। इन दो यात्राओं में हमने ड्रेस्डेन, बर्लिन, प्राग, हैम्बर्ग और नुरेन्बर्ग का भी दौरा किया।

"१८७७ में 'मूर' फिर कार्ल्सबाद जानेवाले थे, लेकिन हमें पता चला कि जर्मन और आस्ट्रियाई अधिकारी उन्हें वहां से निकाल देने का इरादा रखते हैं और चूंकि निकाले जाने का ख़तरा उठाने के लिए यात्रा बहुत ख़र्चीली और लम्बी थी, इसलिए 'मूर' वहां फिर नहीं गए। यह उनके स्वास्थ्य के लिए बहुत हानिकर बात थी, क्योंकि कार्ल्सबाद में इलाज के बाद वे सदा ऐसा महसूस करते थे मानो उनमें नई जिन्दगी आ गई हो।

"बर्लिन हम मुख्यत: पिता के वफ़ादार दोस्त, अपने प्रिय चाचा एडगर फ़ॉन वेस्टफ़ालेन से मिलने के लिए गए। हम वहां केवल कुछ ही दिन ठहरे। 'मूर' को यह सुनकर बड़ा मज़ा आया कि तीसरे दिन हमारे वहां से विदा होने के घंटे भर बाद ही हमारे होटल पर पुलिस पहुंची।"

* * *

"१८८१ की पतझड़ तक हमारी प्यारी मां इतनी बीमार हो गईं कि कभी-कभी ही बिस्तर से उठतीं। 'मूर' अपनी तबीयत की ख़राबी के बारे में हमेशा बहुत लापरवाही बरतते थे, सो उन्हें भी प्ल्यूरिसी ने बुरी तरह घर दबाया। डाक्टर की, हमारे नेक दोस्त डंकिन की राय में उनकी बीमारी प्राय: असाध्य थी। वह भयानक समय था। प्यारी मां आगेवाले बड़े कमरे में पड़ी थीं और 'मूर' बग़लवाले छोटे कमरे में। वे दोनों एक दूसरे के सान्निध्य के इतने आदी हो चुके थे, उनके जीवन एक दूसरे के अंग बन चुके थे, लेकिन अब वे साथ-साथ एक ही कमरे तक में नहीं रह सकते थे।

"हमारी भली बूढ़ी हेलेन—आप तो जानते ही हैं कि वह हमारे लिए क्या थी—और मैं उन दोनों की तीमारदारी करती थीं। डाक्टर का कहना था कि हमारी तीमारदारी ने ही 'मूर' को बचा लिया। बात चाहे जो भी रही हो, मैं बस इतना ही जानती हूं कि तीन हफ़्ते तक न तो हेलेन ने बिस्तर को पीठ लगाई और न मैंने ही। हम रात-दिन पैरों पर ही काट देतीं और बेहद थक जाने पर बारी-बारी से घंटे-घंटे भर को आराम कर लेतीं।

"'मूर' फिर अपनी बीमारी पर क़ाबू पा गए। मुझे वह सुबह कभी न भूलेगी, जब उन्होंने अपने में मां के कमरे तक जाने की ताक़त महसूस की। एकसाथ होने पर वे दोनों जैसे फिर जवान हो उठे—एक दूसरे से हमेशा के लिए बिछड़नेवाले रोगग्रस्त वृद्ध और मरती हुई वृद्धा के बजाए जैसे प्रेमी युवक और युवती बन गए।

"'मूर' कुछ अच्छे हो गए और हालांकि उनकी कमज़ोरी अभी पूरी तरह दूर नहीं हुई थी, फिर भी ताक़त आने लगी थी।

"तभी २ दिसम्बर, १८८१ को मां का देहान्त हो गया। उनके अन्तिम शब्द—अजीब बात थी कि वे अंग्रेज़ी में कहे गए थे—उनके 'कार्ल' के लिए थे।

"जब हमारे प्रिय 'जनरल' (एंगेल्स) आए, तो उन्होंने एक ऐसी बात कही जिसे सुनकर उस समय मैं प्राय: आपे के बाहर हो गई थी। उन्होंने कहा: "'मूर' भी मर गये'।

"और यह बात सच थी।

"प्यारी मां के जीवन के साथ ही 'मूर' का जीवन भी चुक गया। उन्होंने जीवन से चिपके रहने के लिए घोर संघर्ष किया – संघर्षप्रिय तो वे अन्त तक बने रहे – लेकिन वे टूट चुके थे। उनके स्वास्थ्य की आम हालत बद से बदतर होती गई। अगर उन्हें केवल स्वचिन्ता होती, तो वे सब कुछ से किनारा करके बैठ रहते। लेकिन उनके लिए एक चीज़ सर्वोपरि थी – हेतु के प्रति वफ़ादारी। उन्होंने अपनी महान कृति को पूरा करने की कोशिश की और इसी लिए अपने स्वास्थ्य सुधार के लिए फिर से यात्रा करने को राज़ी हो गए।

"१८८२ के वसन्त में वे पेरिस और आर्जेन्त्योए गए, जहां मैं उनसे मिली। हम लोगों ने जेनी और उनके बच्चों के साथ वास्तविक ख़ुशी के चन्द दिन बिताए। उसके बाद 'मूर' फ़्रान्स के दक्षिण, और अन्त में अल्जीरिया गये।

"अल्जीरिया, निस और कान्न के उनके पूरे आवास-काल में मौसम ख़राब रहा। उन्होंने मुझे अल्जीरिया से लम्बे-लम्बे ख़त लिखे। उनमें से अनेक मेरे पास नहीं रहे, क्योंकि उनकी मरज़ी के मुताबिक़ मैं उन पत्रों को जेनी को भेज देती थी जिनमें से बहुतेरे मुझे वापस नहीं मिले।

"अन्ततः जब 'मूर' घर लौटे, तो उनकी हालत बहुत ख़राब थी और हमें भयानक अनिष्ट की आशंका होने लगी। डाक्टर की सलाह से उन्होंने पतझड़ और जाड़ा व्हाइट द्वीप के वेन्टनोर नामक स्थान पर बिताया। यहां मुझे इस बात का ज़िक्र कर देना चाहिए कि मूर' की मरज़ी के मुताबिक़ उस समय मैं तीन महीने जेनी के सबसे बड़े लड़के जॉन (जॉनी) के साथ इटली में रही। १८८३ के शुरू में मैं जॉनी को साथ लेकर 'मूर' के पास पहुंच गई। जॉनी उनका सबसे चहेता नाती था। फिर मुझे वहां से वापस आना पड़ा, क्योंकि मेरी पढ़ाई मेरी प्रतीक्षा कर रही थी।

"तब पड़ी आख़िरी भयानक चोट: जेनी की मौत की ख़बर मिली। 'मूर' की प्रथम संतान जेनी, उनकी सबसे चहेती बेटी अकस्मात (११ जनवरी को) चल बसी। हमें 'मूर' के पत्र मिले थे – वे इस समय मेरे सामने पड़े हैं – जिनमें उन्होंने लिखा था कि जेनी की सेहत सुधर रही थी और हमारे (मेरे और हेलेन के) चिन्तित होने की कोई बात नहीं थी।

जिस पत्र में 'मूर' ने यह बात लिखी थी, उसके घंटे ही भर बाद हमें मृत्यु के समाचार का तार मिला। मैं फ़ौरन वेन्टनोर के लिए रवाना हो गई।

"मेरी ज़िन्दगी में बहुत बार ग़म की घड़ियां आई हैं, लेकिन उस दिन से अधिक ग़मनाक वे कभी नहीं थीं। मुझे महसूस हो रहा था जैसे मैं पिता को मौत की सज़ा सुनाने जा रही होऊं। उस लम्बी चिन्ताकुल यात्रा में मैं लगातार यही सोचती रही कि उन्हें यह ख़बर किस तरह सुनाऊंगी। लेकिन मुझे इसकी ज़रूरत नहीं पड़ी, मेरी सूरत ने ही सब कुछ कह दिया और 'मूर' फ़ौरन बोल उठे: 'हमारी जेनी चल बसी!' उसके बाद उन्होंने मुझे फ़ौरन बच्चों के पास पेरिस जाने को कहा। मैं उनके साथ रहना चाहती थी, लेकिन उन्होंने [कुछ भी सुनना गवारा नहीं किया। वेन्टनोर में मुश्किल से आधा घंटा रुककर मैं लन्दन की ग़मनाक यात्रा के लिए चल पड़ी और वहां से पेरिस पहुंची। बच्चों के हित में 'मूर' ने जो चाहा, मैंने वही किया।

"मैं अपनी घर-वापसी की बाबत कुछ नहीं कहूंगी। उस वक़्त की याद करके मैं कांप उठती हूं, कैसी व्याकुलता थी, कैसी वेदना! लेकिन नहीं, यह चर्चा बहुत हो चुकी। मैं वापस आई और 'मूर' भी अपनी अन्तिम सांसें लेने के लिए घर लौटे।

"अब प्यारी मां के बारे में चन्द शब्द और। वे महीनों से घुल रही थीं और कैन्सर की सारी भयानक यंत्रणाएं झेल रही थीं। लेकिन इसके बावजूद उनकी ख़ुशमिज़ाजी, उनकी अनन्त विनोदप्रियता, जिससे आप भली भांति परिचित हैं, हमेशा बनी रही। वे जर्मनी के चुनावों (१८८१) के नतीजों की बाबत बच्चे जैसी बेसब्री के साथ पूछती रहीं और जीत पर कितनी अधिक ख़ुश हुईं! वे आख़िरी घड़ी तक ज़िन्दादिल बनी रहीं और मज़ाक़ों से अपने बारे में हमारी चिन्ता दूर करने की कोशिश करती रहीं। जी हां, इतनी भयानक पीड़ा भोगती हुई वे मज़ाक़ करती रहीं, हम लोगों के ऊपर और डाक्टर के ऊपर हंसती रहीं, क्योंकि हम बहुत चिन्तित थे। वे प्रायः अन्तिम क्षण तक होश में रहीं और जब बोलना संभव नहीं रह गया—उनके अन्तिम शब्द 'कार्ल' के लिए थे—तब हमारे हाथ अपने हाथों से लेकर मुस्कुराने की कोशिश करती रहीं।

"जहां तक 'मूर' का सम्बन्ध है, सो तो आप जानते हैं कि वे मेटलैण्ड पार्क में अपने शयन-कक्ष से निकलकर अध्ययनकक्ष में अपनी आराम-कुर्सी में जा बैठे थे और वहीं शान्तिपूर्वक गुजर गए थे।

"वह आरामकुर्सी 'जनरल' के पास उनकी मौत के समय तक रही और अब मेरे पास है।

"जब 'मूर' के बारे में लिखियेगा, तब हेलेन को न भूलिएगा (मां को तो आप नहीं ही भूलेंगे, यह मैं जानती हूं)। हेलेन एक प्रकार से वह धुरी थी, जिसके गिर्द घर में सब कुछ घूमता था। वह श्रेष्ठतम और अधिकतम वफ़ादार दोस्त थी। इसलिए 'मूर' के सम्बन्ध में लिखते समय उसे न भूलिएगा!"

• • •

"अब मैं दक्षिण में 'मूर' के आवास के सम्बन्ध में कुछ ब्योरे दूंगी, जैसा कि आपने करने को लिखा है। १८८२ के शुरू में हम दोनों आर्जेन्त्योए में चन्द हफ़्ते जेनी के साथ रहे। मार्च और अप्रैल में 'मूर' अल्जीरिया में थे और मई में मोन्टे-कार्लो, निस और कान्न में। जून के अन्त से जुलाई भर वे फिर जेनी के यहां रहे। तब हेलेन भी आर्जेन्त्योए में थी। वहां से वे लौरा के साथ स्विट्ज़रलैण्ड, वेवे इत्यादि गए। सितम्बर के अन्त या अक्तूबर के शुरू में वे ब्रिटेन लौट आए और सीधे वेन्टनोर चले गए, जहां जॉनी के साथ मैं उनसे मिलने गई।

"अब आपके सवालों के जवाब में चन्द टीपें। मेरे ख़याल में हमारा नन्हा एडगर (मुश) १८४७ में पैदा हुआ था और अप्रैल १८५५ में गुजर गया। नन्हा फ़ॉक्स (हाइनरिख़) पैदा हुआ था ५ नवम्बर, १८४९, को और लगभग दो साल की उम्र में चल बसा था।* मेरी बहन फ़ान्सिस्का

---

*उसका नाम "बारूद षड्यंत्र" के वीर—गायस फ़ॉक्स के नाम पर रखा गया (लीब्कनेख़्त का नोट)। ५ नवम्बर, १६०५ को षड्यन्त्रकारियों ने, जिनमें गायस फ़ॉक्स भी था, पार्लमेंट की इमारत को—दोनों सदनों के सदस्यों तथा राजा समेत—उड़ाने का इरादा किया।—सं०

१८५१ में पैदा हुई थी और लगभग ग्यारह महीने की उम्र में ही मर गई थी।"

* * *

"अब हमारी नेक हेलेन, या 'निम' के बारे में आपके सवालों पर आती हूं। हम उन्हें आख़िरी दिनों में 'निम' पुकारने लगे थे, क्योंकि न जाने क्यों जॉनी लॉन्गे ने उसे छुटपन में ही यह नाम दे दिया था। वह जब ८ या ९ साल की बच्ची थी, तभी हमारी नानी फ़ॉन वेस्टफ़ालेन के घर में नौकर हुई थी और 'मूर', मेरी मां और मामा एडगर फ़ॉन वेस्टफ़ालेन के साथ-साथ बड़ी हुई थी। वृद्ध फ़ॉन वेस्टफ़ालेन दम्पति के लिए सदा उसके मन में बड़ा अनुराग था। वैसा ही अनुराग 'मूर' को भी था। बूढ़े बैरन फ़ॉन वेस्टफ़ालेन, और शेक्सपियर तथा होमर के साहित्य के उनके आश्चर्यजनक ज्ञान की बातें करते वे कभी नहीं अघाते थे। बैरन होमर के पूरे के पूरे गीत आद्योपान्त जबानी सुना सकते थे और शेक्सपियर के अधिकतर नाटक उन्हें जर्मन और अंग्रेज़ी दोनों में याद थे। उनसे भिन्न 'मूर' के पिता, जिनकी 'मूर' बड़ी क़द्र करते थे, सही अर्थ में अठारहवीं शताब्दी के 'फ़्रान्सीसी' थे और जिस तरह बूढ़े वेस्टफ़ालेन को होमर और शेक्सपियर याद थे, उसी तरह उन्हें वाल्टेयर और रूसो याद थे। 'मूर' की आश्चर्यजनक बहुमुखी विद्वत्ता निस्सन्देह इन 'वंशागत' प्रभावों के कारण ही थी।

"ख़ैर, अब हेलेन की बात पर लौटें। मैं नहीं कह सकती कि वह मेरे माता-पिता के पास उनके पेरिस जाने (जो उनकी शादी के शीघ्र ही बाद हुआ) के बाद आयी या उससे पहले। मैं केवल इतना ही कह सकती हूं कि नानी ने इस लड़की को 'जो कुछ वे बेहतरीन भेज सकती थीं' उसी के रूप में 'वफ़ादार और स्नेहमयी' हेलेन को मां के पास भेजा। और वफ़ादार और स्नेहमयी हेलेन मेरे माता-पिता के साथ बनी रही। बाद में उसकी छोटी बहन मेरिआन्न भी उसके पास आ गई। इसका तो आपको शायद ही स्मरण हो, क्योंकि यह आपके बाद की बात है..."

मार्क्स की समाधि

वास्तव में उसे मार्क्स परिवार की समाधि कहना चाहिए। वह उत्तरी लन्दन के हाईगेट क़ब्रिस्तान में है। यह कब्रिस्तान एक पहाड़ी पर है, जहां से पूरे विराट नगर की झांकी मिलती है...

हम सामाजिक-जनवादी पीर-पैग़म्बर नहीं मानते और उनकी समाधियों का भी हमारे लिए कोई अस्तित्व नहीं है। लेकिन करोड़ों लोग साभार और ससम्मान उस व्यक्ति को याद करते हैं, जो उत्तरी लन्दन के उस क़ब्रिस्तान में दफ़न है और हज़ारों साल बाद, जब मजदूर वर्ग की आज़ादी की तमन्ना के रास्ते में आनेवाली बर्बरता और तंगदिली अतीत की अविश्वसनीय कथाएं बन जाएंगी, तब आज़ाद और कृतज्ञ लोग इस क़ब्र के पास नंगे सिर खड़े होकर अपने बच्चों से कहेंगे: "यहां दफ़न हैं कार्ल मार्क्स।"

यहां दफ़न हैं कार्ल मार्क्स और उनका परिवार। संगमरमर की समाधि के सिरे पर सिरपेंचे की लता से आच्छादित संगमरमर की एक सादी पटरी तकिए की तरह पड़ी है, जिस पर खुदा है:
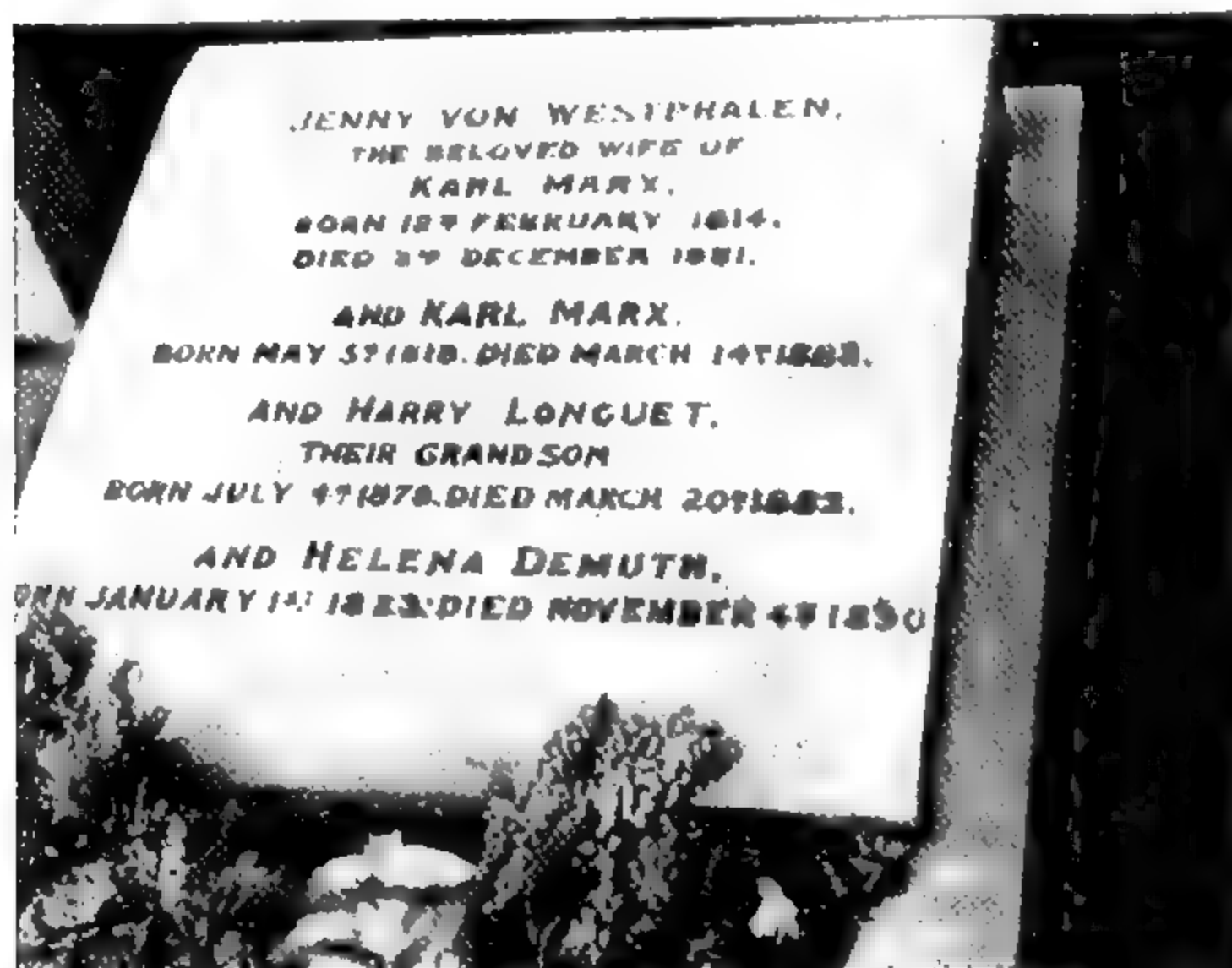
पारिवारिक समाधि में परिवार के सभी मृत व्यक्ति नहीं दफ़्न हैं। लन्दन में मरे तीन बच्चे लन्दन के दूसरे क़ब्रिस्तानों में दफ़्न हैं: एडगर (मुश) तो निश्चय ही, और दूसरे दो शायद टोटेनहम कोर्ट रोड पर व्हाइटफ़ील्ड चैपेल के क़ब्रिस्तान में। मार्क्स की चहेती बेटी जेनी पेरिस के पास आर्जेन्त्योए में दफ़्न हैं, जहां उन्हें मौत ने उनके फूलते-फलते परिवार से छीन लिया था।

यद्यपि सभी मृत बच्चों और नातियों को पारिवारिक समाधि में जगह नहीं मिली फिर भी "वफ़ादार हेलेन" को, हेलेन देमुत को, मिल गई, जो ख़ून का रिश्ता न रखते हुए भी परिवार की सदस्या थी।

श्रीमती मार्क्स और उनके बाद ख़ुद मार्क्स ने पहले ही यह फ़ैसला कर लिया था कि उसे पारिवारिक समाधि में ही दफ़नाया जायेगा। एंगेल्स ने, जो हेलेन के समान ही वफ़ादार थे, उस कर्त्तव्य की पूर्त्ति जीवित बचे बच्चों के साथ मिलकर की, जिसे वे ख़ुद ही अपनी मरज़ी से अंजाम देते।

मार्क्स की सबसे छोटी बेटी द्वारा लिखित और उद्धृत पत्र से प्रगट होता है कि मार्क्स के बच्चे हेलेन को कितना मानते थे, उसे कितना

जेनी फ़ॉन वेस्टफ़ालेन

कार्ल मार्क्स की

प्रिय पत्नी

जन्म १२ फ़रवरी १८१४

मृत्यु २ दिसंबर १८८१

और कार्ल मार्क्स

जन्म ५ मई १८१८, मृत्यु १४ मार्च १८८३

और हैरी लॉन्गे

उनका नाती

जन्म ४ जुलाई १८७८, मृत्यु २० मार्च १८८३

और हेलेन देमुत

जन्म १ जनवरी १८२३, मृत्यु ४ नवंबर १८९०

स्नेह करते थे और कितनी निष्ठा के साथ उसकी स्मृति का सम्मान करते थे।

मैं अपनी आख़िरी लन्दन-यात्रा से लौटता हुआ पेरिस से गुज़रा और द्रावेइ गया, जहां लफ़ार्ग और उनकी पत्नी लौरा मार्क्स की एक सुन्दर बंगलिया है। वहां लौरा और मैंने लन्दन की यादों में ग़ोते लगाए और मैंने इस छोटी-सी किताब के लिखने का इरादा बताया। लौरा ने मुझसे ठीक वही बात कही, जो ऊपर उद्धृत किए गए पत्र में तुस्सी ने लिखी और बाद में ज़बानी दुहराई थी: "हेलेन को न भूलिएगा।"

नहीं, मैं हेलेन को नहीं भूला हूं और नहीं भूलूंगा। वह चालीस साल तक मेरी मित्र रही और लन्दन के उत्प्रवासी जीवन में अनेक बार मेरा "भाग्य" भी बनी। कितनी ही बार उसने मुझे चन्द पेनी देकर उस समय सहायता की, जब मेरी जेब बिलकुल ख़ाली होती और मार्क्स के घर में बहुत तंगी नहीं होती—क्योंकि तब तो हेलेन के पास देने को कुछ हो ही नहीं सकता था। और मेरी दर्ज़ीगीरी की कला के जवाब दे जाने पर उसने कितनी ही बार किसी ऐसे आवश्यक वस्त्र की मरम्मत करके उसे चन्द हफ़्ते और चलने योग्य बना दिया था, जिसके बदले नया वस्त्र लेना आर्थिक कारणों से मेरे लिए किसी प्रकार संभव नहीं था।

जब मैं हेलेन से पहली बार मिला, तब वह २७ साल की थी। यह सच है कि वह सुन्दरी नहीं थी, लेकिन अपने लम्बे, सुघड़ शरीर और ख़ुशनुमा चेहरे-मोहरे की बदौलत आकर्षक थी। उसे चाहनेवालों की कमी नहीं थी और अनेक बार ऐसे अवसर आए जब वह अच्छा वर प्राप्त कर सकती थी। लेकिन किसी भी प्रकार की बाध्यता न होते हुए भी उसके अनुरक्त मन के लिए यह स्वाभाविक ही था कि वह 'मूर' के साथ, उनकी पत्नी और उनके बच्चों के साथ बनी रहती।

वह उनके साथ ही बनी रही और उसकी जवानी के साल गुज़र गए। वह अभावों और कठिनाइयों में, दुख और सुख में उनके ही साथ रही। उसने उस समय तक विश्राम नहीं जाना, जब तक मौत ने उन लोगों को नहीं छीन लिया, जिनके साथ उसने अपना भविष्य बांध रखा था। विश्राम मिला उसे एंगेल्स के घर और वहीं उसका अन्त हुआ। अन्तिम घड़ी तक उसने कभी अपनी चिन्ता नहीं की। आज वह पारिवारिक समाधि में दफ़्न है।

* * *

हमारे मित्र मोटेल्लेर, उर्फ़ "लाल डाकमुंशी", जो अब हाईगेट के निकट ही हैम्पस्टेड में रहते हैं, मार्क्स की समाधि के बारे में यों लिखते हैं :

"मार्क्स की समाधि सफ़ेद संगमरमर की है। काले अक्षरों में नाम और तारीख़ों वाली पटरी भी उसी पत्थर की है। दूब, जिसे मैं स्विट्ज़रलैण्ड से लाया था, सिरपेंचे और गुलाब के चन्द छोटे-छोटे पौधे, बजरियों के बीच से उगी हुई घास—समाधि की बस यही मामूली सजावट है। मैं आम तौर से हफ़्ते में दो बार हाईगेट के क़ब्रिस्तान के पास से गुज़रता हूं और अगर समाधि पर घास बहुत घनी हो जाती है, तो उसे साफ़ कर देता हूं। कभी-कभी पानी देना भी ज़रूरी होता है, ख़ास तौर से तब, जब गर्मियां पिछली दो गर्मियों जैसी होती हैं (इस साल,जबकि शेष यूरोप में इतनी बारिश हुई, ब्रिटेन में ऐसा सूखा पड़ा कि वैसा सूखा शायद ही किसी को याद हो और पार्कों तक में घास पूरी तरह सूख गई)। लेसनर की मदद से भी मैं समाधि को ताप की तबाही से बचाने में असमर्थ रहा और हमें एवेलिंग परिवार की सहमति से, जो बहुत दूर रहने के कारण वहां विरल ही जा पाते हैं, समाधि की निगहबानी क़ब्रिस्तान के रखवाले को सौंपनी पड़ी।"

१८

पुरानी जगहों पर

इस साल* की मई में अपनी ब्रिटेन यात्रा के समय मैंने यह फ़ैसला किया कि आन्दोलन सम्बन्धी अपने कर्त्तव्य की पूर्त्ति के बाद जर्मनी वापस लौटने से पहले शहर के उस हिस्से में जाऊंगा, जहां हम उत्प्रवास-काल में रहे थे और विशेष रूप से उन जगहों को देखूंगा, जहां मार्क्स परिवार रह चुका था।

८ जून, सोमवार, को हम (मैं, एल्योनोरा और उनके पति एवेलिंग) साइडेनहैम के लिए रवाना हुए, ताकि वहां से रेलगाड़ी, घोड़ागाड़ी और

---

*१८९६।—सं०

बस के ज़रिए सोहो स्क्वेयर के पास टोटेनहैम कोर्ट रोड के नुक्कड़ पर पहुंच सकें। वहां से हमने अपनी खोज शुरू की। हमने त्राय की खुदाई सम्पन्न करनेवाले श्लीमान की भांति ही व्यवस्थित ढंग से यह काम शुरू किया। श्लीमान त्राय को उसी रूप में खोद निकालना चाहते थे, जैसा वह प्रियाम और हेक्टोर के ज़माने में था और इसी तरह हम पांचवीं दशाब्दी के अन्त से लेकर छठी और सातवीं दशाब्दी तक के उत्प्रवासियों वाले लन्दन को "खोद" निकालना चाहते थे।

तो हम सोहो स्क्वेयर और लिसेस्टर स्क्वेयर से बिलकुल लगे हुए टोटेनहैम कोर्ट रोड के नुक्कड़ पर पहुंचे, जहां जर्मन और फ़ान्सीसी उत्प्रवासी अपनी बेसहारगी के कारण सूत्रबद्ध होकर संकेन्द्रित हो गये थे।

पहले हम सोहो स्क्वेयर पहुंचे। कुछ भी बदला नहीं दिखाई पड़ा। वे ही मकान थे और उनपर धुएं की वही कालिख छाई हुई थी। यहां तक कि साइनबोर्डों पर कई फ़र्मों के वही पुराने नाम भी क़ायम थे... जैसे हम सपना देख रहे हों। जैसे मेरे सामने जवानी के दिन आ खड़े हुए, ४०—४५ साल की मुद्दत हवा के झोंके से कुहासे की तरह छंट गई। लगा कि मैं, २५ साल का युवक उत्प्रवासी स्क्वेयर को पार करके एक परिचित कूचे से होकर ओल्ड काम्पटन स्ट्रीट की ओर जा रहा हूं। पुराना मॉडल लॉजिंग-हाउस, जिसमें कोई डेढ़ पीढ़ी पहले हमने बड़ी मस्त और साथ ही दुष्कर जिन्दगी बितायी थी, ज्यों का त्यों मौजूद था। मैं तो "लाल वोल्फ़" के अचानक पास से गुजरने या कोनराद श्राम्म के आकर सामने खड़े हो जाने की भी आशा करने लगा। सब कुछ ऐसा था, जैसे कि मैं अभी कल ही वहां से गया होऊं। कितनी आश्चर्यजनक बात है कि लन्दन में मकानों के उस आवास-समुद्र में ऐसी सड़कें और ऐसे महल्ले हैं, जहां समय के गुजरने का आभास नहीं होता, जो पछाड़ खाती तरंगों से अक्षत रह जाते हैं...

सो, हम आगे बढ़े। सीधे आगे, चर्च स्ट्रीट तक। वह रहा चर्च, अब भी वैसा ही जैसा पहले था और उसके सामने का अपरिहार्य मदिरालय, वह भी नितान्त अपरिवर्तित... और आगे की तरफ़ दो खिड़कियों वाले वे तिमंजिले मकान, उनमें भी कोई तबदीली नहीं। इसी तरह नंबर १४ भी अपरिवर्तित था, जहां मैंने आठ साल गुजारे थे।

हम पीछे लौटते हैं और मोड़ से घूम जाते हैं। यह मैक्लसफ़ील्ड स्ट्रीट है। लेकिन नंबर ६ कहां है? उसे यहीं होना चाहिए था। लेकिन नहीं, उसकी तलाश व्यर्थ है, क्योंकि एक नई सड़क उस मकान को निगल गई है। वह मकान अब नहीं है, जिसमें एंगेल्स लन्दन के उत्प्रवासी जीवन के प्रारंभ से उस समय तक रहे थे, जब तक उनके अनुशासनप्रिय पिता ने पारिवारिक कारोबार की देखभाल के लिए उन्हें मैन्चेस्टर नहीं भेज दिया था।

हम और आगे बढ़ते हैं। यह है डीन स्ट्रीट। लेकिन वह मकान कहां है, जिसमें मार्क्स अपने परिवार के साथ बरसों रहे थे? मैं एक बार पहले भी उसकी असफल खोज कर चुका था। बाद में मुझे एंगेल्स ने बताया था कि वहां मकानों के नम्बर बदल गए हैं। यहां एक मकान से दूसरे मकान में भेद कर सकना उतना ही मुश्किल है, जितना दो अंडों का अन्तर पहचानना और पहले की लन्दन-यात्राओं में मुझे लम्बी तलाश के लिए समय नहीं मिला था। हेलेन भी, जिससे मैंने यह बात उसकी मौत से कुछ ही पहले कही, निश्चय के साथ नहीं कह सकती थी कि वह मकान कौनसा था। ज़ाहिर है कि तुस्सी को तो यह याद ही कैसे रह सकता था, जो उस समय केवल साल भर की थी, जब परिवार डीन स्ट्रीट से हटकर केन्टिश-टाउन में आ बसा था।

तलाश में व्यवस्थित ढंग से आगे बढ़ने की ज़रूरत थी। उस सड़क पर बहुत कम तबदीली पैदा हुई थी। ओल्ड काम्पटन स्ट्रीट के सिरे पर दाहिने बाजू के कई मकानों के बीच हम पसोपेश में पड़ गए। ओल्ड काम्पटन स्ट्रीट के नज़दीक दूसरी दिशा में स्थित एक रंगशाला ही मेरे लिए एक पक्की निशानी थी। उन दिनों कोई कुमारी केली उसकी मालिकिन थीं। लेकिन उसे तोड़कर नवनिर्मित किया जा चुका था और अब रॉयलटी थिएटर कहलाता था—पहले की अपेक्षा कहीं अधिक बड़ा और विस्तृत। चूंकि मुझे यह नहीं मालूम था कि उसे दाहिनी तरफ़ या बाईं तरफ़ बढ़ाया गया है, इसलिए मैं अपनी निशानीवाली जगह को सुनिश्चित नहीं कर सकता था। अन्त में मैंने यह फ़ैसला किया कि दो ही मकान हैं जिनमें से एक को चुनना होगा। मकान को बाहर से देखकर अब काम नहीं चल सकता था। मुझे अन्दर जाकर देखने की ज़रूरत थी। उन दोनों मकानों

में से एक का दरवाज़ा खुला था और मैं अन्दर दाखिल हो गया। मुझे ज़ीने जाने-पहचाने प्रतीत हुए और जहां तक दरवाज़े से देखकर अनुमान लगाया जा सकता था, मकान का पूरा ढांचा भी मेरी याद से मेल खाता हुआ लगा। लेकिन लन्दन के अधिकतर मकान इसी तरह सिलसिलेवार और एक ही सांचे में ढले हुए हैं। उनमें कोई निजी विशेषताएं नहीं, कोई मौलिकता नहीं। मैं पहली मंज़िल पर गया, जहां मुझे कुछ भी परिचित नहीं लगा, कुछ भी पहचान में नहीं आया।

इस बीच मार्क्स की पुत्री और उनके पति इसी सड़क पर और छानबीन कर चुके थे। मैंने उन्हें अपनी छानबीन का अनिश्चित नतीजा बताया।

पास के मकान पर २८ नम्बर लिखा था। क्या मैं उसके अन्दर जाऊं? अगर मैं भूल नहीं करता, तो मार्क्स के मकान का यही नम्बर था। हां! यही नम्बर था, क्योंकि मुझे फ़ौरन याद आया कि लन्दन की अपनी रिहाइश के शुरू में ही मैंने उस नम्बर को एक स्मृति-सहायक कौशल द्वारा याद कर लिया था—वह मेरे मकान के नम्बर का दुगुना था। तो, एंगेल्स ने शायद यह कहने में भूल की थी कि वहां मकानों के नम्बर बदल गए हैं। यह भी हो सकता है कि ऐसा महज़ उनका अन्दाज़ ही हो।

हमने दरवाज़े की घंटी बजाई। एक युवती ने किवाड़ खोले। हमने पूछा कि क्या आपको पहले के किराएदारों और मकान-मालिक की याद है।

"जी हां, लेकिन केवल पिछले नौ साल के ही।"

"क्या मैं अन्दर जाकर मकान को देख सकता हूं?"

"अवश्य!"

और वह स्वयं मुझे ऊपर ले चली।

सीढ़ियां वही थीं। सारी बनावट भी वही थी और मैं ज्यों-ज्यों आगे बढ़ता गया, त्यों-त्यों हर चीज़ अधिकाधिक परिचित जान पड़ने लगी। पीछे के कमरे की सीढ़ियां—सब कुछ जाना-पहचाना!

दुर्भाग्य से दूसरी मंज़िल के कमरे बन्द थे, जिनमें मार्क्स रहे थे। लेकिन जहां तक मुझे याद पड़ता था, सब कुछ बिलकुल सटीक मिलता-जुलता था। मेरे सन्देह एक-एक करके दूर होते गए और अन्त में मुझे पूरा यक़ीन हो गया कि यहीं मार्क्स रहते थे।

जब मैं नीचे आया, तब मैंने पुकारकर कहा : "मैंने पा लिया! यही मकान है, यही!"

यही वह मकान था, जिसमें मैं हज़ारों बार जा चुका था, जिसमें उत्प्रवास के दुख-दैन्य और किसी भी अपवाद-प्रसार से न हिचकनेवाले शत्रुओं की घृणा से अभिभूत, पीड़ित एवं क्लान्त मार्क्स ने अपनी 'अठारहवीं ब्रूमेर' और 'श्री फ़ोग्ट' नामक कृतियां और *«New York Tribune»* के लिए अपने वे संवाद-पत्र लिखे थे, जो अब 'क्रान्ति और प्रतिक्रान्ति' नामक पुस्तक में संग्रहीत हैं। यहीं उन्होंने 'पूंजी' लिखने की तैयारी का प्रकाण्ड कार्य सम्पन्न किया था...

डीन स्ट्रीट के मकान से रवाना होने के पहले मैं यह बताना चाहता हूं कि १८४६ के अन्त में लन्दन आने पर मार्क्स पहले कैम्बरवेल में रहे। वहां मकान-मालिक के दिवालिएपन के कारण कई अप्रिय प्रसंग सामने आए, क्योंकि ब्रिटिश क़ानून के अनुसार लेनदार को अपने क़र्ज़ की वसूली के लिए किराएदारों का फ़र्नीचर जमानत के रूप में ज़ब्त कर लेने का अधिकार है। उसके बाद अल्पकाल तक लिसेस्टर स्क्वेयर के पास एक पारिवारिक होटल में रहकर मार्क्स परिवार मई १८५० में, प्रायः उसी समय जबकि मैं लन्दन आया था, डीन स्ट्रीट पर चला गया था। वे लोग वहां कोई सात साल रहे और उसके बाद केन्टिश-टाउन चले गए, जो उस समय अभी लन्दन का अपेक्षाकृत देहाती इलाक़ा था।

अस्तु, अब डीन स्ट्रीट पर हमारे देखने को कुछ भी नहीं रह गया था। इसलिए हम टोटेनहैम कोर्ट रोड के नुक्कड़ पर लौटे और केन्टिश-टाउन के लिए बस पर सवार हो गए।

पर टोटेनहैम कोर्ट रोड भी कुछ अधिक नहीं बदला था। अनेक पुरानी दुकानें और कारोबारी फ़र्में अब भी वहां मौजूद थीं, जिससे सड़क का रूप प्रायः पहले जैसा ही था। बाएं बाज़ू पर व्हाइटफ़ील्ड-चैपेल ज्यों का त्यों था, हां केवल क़ब्रिस्तान अब बन्द कर दिया गया था। वहीं बेचारा "मुश" दफ़न है और अगर मैं ग़लती नहीं करता तो वे दूसरे दोनों बच्चे भी दफ़न हैं, जो बहुत कम उम्र में मर गए थे।

हम केन्टिश-टाउन के नज़दीक पहुंच गए... वह रहा मदिरालय, जो परिचित-सा लगा और वह सचमुच पुराना 'रेड कैप' ही निकला...

हम वहां बस से उतरकर माल्डन रोड की ओर मुड़ गए। वहां मुझे सब कुछ अपना-सा लगा, लेकिन बहुत देर तक नहीं। शीघ्र ही वे सड़कें दिखाई पड़ीं, जिनका मेरे लन्दन से विदा होते समय अस्तित्व ही नहीं था। जहां पहले मैदान थे, वहां अब मकान बन गए हैं।

अकस्मात तुस्सी ने एक मकान की ओर संकेत किया, जो लन्दन के उपान्तों की दृष्टि से अपेक्षाकृत बड़ा था। "बस, वही है!"

वास्तव में वही मकान था, जिसमें ग्रैफ़्टन टिरॅस नामक सड़क पर मार्क्स मरने से १० साल पहले तक रहे थे। और वह रहा बारजा, जहां से सख़्त चेचक से नीरोग होते समय श्रीमती मार्क्स अपनी तीन छोटी बच्चियों से बातें किया करती थीं, जो उनकी बीमारी के दौरान मेरे साथ रह रही थीं। शुरू-शुरू में वे कमज़ोरी के कारण केवल फुसफुसाकर ही बोल पाती थीं, लेकिन जब मैं बच्चियों को बारजे के निकट लाता था, तो उनका चेहरा किस प्रकार ख़ुशी से चमक उठता था! मकान का नम्बर तब ९* था और अब ४६ है।

वहां से थोड़ी ही दूर, मेटलैण्ड पार्क रोड पर, नम्बर ४१ है। वहीं मार्क्स की मृत्यु हुई थी। उनका परिवार उस मकान में १८७२ या १८७३ में गया था। तब दोनों बड़ी लड़कियों की शादी के बाद पहला मकान उनके लिए बहुत बड़ा हो गया था।**

हम चुपचाप चलते हुए हैम्पस्टेड हीथ पहुंचे, जहां बहुत कुछ बदल गया है, फिर भी उसका पुराना रूप नितान्त समाप्त नहीं हुआ है। हमने पुरानी जगहों की तलाश की और अन्त में परिचित भटियारख़ाने 'जैक स्ट्रॉ'

---

*तुस्सी का ख़याल है कि बिलकुल शुरू में, या कम से कम जब उसमें मार्क्स परिवार रहता था, तब उस मकान का नम्बर १ था। मेरी समझ में वे ग़लती पर हैं। बहरहाल, सचाई का पता शीघ्र ही लग जाएगा। (लीब्कनेख़्त का नोट)

**मार्क्स अक्तूबर १८५६ से अप्रैल १८६४ तक ग्रैफ़्टन टिरॅस के ९ नम्बर मकान में, अप्रैल १८६४ से मार्च १८७५ तक मोडेना विलास के १ नम्बर, मेटलैण्ड पार्क रोड, में और मार्च १८७५ से अपनी मौत के समय तक नम्बर ४१, मेटलैण्ड पार्क रोड, में रहे।—सं०
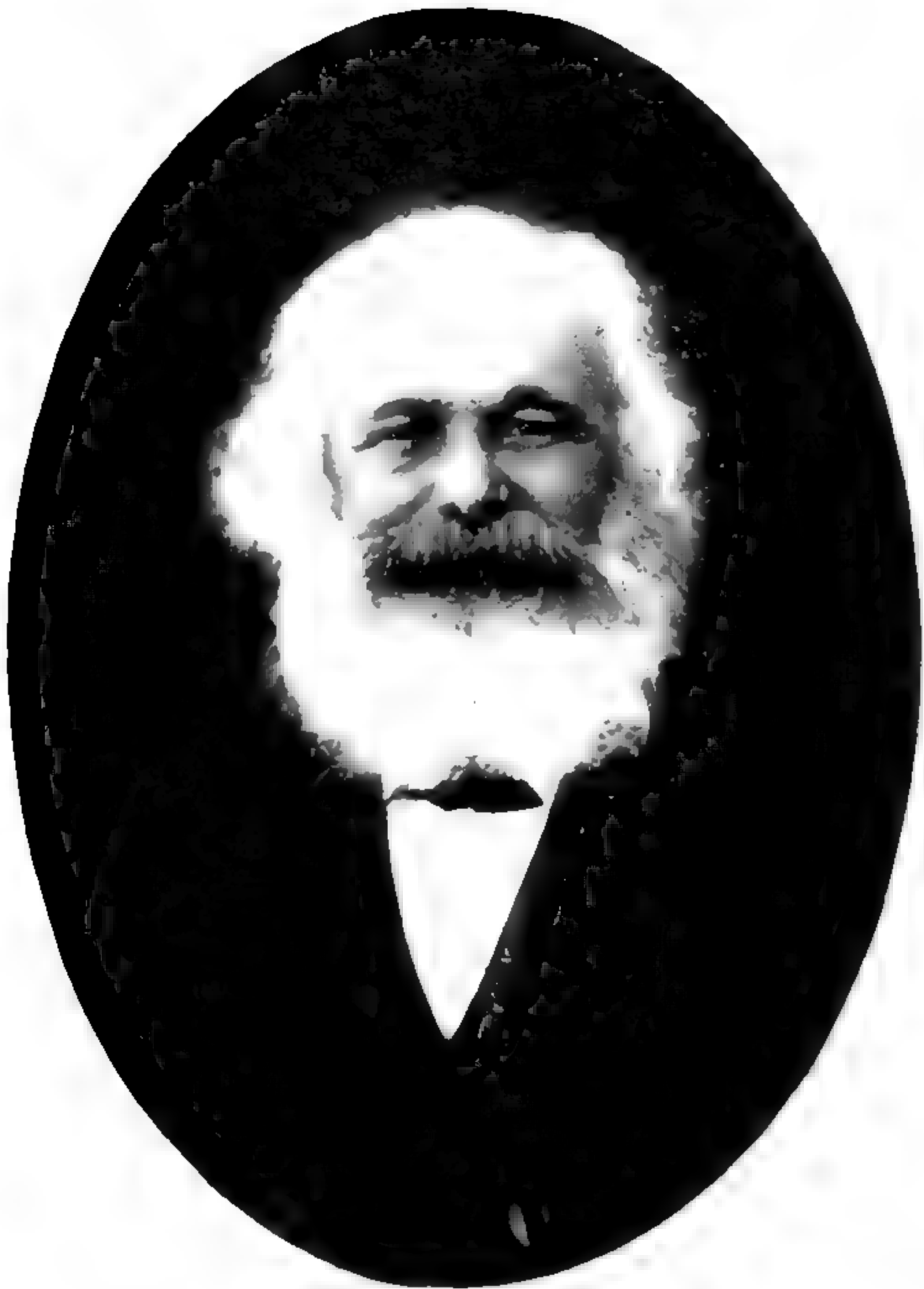
कार्ल मार्क्स, १८८२
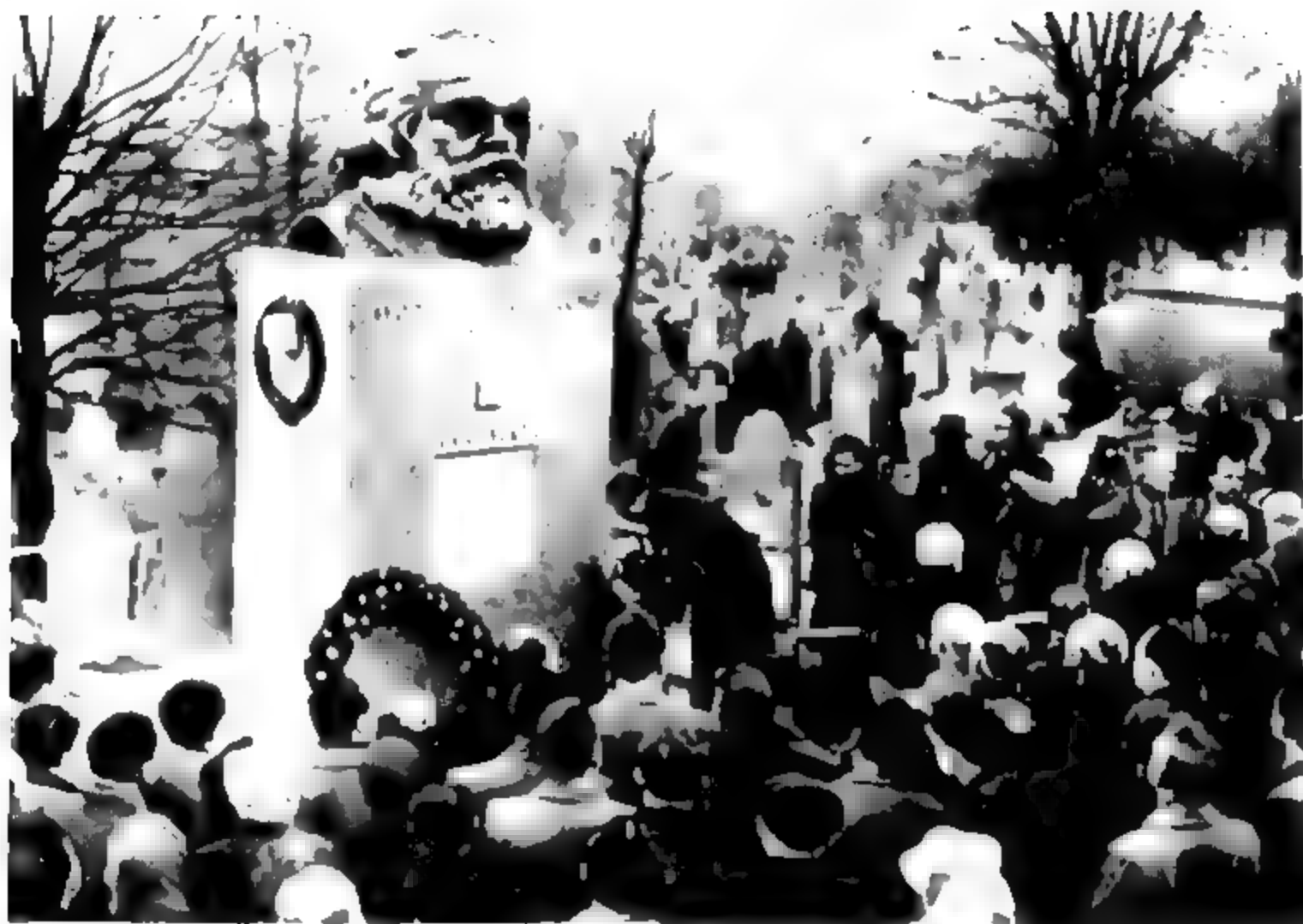
मार्क्स की समाधि

में नाश्ता-पानी किया, ताकि लम्बी और दुष्कर वापसी यात्रा के लिए शक्ति-संचय कर सकें।

उन पुराने दिनों में हम कितना अक्सर 'जैक स्ट्रॉ' में जाते थे! हम जिस कमरे में बैठे, ठीक उसी कमरे में मैं मार्क्स, श्रीमती मार्क्स, उनके बच्चों, हेलेन तथा दूसरों के साथ दर्जनों बार बैठ चुका था।

तब से अब तक बहुत बहुत ज़माना गुज़र चुका है...

विल्हेल्म लीब्कनेख़्त

एंगेल्स की स्मृति में*

फ़ेडरिक एंगेल्स की मेधा दीप्त तथा निर्मल रोमानी अथवा भावावेशी धुंध से मुक्त थी। वे व्यक्तियों और वस्तुओं को रंगीन अथवा धूमिल चश्मे से नहीं, बल्कि ज्योतित एवं निरभ्र दृष्टि से देखते थे। उनकी निगाह कभी भी सतही नहीं रही, बल्कि हमेशा अधिक से अधिक गहरी उतरती हुई तल तक जाती थी। ऐसी उजली, साफ़ दृष्टि, शब्द के सच्चे अर्थ में वह "स्पष्टदर्शिता", प्रकृति-माता से विरलों को ही जन्मत: प्राप्त वह सूक्ष्मग्राहिता एंगेल्स की तात्त्विक विशेषता थी और उनके साथ अपनी पहली ही मुलाक़ात में मैं इस विशेषता से प्रभावित हुआ...

वह मुलाक़ात नीली जेनेवा झील के किनारे १८४९ की गर्मियों के अन्त में हुई थी। वहां हम लोगों ने राइख़ संविधान आन्दोलन की असफलता के बाद कई उत्प्रवासी बस्तियां बसा ली थीं...

उससे पहले मुझे सभी तरह के अनेक "महापुरुषों", जैसे कि रूगे, हाइन्त्सेन, जूलियस फ़्रोएबेल, स्त्रूवे तथा बादेनी और सैक्सनी "क्रान्तियों" के अन्य विभिन्न "नेताओं" से निजी तौर पर परिचित होने का अवसर मिल चुका था। लेकिन उनके साथ मेरा परिचय जितना ही घनिष्ठतर होता गया, उतना ही उनका यशोप्रभास मेरी दृष्टि में क्षीणतर होता गया और वे मुझे अधिकाधिक लघुतर प्रतीत होने लगे।

---

* १८९७ में प्रकाशित।—सं०

वातावरण जितना ही अधिक धूमिल होता है, उसमें व्यक्ति और वस्तुएं उतनी ही बड़ी लगती हैं। फ़ेडरिक एंगेल्स में यह विशेषता थी कि धुंधलका उनकी स्पष्ट दृष्टि के सामने तिरोहित हो जाता था और व्यक्ति तथा वस्तुएं अपने वास्तविक रूप में दिखलाई पड़ने लगती थीं। उस तीक्ष्ण दृष्टि और तज्जनित मर्मभेदी विवेचन से शुरू में मुझे परेशानी होती थी, कभी-कभी ठेस तक लगती थी। यह सच है कि मेरे मन पर राइख़ संविधान आन्दोलन के "सूरमाओं" की छाप एंगेल्स की अपेक्षा बेहतर नहीं पड़ी थी। फिर भी शुरू में मुझे ऐसा प्रतीत होता था कि एंगेल्स उस आन्दोलन का मूल्य कम करके आंकते थे, जिसमें अनेक मूल्यवान शक्तियां तथा बहुतेरा आत्मोत्सर्गी उत्साह निहित था।

फिर भी "दक्षिणी जर्मन भावुकता" के अवशेषों के कारण – यद्यपि मैं दक्षिणी जर्मनी का नहीं हूं – जो मुझमें उस समय तक मौजूद थे और जिनका बाद को ब्रिटेन में नाम-निशान भी बाकी नहीं रहा, व्यक्तियों तथा वस्तुओं के सम्बन्ध में हमारी सहमति में, चाहे तत्काल न सही, बाधा नहीं पड़ी। मुझे यह समझने में भी देर नहीं लगी कि एंगेल्स के पास, जिनकी 'इंगलैंड के मज़दूर वर्ग की स्थिति' सम्बन्धी पुस्तक मैं बहुत पहले ही पढ़ चुका था और जिनके ज्ञान की प्रचुरता तथा सर्वांगीनता को मैं उनके निजी संसर्ग में आने के फलस्वरूप सराहने लगा था, अपने मत-मण्डन के लिए सदा ही ठोस और निश्चित आधार होते हैं।

मैं उनका बहुत आदर करता था, वे बहुत महत्त्वपूर्ण काम कर चुके थे, मुझसे पांच वर्ष बड़े थे, और इस उम्र में पांच साल पूरी सदी के बराबर होते हैं।

जल्दी ही मेरी नज़र में यह बात भी आ गई कि एंगेल्स फ़ौजी मामलों के भी बहुत अच्छे जानकार हैं। उनसे बातचीत के दौरान मुझे पता चला कि हंगरी के क्रान्तिकारी युद्ध पर *«Neue Rheinische Zeitung»* में प्रकाशित लेख, जिनके लिखने का श्रेय हंगरी के किसी उच्च सैन्य-अधिकारी को इसलिए दिया जाता था कि उनमें लिखी गई बातें सदा ही सही साबित हुई थीं, एंगेल्स ने लिखे थे। फिर भी, जैसा कि उन्होंने ख़ुद मुझसे हंसते हुए कहा, उनके पास सभी दूसरे अख़बारों में उपलब्ध सामग्री के सिवा और कोई सामग्री नहीं थी, जो प्रायः एकमात्र आस्ट्रियाई सरकार

से प्राप्त हुई थी और वह सरकार बेशर्मी के साथ झूठ बोलती थी। उसने हंगरी में सदा "विजयें प्राप्त कीं"–बिलकुल उसी तरह, जिस तरह आज स्पेनी सरकार क्यूबा में*। लेकिन एंगेल्स ने यहां अपनी स्पष्टदर्शिता से काम लिया। उन्होंने बात-फ़रोशी पर कोई ध्यान नहीं दिया। उनके दिमाग़ में एक्स-रे किरणें पहले ही मौजूद थीं और जैसा कि सभी जानते हैं, इन किरणों में वर्तन का गुण नहीं होता और वे विकृत तस्वीर नहीं उतारतीं। उनकी सहायता से उन्होंने सत्य-स्थापना के लिए जो कुछ बेकार था उसे छोड़ दिया और किसी भी धुंध अथवा छलावे से पथभ्रान्त न होकर, जो कुछ तात्त्विक था उसे, यानी तथ्य को, आंखों से ओझल नहीं होने दिया। आस्ट्रियाई सरकार अपने म्युंख़ाउज़ेनी एलानों में सत्य की चाहे कितनी भी हत्या क्यों नहीं करती थी, उसे कुछ तथ्यों का, जैसे कि उन स्थानों के नामों का जहां मुठभेड़ें होती थीं, जहां संग्राम से पहले और उसके बाद फ़ौजें होती थीं, मुठभेड़ों के समय का, फ़ौजों के गमन-आगमन इत्यादि का ज़िक्र भी करना ही पड़ता था। और इन छोटे-छोटे तथ्यों से हमारे फ़ेडरिक अपनी दीप्त तथा स्पष्ट दृष्टि द्वारा रणक्षेत्र की घटनाओं का यथार्थ चित्र प्रस्तुत कर देते थे। रणक्षेत्र के अच्छे नक़्शे का उपयोग करके वे तारीख़ों और स्थानों से गणितीय सटीकता के साथ यह निष्कर्ष निकालने में समर्थ थे कि आस्ट्रियाई "विजेता" अधिकाधिक पीछे धकेले जा रहे हैं और "पराजित" हंगरीवाले अधिकाधिक आगे बढ़ते जा रहे हैं। उनकी गणना इतनी सटीक थी कि जिस दिन आस्ट्रियाई सेना ने काग़ज़ पर हंगरीवालों को पूरी तरह से पराजित कर दिया था, उसके दूसरे ही दिन वह हंगरी से पूर्णतः अस्तव्यस्त हालत में बाहर निकाल दी गई...

प्रसंगवश कहें कि एंगेल्स मानो सैनिक बनने के लिए ही पैदा हुए थे: स्पष्ट दृष्टि, शीघ्रग्राहिता और सूक्ष्मतम परिस्थिति को समझ लेने की क्षमता, अविलम्ब निर्णय-क्षमता तथा अखंड्य स्थिरचित्तता। उन्होंने बाद में फ़ौजी प्रश्नों पर कई बहुत बढ़िया निबन्ध लिखे और यद्यपि वे अज्ञात नाम से लिखे गए थे, फिर भी उन्हें प्रथम कोटि के फ़ौजी विशेषज्ञों ने

---

*यहां क्यूबा के १८६५ के जन-विद्रोह की ओर संकेत है जिसे स्पेनी सरकार दबाने में असमर्थ रही थी। तब क्यूबा स्पेन का उपनिवेश था।–सं०

सराहा, जिन्हें इस बात का कोई आभास नहीं था कि उनका गुमनाम लेखक अधिकतम "संदिग्ध" बागियों में से है...

लन्दन में हम उन्हें मज़ाक में "जनरल" कहा करते थे और अगर उनके जीवन-काल में कोई दूसरी क्रान्ति हुई होती, तो एंगेल्स के रूप में हमारे पास अपना कार्नो*, – सेनाओं तथा विजयों का संगठनकर्त्ता, सैनिक मस्तिष्क होता...

स्विट्ज़रलैण्ड में कुछ समय तक एंगेल्स के साथ रहने के बाद मैं उनसे अगले साल लन्दन में मिला, जहां वे पहले ही पहुंच चुके थे। उसके बाद से मैं उनके निरन्तर सम्पर्क में रहा। वास्तव में वे लन्दन से, जहां मैं रहता था, १८५० में अपने पिता के व्यवसाय-केन्द्र में मैंचेस्टर चले गए, क्योंकि राइन के अन्य कारख़ानेदारों की तरह उनके पिता के कारोबार की भी ब्रिटेन में एक शाखा थी। लेकिन एंगेल्स लन्दन में हम लोगों से मिलने अक्सर आते रहते थे और कई बार वहां लम्बे अर्से तक ठहर जाते थे। वे मार्क्स को प्रायः रोज़ पत्र भी लिखते थे और मार्क्स उनके पत्रों के वे अंश जो बिलकुल निजी नहीं होते थे, हमें, यानी अक्सर बदलते रहनेवाली "मार्क्स-मण्डली" के अधिक विश्वासपात्र सदस्यों को, नियमित रूप से बताते रहते थे।

यह सच है कि एंगेल्स के साथ मेरे सम्बन्ध कभी भी मार्क्स के समान घनिष्ठ नहीं रहे थे। मार्क्स के घर तो मैं बारह साल तक प्रायः रोज़ का मेहमान रहा, प्रायः परिवार का सदस्य बन गया था।

मार्क्स की मौत ने मुझे एंगेल्स के और नज़दीक कर दिया, जिनके सिर मार्क्स का स्थान लेने और उनकी वसीयत की तामील करने का दोहरा कार्यभार आ पड़ा था।

महज़ तभी उन्होंने जो उन्हीं के शब्दों में उस समय तक गौण भूमिका अदा कर रहे थे, अपनी सारी योग्यता प्रदर्शित की। उन्होंने दिखा दिया कि वे प्रधान भी बन सकते थे।

---

*कार्नो, लज़ार निकोला (१७५३ – १८२३) – १८वीं शताब्दी के अन्त की फ़्रांसीसी पूंजीवादी क्रान्ति के फ़्रांसीसी राजपुरुष और सेनानायक। – सं०

जिस कर्मठता को उन्हें दो दशाब्दियों तक अधिकतर कारोबार में खपाना पड़ा था, वह अब पूर्णतः उक्त दोहरे कार्यभार को समर्पित हो गई। उन्होंने यथासंभव 'पूंजी' के प्रणयन का कार्य पूरा किया, अपनी निजी वैज्ञानिक कृतियों के लिए आश्चर्यजनक रचनात्मक क्रियाशीलता विकसित की और इसके अलावा अपनी असाधारण कार्य-क्षमता के कारण वे लम्बे-चौड़े अन्तर्राष्ट्रीय पत्रव्यवहार के लिए भी समय निकाल लेते थे। एंगेल्स के पत्र तो अक्सर राजनीति और अर्थशास्त्र सम्बन्धी वैज्ञानिक निबन्ध होते थे।

एंगेल्स की जहां कहीं भी आवश्यकता होती, वे वहीं मदद देते, सर्वदा सब को कार्य के लिए प्रेरित करते रहते। सलाह देते हुए, तक़ाज़े करते हुए, चेतावनी देते हुए वे प्रायः अपनी अन्तिम घड़ी तक एक सक्रिय योद्धा की भांति महान अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर आन्दोलन के संघर्षों में भाग लेते रहे, जो उसी नारे की तामील कर रहा था, जिसे फ़रवरी क्रान्ति की प्रभाती बयार का आभास पाकर उन्होंने और उनके मित्र मार्क्स ने १८४८ के प्रारंभ में ही मज़दूरों के लिए घोषित किया था:

दुनिया के मज़दूरो, एक हो!

वे एक हो ही गए हैं।

और दुनिया की कोई भी शक्ति एकजुट सर्वहारा वर्ग का पथ अवरुद्ध नहीं कर सकती।

२८ नवम्बर, १८९० को हमने लन्दन में एंगेल्स की ७०वीं सालगिरह मनाई। वे उतने ही तरोताज़ा, विनोदी और संघर्ष-तत्पर थे, जितने अपनी अधिकतम उल्लासपूर्ण, उत्साह भरी जवानी में सदा रहते थे। और जब तीन साल बाद उन्होंने कांकोर्दिया हॉल में बर्लिन के मज़दूरों का आह्वान किया* कि "साथियो, मुझे विश्वास है कि आप भविष्य में भी अपने कर्तव्य का पालन करेंगे!", तब उन हज़ारों लोगों में से, जो उत्साह के साथ उनकी

---

*२२ सितम्बर, १८९३ को एंगेल्स ने बर्लिन के सामाजिक-जनवादियों की एक सभा में भाषण दिया। – सं०

बातें सुन रहे थे और सप्रेम तथा साभार उन्हें निहार रहे थे, एक भी ऐसा नहीं था, जिसने साश्चर्य अपने आप से यह न पूछा हो कि "क्या यह जवान सचमुच ७३ साल का हो चुका है?"

पूरे दो साल भी नहीं बीते थे कि ६ अगस्त, १८९५ को ब्रेमेन के ट्रेड-यूनियन महासमारोह से लौटने पर मुझे *«Vorwärts»* के सम्पादकीय दफ़्तर में अपनी मेज़ पर पड़ा हुआ यह दुःखद तार मिला:

"जनरल कल रात साढ़े दस बजे चुपचाप चल बसे। दोपहर से बेहोश। कृपया ज़ोल्दात और ज़ींगेर को सूचित करें।"

"ज़ोल्दात" (सैनिक) का आशय मुझसे था।

हम, यानी जर्मनी में तीन व्यक्ति*, वसन्त के दिनों से जानते थे कि "जनरल" को कण्ठ में असाध्य कैन्सर की छूत लग गयी है। लेकिन चोट के अप्रत्याशित न होते हुए भी, वह गहरी और भयानक थी।

वह प्रकाण्ड चिन्तक, जिसने मार्क्स के साथ वैज्ञानिक समाजवाद की बुनियादें रखी थीं, जिसने समाजवाद की कार्यनीति सिखलाई थी, जिसने २४ साल की कच्ची उम्र में ही 'इंगलैंड में मज़दूर वर्ग की स्थिति' नामक क्लासीकी कृति का प्रणयन किया था, जो 'कम्युनिस्ट घोषणापत्र' का सहलेखक था, जो कार्ल मार्क्स का "इतर अहम्" था और जिसने उन्हें अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर संघ का संगठन करने में मदद दी थी, जो हर चिन्तनशील व्यक्ति के लिए बुद्धिग्राह्य, स्फटिकवत पारदर्शी, वैज्ञानिक ज्ञानकोष 'ड्यूहरिंग मतखण्डन' का रचयिता था, जो 'परिवार की उत्पत्ति' तथा अन्य अनेक कृतियों, निबन्धों, लेखों का प्रणेता था, जो मित्र, सलाहकार, नेता और योद्धा था, वह अब इस दुनिया में नहीं रहा था।

लेकिन जहां कहीं भी वर्ग-चेतन सर्वहारा वर्ग है और लड़ता है, वहीं उनकी भावना जीवित है।

---

* वि० लीब्कनेख़्त, अ० बेबेल तथा प० ज़ींगेर। — सं०

फ़्रेडरिक लेसनर

१८४८ से पहले और उसके बाद*

(एक पुराने कम्युनिस्ट के कुछ संस्मरण)

१

पांचवीं दशाब्दी के उत्तरार्द्ध के तूफ़ानी दिनों में मैं कम्युनिस्ट बन चुका था, उत्पादन साधनों के समाजीकरण और आदमियों के बीच बिरादराना सहयोग के लिए उत्कट संघर्ष करनेवाला बन चुका था।

जब दर्जीगीरी के युवक अप्रेन्टिस के रूप में मैंने १८४६ में हैम्बर्ग में पहले पहल कम्युनिस्ट भाषण सुना और फिर वाइटलिंग की 'सामंजस्य और स्वतंत्रता की ज़मानतें' पढ़ी, तब मैंने सोचा कि कम्युनिज़्म चन्द बरसों में यथार्थ बन जाएगा। लेकिन १८४७ में जब मैंने कार्ल मार्क्स का भाषण सुना और 'कम्युनिस्ट घोषणापत्र' को पढ़ा तथा समझा, तब यह बात मेरे लिए स्पष्ट हो गई कि मानव-समाज के रूपान्तरण के लिए व्यक्तियों का उत्साह और सदाशयता ही पर्याप्त नहीं है... जोश और ख़याली मंसूबों का कुछ अंश खोकर उसके बदले में मैंने लक्ष्य की चेतना और ज्ञान प्राप्त किया।

जिस दर्ज़ीख़ाने में मुझे काम मिला, वहां कई ऐसे सहकर्मियों से मेरी दोस्ती हो गई, जो स्विट्ज़रलैण्ड, पेरिस और लन्दन में काम कर चुके थे। वहां वे कम्युनिस्ट विचारों से परिचित हो चुके थे...

• • •

* १८९८ में प्रकाशित। – सं०

१८४८ के जून विद्रोह के दिनों में पेरिस

जून, १८४८ में पेरिस सर्वहारा का विद्रोह

उस समय हैम्बर्ग में एक मज़दूर शिक्षा समिति थी, जो सभी प्रगतिशील मज़दूरों के मिलने-जुलने की जगह बन गई थी। वहां वे हर शाम को अख़बार पढ़ने, बहसें करने या गाने और विदेशी भाषाएं सीखने के लिए जमा होते थे। अधिकतर अख़बार विरोध-पक्ष की ओर रुझान रखनेवाले होते, बहसें मुख्यत: कम्युनिज्म के प्रश्न पर केन्द्रित रहती और गान-मण्डली में आज़ादी के गीत गाये जाते थे...

मज़दूर शिक्षा समिति में विल्हेल्म वाइटलिंग को भविष्य का युगपुरुष समझा जाता था। उन्हें हमारे बीच असीम सम्मान प्राप्त था। वे अपने अनुयायियों के आराध्य थे।

मेरे साथी मुझे नवम्बर १८४६ में मज़दूर शिक्षा समिति में ले गए और शीघ्र ही मुझे सदस्य बना लिया गया। उस समय से मैं बहसों को नियमित रूप से सुनने लगा।

मेरे एक साथी ने मुझे वाइटलिंग की 'सामंजस्य और स्वतन्त्रता की ज़मानतें' पढ़ने को दी। यह पुस्तक उस समय मज़दूरों में बहुत पढ़ी जाती थी। वह एक के बाद दूसरे के पास पहुंचती थी, क्योंकि बहुत कम लोगों के पास उसकी निजी प्रति थी। मैं उसे तीन बार पढ़ गया। तब पहले पहल मेरे दिमाग़ में यह बात आई कि संसार जैसा है, उससे भिन्न हो सकता है...

वह मुद्दत, जिसके दौरान मज़दूर शिक्षा समिति में होनेवाली बहसों और वाइटलिंग की 'ज़मानतों' ने मेरे विचारों को क्रान्तिकारी और मेरे ज्ञान-क्षितिज को विस्तृत बनाया, मेरे राजनीतिक विकास की निर्णयकारी मुद्दत थी।

१ अप्रैल, १८४७ को वाइमर के बारिकों में जाने की बजाए जब मैं ब्रिटेन जानेवाले एक जहाज़ में बैठ गया, तो मुझे लगा कि मैंने अपने अतीत को यूरोप की भूमि पर छोड़ दिया है, ताकि ब्रिटेन में एक नई ज़िन्दगी की शुरूआत करूं, एक ऐसी ज़िन्दगी जिसे मैंने मानवजाति के मुक्ति-संग्राम में निछावर कर देने का निश्चय कर लिया था।

• • •

मुझे लन्दन मज़दूर शिक्षा समिति के लिए सिफ़ारिश पत्र दिया गया और वहां मेरा मैत्रीपूर्ण स्वागत हुआ। लन्दन की मज़दूर शिक्षा समिति की स्थापना ७ फ़रवरी, १८४० को हुई थी...

चन्द दिनों बाद मैं काम हासिल करने में कामयाब हो गया और उसके बाद नियमित रूप से समिति में जाने लगा और उसका सदस्य हो गया। मुझे न्याय-संघ में भी दाख़िला मिल गया, जो ठीक उसी समय कम्युनिस्ट लीग में परिवर्तित किया गया था। लन्दन में वाइटलिंग का प्रभाव घटता जा रहा था और मार्क्स तथा एंगेल्स के नामों ने प्रमुख स्थान प्राप्त कर लिया था।

२

इस समय तक मैं इन दोनों को नहीं जानता था। मुझे केवल इतना ही मालूम था कि वे ब्रसेल्स में रहते हैं और *«Deutsche-Brüsseler Zeitung»* का सम्पादन करते हैं। उस समय तो मुझे इस बात का गुमान तक नहीं था कि ये दोनों व्यक्ति समाजवाद के इतिहास में एक नये युग का सूत्रपात करेंगे।

मेरे लन्दन आने के चन्द महीने बाद, १८४७ की गर्मियों में कम्युनिस्ट लीग की पहली कांग्रेस हुई, जिसमें एंगेल्स और विल्हेल्म वोल्फ़ ने भाग लिया, लेकिन मार्क्स नहीं आये थे। कांग्रेस ने लीग को पुनःसंगठित किया। एंगेल्स ने कहा, "षड्यन्त्र-काल के पुराने रहस्यमय नाम का जो कुछ भी बाक़ी रह गया था, उसे निश्शेष कर दिया गया है और अब इसका नाम कम्युनिस्ट लीग हो गया है।"

१८४७ की गर्मियों में 'इकारिया की यात्रा' के प्रख्यात लेखक एत्येन काबे ने फ़्रान्सीसी कम्युनिस्टों के नाम एक अपील प्रकाशित की, जिसमें उन्होंने कहा: "चूंकि यहां (फ़्रान्स में) सरकार, पादरी, पूंजीपति वर्ग और यहां तक कि क्रान्तिकारी जनतंत्रवादी भी हाथ धोकर हमारे पीछे पड़े हुए हैं, हमें बदनाम करते हैं और हम पर लांछन लगाते हैं, चूंकि हमारे अस्तित्व को ख़त्म करने, हमें शारीरिक तथा नैतिक रूप से तबाह करने तक की कोशिशें की जाती हैं, इस लिए आइए, हम फ़्रान्स छोड़ दें और

इकारिया चलकर वहां कम्युनिस्ट बस्ती बसावें।" कावे ने यह आशा प्रगट की थी कि इस योजना की तामील के लिए २०–३० हज़ार कम्युनिस्ट मिल जाएंगे।

यह अपील लन्दन मज़दूर शिक्षा समिति में भी पहुंची। सितम्बर १८४७ के आसपास हमारा समर्थन पाने के लिए कावे ख़ुद लन्दन आए। उनकी योजना पर हफ़्ते भर बहस चलती रही। अन्त में समिति ने हर प्रकार के प्रयोगों के ख़िलाफ़ फ़ैसला किया। हमने जवाब दिया कि हम कावे का अनुसरण इसलिए नहीं कर सकते थे कि हमारी राय में वे ग़लत रास्ते पर हैं। स्वयं कावे का हम सम्मान करते हैं, लेकिन हमने उनकी उत्प्रवास-योजना के विरुद्ध हैं। न्याय और सत्य के लिए लड़नेवाले हर व्यक्ति को समझना चाहिए कि देश में रहकर जनता को प्रबुद्ध करना और हिम्मत हारनेवालों में नया साहस जागृत करना उसका कर्त्तव्य है। उसका कर्त्तव्य है कि वह समाज के नए संगठन की बुनियाद डाले और दुष्टों का डटकर मुक़ाबला करे। अगर ईमानदार, बेहतर भविष्य के लिए लड़ने वाले लोग चले जाएंगे और जाहिलों तथा दुष्टों के लिए मैदान ख़ाली छोड़ देंगे, तो सारा यूरोप अनिवार्यतः तबाह हो जाएगा।

ये ही मुख्य विचार थे, जिनके आधार पर हमने कावे के प्रस्ताव को घातक समझा और सभी देशों के कम्युनिस्टों से अपील की कि "भाइयो, हम यहीं, पुराने यूरोप में चौकस रहें, यहीं काम करें और लड़ें, क्योंकि हमें यहीं सार्वजनिक स्वामित्व की बुनियाद डालने के लिए आवश्यक परिस्थितियां उपलब्ध होंगी और सबसे पहले यहीं उसकी स्थापना होगी।"

कावे के प्रस्ताव पर यह था हमारा जवाब... इससे प्रगट है कि विचारशील कम्युनिस्ट, जो मार्क्स और एंगेल्स के प्रभाव में आ चुके थे, उस जमाने में भी सभी कल्पनापरक प्रयासों की निन्दा करते थे। कावे लन्दन से चले गए।

उसके शीघ्र ही बाद नवम्बर १८४७ के अन्त में कम्युनिस्ट लीग की दूसरी कांग्रेस हुई और उसमें कार्ल मार्क्स शरीक हुए। वे और एंगेल्स कांग्रेस में वैज्ञानिक कम्युनिज्म के उसूलों का प्रतिपादन करने के लिए ब्रसेल्स से आए थे। कांग्रेस दस दिन तक चलती रही।

अधिवेशनों में केवल प्रतिनिधियों ने भाग लिया जिनमें मैं नहीं था।

लेकिन हम लोग भी जानते थे कि क्या कुछ हो रहा है और बड़ी उत्सुकतापूर्वक बहसों के नतीजों का इन्तजार करते रहते थे। हमें शीघ्र ही सुनने को मिला कि कांग्रेस ने मार्क्स और एंगेल्स द्वारा प्रतिपादित उसूलों का सर्वसम्मत पक्षपोषण किया और उन्हें एक घोषणापत्र तैयार करने की जिम्मेदारी सौंपी। जब १८४८ के शुरू में ब्रसेल्स से 'कम्युनिस्ट घोषणापत्र' की पाण्डुलिपि आई, तो मैंने उस युगान्तरकारी दस्तावेज़ के प्रकाशन में एक छोटी-सी भूमिका अदा की : पाण्डुलिपि ले जाकर छापेखाने में दी और वहां से प्रूफ़ लाकर कार्ल शापर को पढ़ने को दिये।

लगभग उसी समय मैंने मार्क्स और एंगेल्स को पहले पहल देखा। मेरे मन पर उनकी जो छाप पड़ी, उसे मैं कभी नहीं भूलूंगा।

मार्क्स तब लगभग २८ साल के ही थे, लेकिन उन्होंने हम सभी को बहुत प्रभावित किया। क़द मझोला, कन्धे चौड़े, काठी मजबूत, चाल-ढाल में चुस्ती, ऊंचा और सुघड़ ललाट, बाल घने आबनूसी और दृष्टि मर्मभेदी, – ऐसे थे मार्क्स। उनके मुंह की बनावट में वह व्यंगरेखा, जिससे उनके विरोधी इतना डरते थे, इस समय भी मौजूद थी।

मार्क्स जन्मजात जन-नायक थे। उनका भाषण संक्षिप्त, सुसंगत और अकाट्य तर्कपूर्ण होता था। वे कभी कोई फ़ालतू शब्द नहीं कहते थे। उनका हर वाक्य किसी एक विचार का वाहक और हर विचार उनकी तर्क-शृंखला की एक कड़ी होता था। मार्क्स में कोरे स्वप्नद्रष्टा वाली कोई बात नहीं थी। वाइटलिंग के समय के और 'कम्युनिस्ट घोषणापत्र' के कम्युनिज्म के अन्तर को मैं जितना अधिक समझता गया, उतना ही अधिक मुझे यह स्पष्ट होता गया कि मार्क्स समाजवादी विचारधारा की पक्वावस्था का प्रतिनिधित्व करते हैं।

मार्क्स के रूहानी भाई, फ़्रेडरिक एंगेल्स, कुछ अधिक जर्मन ढंग के थे। छरहरे, चुस्त, सुनहरे बाल और सुनहरी मूंछें, वे विद्वान की अपेक्षा गार्डों के फुर्तीले लेफ़्टिनेन्ट जैसे अधिक प्रतीत होते थे। यह सही है कि एंगेल्स ने अपने अमर मित्र की महत्ता पर ही सदा जोर दिया, फिर भी वैज्ञानिक कम्युनिज्म के सृजन और प्रचार में उन्होंने स्वयं बहुत बड़ा योगदान किया। घनिष्ठ रूप से जान लेने पर हर कोई उनका सम्मान और उनसे प्यार करता था।

• • •

उस समय लन्दन में हम मजदूर शिक्षा समितिवाले कुछ उत्तेजित थे। हमारा यह दृढ़ विश्वास था कि शीघ्र ही "खिचड़ी पक जानी" चाहिए, लेकिन इस बात का हमें गुमान भी नहीं था कि पूंजीवादी जगत् को चकनाचूर करने की सामर्थ्य जुटाने के लिए सर्वहारा वर्ग को शिक्षा तथा संगठन का अभी कितना और काम करना होगा।

'कम्युनिस्ट घोषणापत्र' फ़रवरी १८४८ में प्रेस से छपकर निकला। हमें उसकी प्रतियां पेरिस की फ़रवरी क्रान्ति की ख़बर के साथ ही साथ मिलीं।

उस ख़बर की जो ज़बर्दस्त छाप हमारे मन पर पड़ी, मैं उसे बयान नहीं कर सकता। हमारे जोश का वार पार नहीं था। हम केवल एक ही भावना, एक ही विचार से अभिभूत थे: मानवजाति की मुक्ति के लिए अपने जीवन, अपने सर्वस्व की बाज़ी लगा देंगे!

कम्युनिस्ट लीग की लन्दन केन्द्रीय समिति ने फ़ौरन अपने अधिकार ब्रसेल्स के नेतृत्वकारी संगठन को सौंप दिए, जिसने अपनी तरफ़ से वे अधिकार मार्क्स और एंगेल्स को देकर पेरिस में एक नई केन्द्रीय समिति क़ायम करने को कहा।

इसके फ़ौरन ही बाद मार्क्स ब्रसेल्स में गिरफ़्तार कर लिए गए और उन्हें फ़्रान्स जाने के लिए मजबूर किया गया। वे वहीं तो जाना चाहते थे।

३

पेरिस की घटनाओं का ब्रिटेन के मजदूर वर्ग पर गहरा असर पड़ा। चौथी दशाब्दी के मध्य से ब्रिटिश सर्वहारा के मन पर अधिकार जमा लेनेवाले चार्टिस्ट आन्दोलन को फ़रवरी क्रान्ति की विजयी गति से नई प्रेरणा मिली। इस क्रान्ति की शुरूआत का ही लन्दन के मजदूरों ने एक बहुत बड़े प्रदर्शन द्वारा स्वागत किया। कम्युनिस्ट लीग के सदस्यों ने इस प्रदर्शन में ठीक उसी तरह हिस्सा लिया, जिस तरह से उन्होंने सभी उपलब्ध साधनों द्वारा चार्टिस्ट आन्दोलन का समर्थन किया था।

चार्टिस्टों के सर्वाधिक लोकप्रिय और सुयोग्य नेता एर्नेस्त जोन्स समय समय पर हमारी समिति में आते रहते थे, जहां मुझे उस साहसी तथा

आत्मत्यागी आन्दोलनकारी को जानने का अवसर मिला। जोन्स ठिगने, लेकिन गठे शरीरवाले आदमी थे। वे जर्मन भाषा लिख और पढ़ सकते थे और उन गिने-चुने चार्टिस्ट नेताओं में से थे, जो साथ ही समाजवाद को समझते और उसका प्रचार भी करते थे।

१३ मार्च को लन्दन में एक सभा हुई, जिसमें जोन्स ने भाषण किया। उन्होंने जनता से अपील की कि वह दयनीय क़ानून पालों से, पुलिस से, सैनिकों से, या विशेष कान्सटेबलों के रूप में भरती किए गए और सड़क के चन्द शरारती छोकरों को देखकर भाग चलने वाले व्यापारियों से न डरे। "मंत्रिमंडल मुर्दाबाद! पार्लमेंट को भंग करो! चार्टर से कम कुछ भी नहीं!"

अप्रैल के शुरू में लन्दन में एक चार्टिस्ट कान्वेन्ट (प्रातिनिधिक सभा) बनी, जिसे पहले से अधिक जोश-ख़रोश के साथ उस अर्ज़ी (चार्टर) को पेश करना था, जो मज़दूरों द्वारा राजनीतिक आज़ादी की मांग के लिए हर साल पार्लमेंट को भेजी जाती थी। वह अर्ज़ी १० अप्रैल को पहले की तरह चन्द प्रतिनिधियों द्वारा नहीं, बल्कि सामान्य मज़दूर-समूह द्वारा दी जानी थी। ऐसा करके पार्लमेंट को यह स्पष्ट करना था कि आवश्यकता होने पर सर्वहारा वर्ग अपनी मांग की पूर्ति के लिए बल-प्रयोग को भी तैयार है।

१० अप्रैल की सुबह को लन्दन की छटा निराली थी। सारी फ़ैक्टरियां और दुकानें बन्द थीं। लन्दन का पूंजीपति वर्ग "क़ानून और व्यवस्था" की रक्षा के लिए हथियारबन्द था। "क़ानून और व्यवस्था" के उन रक्षकों में नेपोलियन लघु, बाद को फ़्रान्स का सम्राट, भी था।

कम्युनिस्ट लीग के सदस्यों ने उस प्रदर्शन में भाग लेने का फ़ैसला किया था। हमने अपने को सभी प्रकार के हथियारों से लैस किया। मुझे वह हास्यपूर्ण दृश्य अभी भी अच्छी तरह याद है, जो गेओर्ग इक्कैरियस* द्वारा बड़ी-सी तेज़ की गई दर्ज़ियों वाली कैंची दिखाने से मेरे मन पर

---

* **इक्कैरियस, गेओर्ग** (१८१८–१८८९) – जर्मन मज़दूर-दर्ज़ी, कम्युनिस्ट लीग तथा पहले इन्टरनेशनल की जनरल कौंसिल के सदस्य, मार्क्स और एंगेल्स के घनिष्ठ मित्र। – सं०

अंकित हुआ था जिससे वे पुलिसवालों के हमले से अपना बचाव करने का मन्सूबा बनाए हुए थे।

पार्लमेंट भवन को जानेवाले जुलूस में शामिल होने के लिए मज़दूर केनिंगटन कमन में जमा हुए। लेकिन हमें अचानक पता चला कि जुलूस के नेता फ़ेर्गस ओ'कोन्नोर बड़े जन-प्रदर्शन के ख़िलाफ़ हैं, क्योंकि सरकार हथियारबन्द शक्ति द्वारा उसका विरोध करने के लिए आमादा थी ... बहुतेरे लोग ओ'कोन्नोर की राय मान गए, दूसरे झपटकर आगे बढ़े, जिसके फलस्वरूप चार्टिस्टों और पुलिस के बीच ख़ूनी टक्करें हुईं।

चूंकि सरकार को ख़ुश करने की ओ'कोन्नोर की कोशिशों से प्रदर्शनकारियों की एकता नष्ट हो गई थी, इसलिए सफलता की आशा नहीं की जा सकती थी... प्रदर्शन-स्थल से, जहां घंटे ही भर पहले हम जाने कितनी आशाओं के साथ जमा हुए थे, बहुत निराश होकर विदा हुए।

• • •

जिस समय पश्चिमी यूरोप में ये तूफ़ानी घटनाएं घट रही थीं, उसी समय मध्य यूरोप में क्रान्ति भड़क उठी। इससे हम विशेष रूप से उत्तेजित हो उठे। मज़दूर शिक्षा समिति की शाम की बहसें अधिकाधिक जोशीली और गर्मागर्म हो गई। हर कोई जर्मनी की रणभूमि में झटपट पहुंचने को तैयार था, लेकिन हम में से अधिकतर के पास अपने इरादे की फ़ौरी तामील के लिए साधन नहीं थे। जुलाई १८४८ तक ही मैं जर्मनी की यात्रा के लिए साधन जुटाने में समर्थ हुआ।

उन तैयारियों के दौरान हमें पेरिस में जून विद्रोह की भयानक पराजय की दर्दनाक ख़बर मिली। हम लोगों पर उसका जो प्रभाव पड़ा, उसे शब्दों में नहीं व्यक्त किया जा सकता। मुझे अब तक स्पष्ट याद है कि उस घटना की बाबत *«Neue Rheinische Zeitung»* (जून २९, १८४८) में मार्क्स द्वारा लिखित लेख को मैं कोई बीस बार पढ़ गया, क्योंकि वह हमारी भावनाओं की सर्वोत्तम अभिव्यक्ति था।

१८४८ की गर्मियों में मैं कोलोन पहुंचा। इस नगर का मेरे लिए विशेष आकर्षण था, क्योंकि क्रान्ति के लिए काम करनेवाले लोग – कार्ल मार्क्स, फ़ेडरिक एंगेल्स, विल्हेल्म वोल्फ़, फ़र्दीनान्द फ़ाइलिग्राथ*, कार्ल शापर और जोज़ेफ़ मोल्ल – तब वहीं रहते थे और *«Neue Rheinische Zeitung»* वहीं से प्रकाशित होता था।

सबसे पहले मैंने काम की तलाश शुरू की, ताकि कोलोन में ठहर सकूं।

काम मिल जाने पर मैं मज़दूर समिति में शामिल हो गया। डाक्टर गोट्ट्शाल्क, लेफ़्टिनेन्ट आन्नेके, शापर, मोल्ल, नोथयुंग और द'एस्टर इसके नेता थे। इसके अलावा एक जनवादी समिति** भी थी, जिसमें विल्हेल्म वोल्फ़, मार्क्स, फ़ाइलिग्राथ इत्यादि प्रायः जाया करते थे। वहां वोल्फ़ के साथ मेरी जान-पहचान हुई, जो अक्सर तत्कालीन राजनीतिक घटनाओं पर भाषण दिया करते थे। उनका भाषण सुनकर सचमुच बड़ा आनन्द प्राप्त होता था। राजनीतिक समीक्षा प्रस्तुत करने का उनका ओजस्वी तथा दिलचस्प ढंग सभी को पसन्द था। वे सुविदित और मामूली घटनाओं का बड़े ढंग से वर्गीकरण करके उन्हें विषयानुकूल हास्यपूर्ण अथवा गंभीर ढंग से पेश कर सकते थे। कभी-कभी वहां फ़ाइलिग्राथ भी आते थे, जिनसे बाद को मेरी दोस्ती हो गई...

नवम्बर १८४८ में जनवादी समिति की एक सभा हुई, जिसमें मार्क्स ने यह ख़बर सुनाई कि विएना में फ़ौजी अदालत की दण्डाज्ञा से रॉबर्ट ब्लूम को गोली मार दी गई। हॉल में तत्काल ही सन्नाटा छा गया। मार्क्स ने

---

* **फ़ाइलिग्राथ, फ़र्दीनान्द** (१८१०–१८७६) – जर्मन क्रान्तिकारी कवि, *«Neue Rheinische Zeitung»* के एक सम्पादक। – **सं०**

** कोलोन में जनवादी समिति की स्थापना १८४८ के वसंत में हुई थी। उसके सदस्य टुटपुंजिया जनवादी, कारीगर और मज़दूर थे। मार्क्स, एंगेल्स और उनके समर्थक उसके सदस्यों, विशेषतः सर्वहारा तत्त्वों को प्रभावित करने के लिए उसमें शामिल हुए थे। – **सं०**

मंच पर जाकर ब्लूम की मृत्यु का तार पढ़कर सुनाया। हम पहले तो क्रोध के मारे जड़ीभूत हो गए। उसके बाद हॉल में एक तूफ़ान उमड़ता हुआ प्रतीत हुआ। मुझे लगा कि अब सम्पूर्ण जर्मन जनता क्रान्ति करने के लिए एक होकर उठ खड़ी होगी। लेकिन ऐसा सोचना मेरी और अन्य लोगों की भूल थी। जो कुछ घटित हुआ वह बिलकुल भिन्न था। नगर-प्रबंधकों ने उन्हीं ज़ालिमों के हाथ चूमे, जिन्होंने जनता की श्रेष्ठतम सन्तानों को क़त्ल करवा दिया था।

* * *

विरोध पक्ष के अख़बारों, विशेषतः स्वतंत्रता तथा न्याय की रक्षा में अटल और निर्भीक «*Neue Rheinische Zeitung*» के दमन के रूप में प्रतिक्रिया ने अपना उग्रतम रूप दिखाया। «*Neue Rheinische Zeitung*» के सम्पादकों के ख़िलाफ़ पहला मुक़दमा ७ फ़रवरी, १८४६ को दायर हुआ और दूसरा उसके ठीक दूसरे दिन। अन्त में १८ मई, १८४६ को अख़बार को बिलकुल ही ख़त्म कर दिया गया। अन्तिम अंक लाल अक्षरों में छपकर निकला।

इन मुक़दमों में मार्क्स ने अपनी सफ़ाई नहीं दी। उन्होंने उलटकर मंत्रिमण्डल पर अभियोग लगाए। प्रधान संपादक कार्ल मार्क्स के साथ एंगेल्स पर «*Neue Rheinische Zeitung*» में प्रकाशित एक लेख में "अपने कर्त्तव्यपालन करनेवाले बड़े सरकारी वकील और जेनदार्मों का अपमान करने" का आरोप लगाया गया था। अदालत खचाखच भरी हुई थी। सरकारी अभियोक्ता और वकीलों के बाद मार्क्स बोले। वे लगभग एक घंटे तक बोलते रहे। अनुत्तेजित, गंभीर और ओजस्वी ढंग से गूंजनेवाली उनकी दलीलें अधिकाधिक ज़ोर के साथ सरकारी अभियोक्ता, पुरानी शासन-व्यवस्था, पुरानी नौकरशाही, पुरानी सेना, पुरानी अदालतों, निरंकुश शासन-काल में पैदा, शिक्षित और उसी की सेवा में वृद्ध हुए पुराने जजों पर गाज की तरह गिरती रहीं। मार्क्स ने कहा, "आज अख़बारों का पहला कर्त्तव्य **वर्तमान राजनीतिक व्यवस्था की सारी बुनियादों को खोद फेंकना है।**"

चन्द महीने बाद मार्क्स प्रशिया से निर्वासित कर दिए गए, एंगेल्स बादेन चले गए और कोलोन में रहनेवालों ने अपने प्रचार-कार्य को देहातों

में फैलाया, क्योंकि हम किसानों में प्रचार-कार्य के महत्व को समझ चुके थे। (जब मैं १८९३ में सामाजिक-जनवादी पार्टी की कोलोन कांग्रेस में शरीक हुआ, तब मुझे कोलोन के निकट वोरिंगेन के किसानों ने निमन्त्रित किया। उन्हें १८४८ और १८४९ से अब तक मेरी याद बनी हुई थी।)

हम अपना खाली समय कारतूस बनाने में लगाते थे, जिन्हें बादेन भेजा जाता था। स्वभावतः वे गुप्त रूप से बनाए जाते थे। लाल बेकर* गोलियां और बारूद मुहैया करते थे और हर कोई क्रान्ति की मदद के लिए यथासम्भव योग देता था।

५

प्रतिक्रान्ति शीघ्र ही सभी मोर्चों पर जीत गई, लेकिन संघर्ष तो अभी खत्म नहीं हुआ था। कम्युनिस्ट लीग को पुनरुज्जीवित किया गया और गुप्त रूप से सर्वहारा वर्ग की पार्टी संगठित करने के लिए क़दम उठाए गए। चूंकि लन्दन में लीग में सभी प्रकार के संदिग्ध तत्त्व घुस गए थे, इसलिए मार्क्स के सुझाव पर (जो उस समय तक लंदन में थे) केन्द्रीय समिति को कोलोन स्थानान्तरित कर दिया गया।

मेरा कार्यभार माइन्त्स में लीग के स्थानीय संगठन को फिर से जिन्दा करना और मजदूरों को अपने लक्ष्यों की ओर खींचना था। जाहिरा तौर से हमारा प्रचार-कार्य महज पर्चे वितरित करने तक ही सीमित था। हम इतनी अच्छी तरह संगठित थे कि हम घंटे भर में माइन्त्स को पर्चों से पाट सकते थे। पुलिस एक बार भी "अपराधियों को" नहीं पकड़ सकी।

अक्तूबर १८५० में फ़्रैंकफ़ुर्त के साथियों ने मुझे नुरेम्बर्ग में लीग के पुनःसंगठन का काम सौंपा, जिसे पूरा करने में मैं सफल रहा। दुर्भाग्यवश हमारा प्रचार-कार्य बहुत दिन नहीं चला। उस समय हमारे जर्मन पितृदेश में गिरफ़्तारियों के सिवा और कुछ सुनने में ही नहीं आता था। पुलिस का

---

*बेकर गेर्मन (उपनाम "लाल बेकर") (१८२०–१८८५)– जर्मन सार्वजनिक लेखक, कम्युनिस्ट लीग के सदस्य।–सं०

अधिकारी उस काल का सूरमा था। आज़ादी के आन्दोलन को दबाने के लिए प्रतिक्रिया हर सम्भव साधन का उपयोग करती थी।

जून १८५१ में मैं माइन्त्स में गिरफ़्तार कर लिया गया।

* * *

मुझे ४ अक्तूबर, १८५२ को, यानी लगभग डेढ़ साल बाद कोलोन की अदालत में पेश किया गया... मुक़दमा पांच हफ़्ते से अधिक चला। मैं यहां मुक़दमे की तफ़सील में नहीं पड़ना चाहता, क्योंकि मार्क्स 'कोलोन के कम्युनिस्ट मुक़दमे के बारे में रहस्योद्घाटन' में उसकी चर्चा कर चुके हैं।

सज़ा मेरे लिए गहरी चोट थी। मुझे एक क़िले में तीन साल की नज़रबन्दी भुगतनी थी...

साढ़े चार साल का बन्दी जीवन मुझे दुस्स्वप्न प्रतीत होने लगा... मुझे २७ जनवरी, १८५६ को रिहा कर दिया गया।

"रिहा"! मानो जर्मनी ख़ुद उस समय एक विराट क़ैदख़ाना न रहा हो! ब्रेस्लाउ, एर्फ़र्त और फ़्रेइबर्ग में अपने बन्दी साथियों के सम्बन्धियों से मिलने के बाद जब मैं वाइमर पहुंचा, तो मेरे मन पर फ़ौरन यही छाप पड़ी। वहां मैंने कुछ प्रचार-कार्य करने की कोशिश की, लेकिन लोग इतने आतंकित थे कि "कम्युनिज़्म" शब्द मात्र से बिचक उठते थे।

मैं ख़ुद बेठिकाना था। जिन अधिकारियों को मैंने पासपोर्ट के लिए दर्ख़ास्त दी, वे मुझ "बदनाम" कम्युनिस्ट को अपने देश का निवासी ही नहीं मानना चाहते थे। महज़ एक से दूसरे के पास बार-बार दौड़ने और ख़ूब ज़ोर देने पर ही मैं कुछ काग़ज़ात हासिल कर सका और हैम्बर्ग से होकर लन्दन चला गया।

६

मैं मई १८५६ में लन्दन पहुंचा। शीघ्र ही वहां फ़्राइलिग्राथ से मिलने गया और उसके बाद कार्ल मार्क्स के यहां गया। उन्होंने मेरे ज़ब्त कर लिए गए पुस्तक-संग्रह की कमी पूरी करने के लिए उस समय तक प्रकाशित अपनी

कृतियां मुझे भेंट कीं। मैंने अपने १८४८ के पुराने दोस्तों—कार्ल फ़ैन्दर, गेओर्ग इक्कैरियस आदि को भी खोज निकाला। वहां मैंने जर्मन उत्प्रवासियों से भी जान-पहचान की, जिनमें से विल्हेल्म लीब्कनेख्त समेत कई लन्दन में रह रहे थे।

काम मिल जाने पर मैं फिर कम्युनिस्ट मजदूर शिक्षा समिति में जाने लगा। समिति उस समय बहुत बुरी दशा में थी। कारण कि १८४८ के क्रान्तिकारी आन्दोलन की असफलता के बाद बहुत से सदस्य समिति से अलग हो गए थे और बाक़ी धीरे-धीरे दकियानूसी में डूब गये थे। समिति में अब कहीं कम्युनिस्ट विचारों का लेश भी नहीं रह गया था। वह एकदम बेजान हो गई थी, बिलकुल वैसी ही, जैसी कि उदारतावादी चाहते थे।

कम्युनिस्ट मजदूर शिक्षा समिति की दशा देखकर मुझे दुःख हुआ। मैं सदस्यों से मिलने और उनसे दोस्ती बढ़ाने लगा। इसमें सफल हो जाने के बाद हमने काम शुरू किया। विल्हेल्म लीब्कनेख्त और मार्क्स ने भी फिर से समिति में आना शुरू कर दिया। मार्क्स ने तो किसी तरह के पारिश्रमिक के बिना राजनीतिक अर्थशास्त्र पर एक व्याख्यान-माला भी प्रस्तुत की। उन्होंने अपने पूरे जीवन में मजदूरों से कभी कुछ नहीं लिया था ... सदस्य-संख्या बढ़ने लगी।

१८६० से १८६४ तक मैंने अपना समय अपने ज्ञान-वर्द्धन में लगाया। मैं नियमित रूप से लन्दन विश्वविद्यालय में शरीरक्रिया विज्ञान, भूगर्भ विज्ञान और रसायन विज्ञान पर हक्सले, टिन्डाल और होफ़मान्न जैसे प्रोफ़ेसरों के व्याख्यान सुनता रहा। जर्मन मजदूर आम तौर से इन प्रमुख वैज्ञानिकों के व्याख्यान सुना करते थे। मार्क्स ने ही हमें ऐसा करने की प्रेरणा दी थी और वे स्वयं भी समय-समय पर इन व्याख्यानों में उपस्थित होते थे।

• • •

१८६४ में पुरानी विघटित कम्युनिस्ट लीग ने अपने पुनरुज्जीवन, यद्यपि नये रूप में पुनरुज्जीवन, का उत्सव मनाया। अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर संघ की स्थापना हुई। मजदूरों ने समाजवाद में फिर से, और पहले से अधिक दिलचस्पी लेनी शुरू कर दी। हमारी पहले की सरगर्मी फल ला रही थी...

कम्यून के बाद इन्टरनेशनल को कठिन समय का सामना करना पड़ा।

जनमत के निर्माण में प्रभुत्वशील स्थिति रखनेवाले अंग्रेजी अख़बार हमें बदनाम करते थे और हम पर कीचड़ उलीचते थे। एक ऐसी स्थिति आ गई, जब हमें अपनी सभाओं के लिए लन्दन में इमारतों का मिलना बंद हो गया। १८ मार्च, १८७२ को जब हमने कम्यून की पहली वार्षिकी मनानी चाही, तब हमने पाया कि जो हॉल किराए पर लिया गया था उसे पुलिस के घेरे में ले लिया गया है। तब मैंने एक विशेष इमारत को किराए पर लेने का बन्दोबस्त किया, जिसमें हमने जनरल कौंसिल की बैठकें कीं...

१८७० के बाद बाहर से इन्टरनेशनल के ख़िलाफ़ लड़ाई अधिक तीव्र होती गई और अधिकतर सरकारों ने उसके समर्थकों के ख़िलाफ़ कार्रवाइयां कीं। फ़्रान्स में तो एक विशेष क़ानून भी पास कर दिया गया और ब्रिटिश ट्रेड-यूनियनों में ऐसे लोग थे, जो उसके ख़िलाफ़ आन्दोलन चलाते थे। इसके अलावा मिखाईल बकूनिन* संगठन के भीतर गन्दी साज़िशें कर रहे थे। उस समय मार्क्स की स्थिति स्पृहणीय नहीं थी। वे इन्टरनेशनल के काम से दबे हुए थे। उन्होंने ही इन्टरनेशनल की ओर से प्रकाशित किये जानेवाले सभी घोषणापत्र, अपीलें और अन्य सामग्री लिखकर तैयार की थी। उसके अलावा उनका विपुल पत्र-व्यवहार होता था और उत्प्रवासी कम्युनार्डों के सम्बन्ध में उनकी दौड़धूप भी बहुत-सा समय ले जाती थी। मार्क्स इन सारे कर्त्तव्यों की पूर्त्ति किसी पारिश्रमिक के बिना करते थे, यद्यपि अपने अस्तित्व के लिए उन्हें भारी संघर्ष करना पड़ता था। उनकी गृहस्थी का ख़र्च बढ़ता गया, ख़ास तौर से कम्यून के बाद। उनके घर में हमेशा ही कई कई फ़्रान्सीसी उत्प्रवासी पाए जा सकते थे, जिनके रहन-सहन और भरण-पोषण का प्रबन्ध करना पड़ता था। श्रीमती मार्क्स के लिए तो वह ख़ास तौर से बड़ा कठिन समय था। वे अक्सर मेरे और मेरी पत्नी के पास सलाह के लिए या किसी पारिवारिक कठिनाई पर बातचीत करने

---

*बकूनिन, मिख़ाईल अलेक्सान्द्रोविच (१८१४–१८७६) – रूसी क्रान्तिकारी तथा सार्वजनिक लेखक, अराजकतावाद के एक सिद्धान्तकार; पहले इंटरनेशनल में मार्क्सवाद के कट्टर विरोधी; उन्हें उनकी फूटपरस्त गतिविधियों के कारण इंटरनेशनल से निकाल दिया गया। – सं०

के लिए आनी थीं। लेकिन यह सब कुछ सर्वहारा आन्दोलन में उनकी हार्दिक और उत्साहपूर्ण शिरकत में बाधक नहीं बन सकता था।

हेग कांग्रेस में बकूनिन के खिलाफ़ निर्णयकारी संघर्ष होना था। बकूनिन ने उसमें शरीक होने का वायदा किया और इस वजह से मार्क्स ने भी उसमें जाना तय किया, ताकि बकूनिन के साथ विवाद का निपटारा हो जाए। इन्टरनेशनल की हेग कांग्रेस ही एकमात्र कांग्रेस थी, जिसमें मार्क्स उपस्थित थे। दूसरे अवसरों पर वे लन्दन में ही बने रहे थे और कांग्रेसों में दूसरों को चमकने का अवसर देते थे। हेग जाने का फ़ैसला उन्होंने केवल इसलिए किया कि बकूनिन की साजिशों का सदा के लिए अन्त कर दिया जाए। एंगेल्स भी वहां गए और मार्क्स की पत्नी तथा बच्चों ने भी वहां जाने के अवसर का लाभ उठाया।

कांग्रेस १८७२ के सितम्बर के शुरू में हुई। उसमें ६५ प्रतिनिधियों ने भाग लिया...

मिखाईल बकूनिन ने अपनी बात नहीं रखी और कांग्रेस में नहीं आए। लेकिन उनके कठपुतले वहां मौजूद थे और उनकी वहां एक नहीं चली। कांग्रेस को मुख्यतः दो प्रश्नों का निपटारा करना था: १) जनरल कौंसिल के हेडक्वार्टर का स्थानान्तरण और २) इन्टरनेशनल से बकूनिन का निष्कासन। पहले प्रश्न पर फ़्रेडरिक एंगेल्स ने भाषण किया और जनरल कौंसिल के हेडक्वार्टर को न्यूयार्क में स्थानान्तरित करने की तजवीज़ पेश की। उनकी तजवीज़ मंजूर कर ली गई। बकूनिन को एक बन्द अधिवेशन में इन्टरनेशनल से निकाला गया। मार्क्स के विरोधियों तक ने बकूनिन की साजिशों की निन्दा की और उनके निष्कासन का समर्थन किया...

हेग में मार्क्स की उपस्थिति के समय सभी सभ्य देशों के पत्रकार अक्षरशः उन पर टूट पड़े। हर कोई उन्हें देखना और इन्टरनेशनल के लक्ष्यों तथा चेष्टाओं के बारे में उनकी राय जानना चाहता था...

१८७२ की हेग कांग्रेस पुराने इन्टरनेशनल की अन्तिम घटना थी...

७

इन्हीं दिनों मैं मार्क्स परिवार में अक्सर जाया करता था। हर विश्वसनीय साथी के लिए उनके घर के दरवाजे खुले रहते थे। मैं उन प्रीतिकर घंटों

को कभी नहीं भूल सकता, जो अनेक दूसरों की तरह मैंने मार्क्स परिवार में बिताए। श्रीमती मार्क्स से तो मैं खास तौर पर बहुत प्रभावित हुआ। वे लम्बी और बहुत सुन्दर महिला थीं, विशिष्ट व्यक्तित्ववाली, प्रियदर्शिनी, तीक्ष्ण-बुद्धि और इतनी अहंकारहीन तथा बेतकल्लुफ़ कि उनकी उपस्थिति में मां या बहन की उपस्थिति के ही समान निर्द्वन्द्वता और संकोचहीनता की अनुभूति होती थी... मैं पहले ही कह चुका हूं कि वे मज़दूर आन्दोलन के प्रति बहुत उत्साही थी और पूंजीपति वर्ग के खिलाफ़ उसकी हर सफलता से, चाहे वह जितनी भी छोटी क्यों न हो, उन्हें महानतम संतोष और सुख प्राप्त होता था।

मज़दूरों के साथ मुलाक़ातों और वार्तालापों को मार्क्स सदा विशेष महत्त्व देते थे। वे आन्दोलन के बारे में उनकी राय जानना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण समझते थे और ऐसे लोगों की सोहबत की तलाश में रहते थे, जो चाटुकार न होकर बेलाग बात कर सकते हों। उनके साथ अधिक से अधिक महत्त्वपूर्ण राजनीतिक तथा आर्थिक समस्याओं पर विचार करने के लिए वे सदा तैयार रहते थे। मार्क्स शीघ्र ही जान लेते थे कि वे उन प्रश्नों को समझते हैं या नहीं और वे जितना ही अधिक समझते थे, मार्क्स उतना ही अधिक आनन्दित होते थे।

इन्टरनेशनल के ज़माने में वे जनरल कौंसिल की बैठकों में जाने से कभी नहीं चूकते थे। बैठकों के बाद आम तौर से मार्क्स और जनरल कौंसिल के हम अधिकतर सदस्य किसी आपानशाला में जाकर कुछ बियर पीते थे और गपशप करते थे। घर लौटते हुए रास्ते में वे अक्सर सरसरी तौर से सामान्य कार्य-दिवस और आठ घंटे के कार्य-दिवस की विशेष चर्चा किया करते थे। वे कहा करते थे—"हम आठ घंटे के कार्य-दिवस के लिए लड़ रहे हैं, पर खुद अक्सर इससे दुगुना काम करते हैं।"

हां, खुद मार्क्स तो बहुत ही अधिक काम करते थे। पराये लोग तो इस बात की कल्पना भी नहीं कर सकते कि अकेले इन्टरनेशनल के ही काम में उनका कितना श्रम और समय लगता था। इसके साथ ही उन्हें निर्वाह के लिए कठोर परिश्रम करना पड़ता था और इतिहास तथा अर्थशास्त्र की अपनी कृतियों के लिए मसाला जुटाने के लिए ब्रिटिश म्यूज़ियम में घंटों अध्ययन करना पड़ता था।

म्युज़ियम से लन्दन के उत्तरी भाग में हैवरस्टॉक हिल की मेटलैण्ड पार्क रोड पर स्थित अपने घर लौटते समय वे अक्सर मुझसे मिलने, इन्टरनेशनल से सम्बन्धित किसी प्रश्न पर विचार करने के लिए हमारे यहां आ जाते थे। मैं म्युज़ियम के पास ही रहता था। घर लौटकर मार्क्स कुछ खाते-पीते थे और थोड़ा आराम करते थे। उसके बाद फिर काम में लग जाते थे और अक्सर रात को देर तक, यहां तक कि भोर तक, काम करते रहते थे। उनके शाम के संक्षिप्त आराम में भी मिलने के लिए आनेवाले पार्टी-साथियों के कारण प्रायः व्यतिरेक पड़ जाता था।

सभी महापुरुषों की तरह मार्क्स में भी दम्भ बिलकुल नहीं था। वे ईमानदारी के साथ की गई हर चेष्टा और आत्मनिर्भर चिन्तना पर आधारित हर राय की क़द्र करते थे। जैसा कि मैं पहले ही कह चुका हूं, वे मज़दूर आन्दोलन के बारे में मामूली से मामूली मज़दूर की राय सुनने को हमेशा उत्सुक रहते थे। चुनांचे वे अक्सर तीसरे पहर मेरे यहां आते, मुझे साथ लेकर टहलने निकलते और नाना विषयों पर मुझसे बातें करते जाते थे। मैं स्वभावतः उन्हें ही अधिक बातें करने की सम्भावना देता था, क्योंकि उनकी बातें सुनना और उनके तर्कों का अनुसरण करना मेरे लिए सचमुच सुखकर होता था। मैं उनकी बातों में बिलकुल डूब जाता था और मन मारकर ही उनसे अलग होता था।

सामान्यतः उनसे बातें करके बड़ा आनन्द मिलता था और वे अपने सम्पर्क में आनेवाले सभी लोगों को बहुत आकर्षित करते थे, यहां तक कि मोह लेते थे। उनका विनोद-भण्डार असीम था और उनकी हंसी हार्दिक होती थी। हमारे पार्टी-साथी जब किसी भी देश में विजय प्राप्त करते, तो मार्क्स बेहद उन्मुक्त भाव से अपनी ख़ुशी प्रगट करते थे और मुखरित ढंग से आनन्द मनाते थे। आसपास के लोग भी उनके इस आनन्द-प्रवाह में बहने लगते थे।

मार्क्स की तीनों बेटियां भी युवावस्था के प्रारंभ से ही अपने समय के मज़दूर आन्दोलन में बहुत दिलचस्पी रखती थीं। मज़दूर आन्दोलन मार्क्स परिवार में हमेशा ही बातचीत का मुख्य विषय रहता था। अपनी बेटियों के साथ मार्क्स के सम्बन्ध अधिकतम हार्दिक और बेतकल्लुफ़ थे। लड़कियां उनके साथ पिता से अधिक भाई अथवा मित्र जैसा व्यवहार करती थीं,
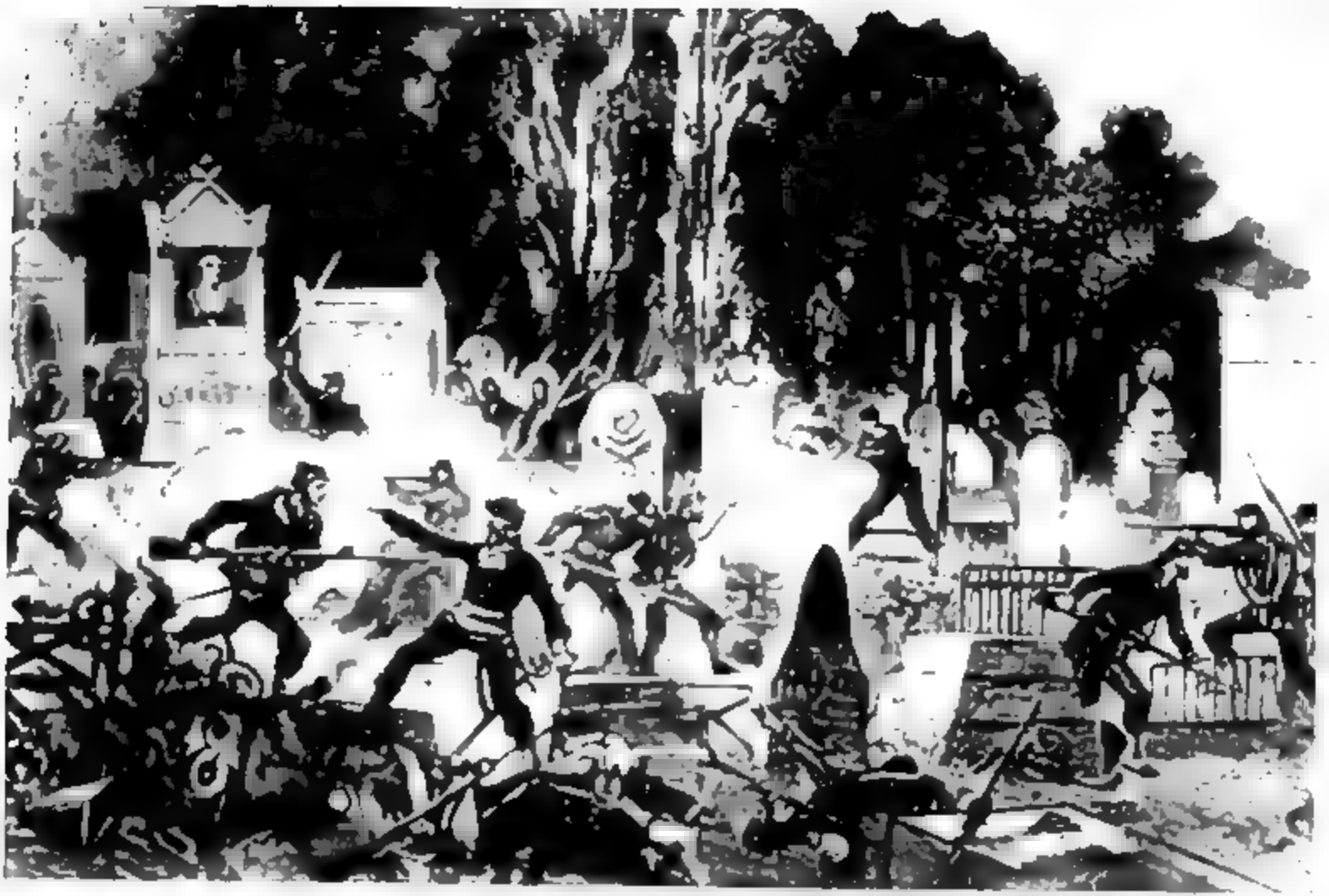
पेयर-लाशेज नामक क़ब्रिस्तान में कम्युनार्डों की मुठभेड़

कम्युनार्डों की आख़िरी लड़ाई

क्योंकि मार्क्स पिता के अधिकार की बाह्य विशेषताओं को नहीं मानते थे। गंभीर मामलों में वे अपनी बच्चियों के सलाहकार होते थे, अन्यथा अवकाश होने पर उनके खेलों में साथ देते थे।

बच्चे उन्हें आम तौर से बेहद पसन्द थे। जब उन्हें शहर में कोई काम न होता और हैम्पस्टेड हीथ में टहलने जाते, तो अक्सर 'पूंजी' के लेखक को ढेरों बच्चों के साथ कोलाहलपूर्वक खेलते-कूदते देखा जा सकता था।

१८८३ में उनकी सबसे बड़ी लड़की की मृत्यु हो गई, जिसमें अपनी मां के सभी सद्गुण मौजूद थे। उससे मार्क्स को उस समय में एक और अत्यधिक कठिन और दुर्भाग्यपूर्ण गहरी चोट लगी, क्योंकि मुश्किल से १२ महीने पहले, २ दिसम्बर, १८८१ को वे अपनी वफ़ादार जीवन संगिनी को खो चुके थे। ये चोटें ऐसी थीं, जिनसे वे कभी नहीं उबर सके।

मार्क्स को उस समय सख़्त खांसी हो चुकी थी। उनको खांसते सुनकर लगता था कि उनकी चौड़ी फ़ौलादी छाती फटी कि फटी। वह खांसी उन्हें इसलिए और भी कष्टकर थी कि उनका शरीर बरसों के अतिश्रम से जर्जर हो चुका था। आठवीं दशाब्दी के मध्य में डाक्टरों ने उन्हें धूम्रपान की मनाही कर दी। मार्क्स चूंकि धूम्रपान के बहुत शौक़ीन थे, इसलिए उसका त्याग उनके लिए असाधारण क़ुर्बानी थी। डाक्टरों के आदेश के बाद जब मैं उनसे पहली बार मिलने गया, तो उन्होंने उल्लास और गर्व के साथ यह बताया कि मैंने अमुक-अमुक दिन से धूम्रपान नहीं किया है और जब तक डाक्टर अनुमति नहीं देंगे तब तक ऐसा करूंगा भी नहीं। उसके बाद की हर मुलाक़ात में वे बताते थे कि उन्हें धूम्रपान किए कितने दिन हो गए और उतने अर्से में उन्होंने एक बार भी धूम्रपान नहीं किया और न उसकी बात ही सोची। उन्हें तो स्वयं भी मानो यह विश्वास नहीं होता था कि वे ऐसा करने में समर्थ हो सकते थे। इसी लिए जब कुछ अर्से बाद डाक्टर ने उन्हें दिन में एक सिगार पीने की अनुमति दे दी तो उन्हें बेहद ख़ुशी हुई...

* * *

१५ मार्च, १८८३ को मुझे एंगेल्स का पत्र मिला, जिसमें मार्क्स की मृत्यु की सूचना थी। वह सूचना पाकर मुझे गहरा सदमा हुआ। मार्क्स के निकट सम्पर्क में आनेवाले जानते थे कि उनकी मृत्यु से मज़दूर आन्दोलन

को कितना नुक़सान पहुंचा है। मज़दूर आन्दोलन ने एक महामेधावी और प्रकाण्ड पंडित ही नहीं, बल्कि एक सुसंगत तथा लौह चरित्र इंसान भी खो दिया। जो कृतियां वे छोड़ गए, उनसे सिद्ध है कि कितना प्रचुर ज्ञान उनके साथ क़ब्र में दफ़न हो गया, यद्यपि वे कृतियां उसका दशांश भी नहीं हैं, जितना कुछ लिखने का वे इरादा रखते थे। संघर्ष तथा बलिदानों से भरपूर उनका पूरा जीवन ही उनके पराक्रमी चरित्र का प्रमाण था।

मार्क्स को यह पक्का विश्वास था कि मेहनतकश जनता देर-सवेर उनको समझेगी और उनकी शिक्षाओं से पूंजीवादी समाज का तख़्ता उलटने की शक्ति प्राप्त करेगी तथा स्पष्ट चेतना के साथ नए समाज के निर्माण के लिए काम करेगी।

फ़ेडरिक लेसनर

फ़ेडरिक एंगेल्स – एक मज़दूर की स्मृतियों में*

सदा के लिए आंखें बन्द करने के पहले मेरे लिए महान योद्धा फ़ेडरिक एंगेल्स के साथ अपनी लम्बी जान-पहचान और दोस्ती की स्मृतियों को लिख डालना ठीक ही होगा। यद्यपि उनकी मृत्यु के बाद से उनकी बाबत बहुत कुछ लिखा और कहा गया है, फिर भी मेरे ख़याल में उनके साथ १८४७ में शुरू हुए अपने सम्बन्धों के अनुभव बयान करना उचित ही होगा।

निश्चय ही मैं उतने अच्छे ढंग से यह नहीं कर सकूंगा, जितना कि चाहता हूं। एंगेल्स के साथ मेरी जान-पहचान हुए आधी सदी गुज़र चुकी है और मुझे सारी बातों की याद ताज़ा करना पड़ेगी। मेरा बुढ़ापा भी मेरे लिए एक बाधा है। मेरा हाथ भी अब उतने ही सधे हुए ढंग से नहीं लिखता है, जितना कि मैं चाहता हूं। इस लिए मैं आशा करता हूं कि अगर मेरी विवृत्ति उतनी अच्छी न हो जितनी होनी चाहिए, तो मुझे क्षमा किया जाएगा।

१

कार्ल मार्क्स की तरह फ़ेडरिक एंगेल्स के साथ भी मेरा प्रथम परिचय १८४७ के अन्त की महत्त्वपूर्ण अवधि में लन्दन में हुआ।

---

* १९०१ में प्रकाशित। – सं०

वह परिचय कम्युनिस्ट मजदूर शिक्षा समिति में हुआ, जो उस समय का एकमात्र संगठन है जो अब तक क़ायम है और मजदूर आन्दोलन के काम आ रहा है*। हमारी जान-पहचान उस चिरस्मरणीय कांग्रेस के समय हुई थी, जिसमें आज के अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर आन्दोलन की नींव डाली गई थी। बेल्जियमी साथी टेडेस्को को साथ लिए हुए मार्क्स, एंगेल्स और वि० वोल्फ़ नये संगठन के उसूलों और कार्यनीति के सम्बन्ध में एक सर्वमान्य निर्णय करने के लिए लन्दन आए थे। आज सारी दुनिया जानती है कि उस कम्युनिस्ट कांग्रेस में ही मार्क्स और एंगेल्स को एक कम्युनिस्ट घोषणापत्र तैयार करने का भार सौंपा गया था।

मैं उससे पहले ही «*Deutsche Brüsseller Zeitung*» के माध्यम से, जो १८४७–१८४८ में प्रकाशित होता था, मार्क्स और एंगेल्स का नाम सुन चुका था। एंगेल्स की पुस्तक 'इंगलैंड के मज़दूर वर्ग की स्थिति' जिसका प्रथम संस्करण १८४५ में प्रकाशित हुआ था, लन्दन के कम्युनिस्ट मज़दूर शिक्षा समिति में बिक रही थी।

वह पहली पुस्तक थी, जिसे मैंने ख़रीदा और जिससे मुझे मजदूर आन्दोलन का पहला परिचय मिला। दूसरी पुस्तक, जिससे मैंने उस समय शिक्षा ग्रहण की वह थी वाइटलिंग की 'सामंजस्य और स्वतंत्रता की ज़मानतें'।

केवल कम्युनिस्ट मज़दूर शिक्षा समिति के ही नहीं, बल्कि कम्युनिस्ट लीग के सदस्यों पर भी लन्दन में मार्क्स, एंगेल्स, वि० वोल्फ़ इत्यादि की उपस्थिति की प्रबल छाप पड़ी। उस कांग्रेस से बड़ी उमीदें लगाई गई थीं और वे न केवल विफल ही नहीं हुई, बल्कि बढ़-चढ़कर पूरी हुई। 'कम्युनिस्ट घोषणापत्र' का प्रकाशन, जो उस ऐतिहासिक कांग्रेस की महान देन था, मेरे कथन का तथ्यगत प्रमाण है।

देखने में एंगेल्स मार्क्स से भिन्न थे। लम्बे और छरहरे, तेज और स्फूर्तिमय गतिविधि, संक्षिप्त और नपी-तुली बातें, चाल-ढाल सिपाहियाना। वे बहुत ही जिन्दादिल व्यक्ति थे और उनके मजाक़ तीर की तरह सधे

---

* उक्त समिति १९वीं सदी के अन्त तक एक मामूली क्लब बनकर रह गया था। – सं०

हुए होते थे। उनके सम्पर्क में आनेवाले हर व्यक्ति पर अनिवार्यतः यह छाप पड़ती थी कि एक असाधारण प्रतिभाशाली व्यक्ति के साथ उसका साबिक़ा है।

अजनबियों के सामने एंगेल्स मितभाषी व्यवहार करते थे। उनकी आख़िरी उम्र में उनकी यह प्रवृत्ति और भी बढ़ गई थी। उनके बारे में सही राय बनाने के लिए उन्हें अच्छी तरह जानना ज़रूरी था और वे भी जब तक किसी को पूरी तरह जान नहीं लेते थे, तब तक उसे अपना विश्वासपात्र नहीं बनाते थे।

उनके सामने किसी की मक्कारी नहीं चल सकती थी। वे फ़ौरन भांप लेते थे कि उनके सामने क़िस्से गढ़े जा रहे हैं अथवा किसी प्रकार की मुलम्मासाज़ी के बिना सीधे-सीधे सच बात कही जा रही है। एंगेल्स लोगों के अच्छे पारखी भी थे, हालांकि कई मौक़ों पर उनसे ग़लती भी हुई...

१८४३ से उन्हें जाननेवाले उनके मित्र और चार्टिस्ट अख़बार «Nothern Star» के सम्पादक जार्ज जूलियन हार्नी के शब्द उद्धृत किए बिना एंगेल्स का चित्र अधूरा रह जाएगा। एंगेल्स की मृत्यु के बाद हार्नी ने लिखा था कि "एंगेल्स १८४३ में ब्रैडफ़ोर्ड से लीड्स आए और «Nothern Star» के दफ़्तर में मुझसे मिले। वे एक लम्बे, सुघड़ युवक थे और उनके चेहरे पर किशोर सुलभ तरुणाई झलकती थी। जन्म से जर्मन होने और वहीं शिक्षा पाने के बावजूद उनकी अंग्रेज़ी उस समय भी उल्लेखनीय रूप से निर्दोष थी। उन्होंने मुझे बताया कि वे निरन्तर «Nothern Star» पढ़ते हैं और चार्टिस्ट आन्दोलन में उनकी हार्दिक दिलचस्पी है। इस प्रकार ५० से भी अधिक साल पहले हमारी दोस्ती की शुरुआत हुई।"

हार्नी के अनुसार अपने सारे कामों के बावजूद एंगेल्स अपने मित्रों के लिए समय निकाल लेते थे और आवश्यकता होने पर उन्हें मदद और सलाह देते थे। उनके प्रकाण्ड पाण्डित्य और उनके प्रभाव ने उन्हें मग़रूर नहीं बनाया। उलटे, ७५ की उम्र में भी वे उतने ही विनम्र तथा दूसरों की कृति के लिए श्रेय देने को तत्पर बने रहे, जितने २२ की उम्र में थे। उनकी मेहमाननेवाज़ी असाधारण थी, वे मज़ाक़-पसन्द थे और उनका ठहाका औरों को भी बरबस हंसा देता था। वे गोष्ठी की जान होते थे।

ओवेनवादियों, चार्टिस्टों, ट्रेड-यूनियनवालों और समाजवादियों से उनका निकट सम्पर्क रहता था, जिनमें से प्रत्येक को बेतकल्लुफ़ी महसूस कराने में उन्हें कमाल हासिल था।

२

जून १८४८ के अन्त में मैं लन्दन से कोलोन आया और वहीं एंगेल्स और मार्क्स के साथ मेरी निकटता बढ़ी। वहां «*Neue Rheinische Zeitung*» के सम्पादन-विभाग के सदस्यों से मेरा परिचय कराया गया। एंगेल्स जानते थे कि मैं पेशे से दर्ज़ी हूं और उन्होंने मुझे अपना "दरबारी दर्ज़ी" नामज़द कर दिया, हालांकि मैंने उनके कपड़ों की केवल मरम्मत ही की। अपनी पोशाकों को न तो एंगेल्स और न मार्क्स ही बहुत महत्त्व देते थे। उनकी माली हालत उस समय कुछ बहुत अच्छी नहीं थी।

उस समय मैं बिलकुल कच्ची उम्र का युवक था और घुस-पैठकर सामने आने की मेरी आदत नहीं थी। इसलिए हम अधिकतर सार्वजनिक सभाओं में या अन्य बैठकों में ही मिलते थे और रणक्षेत्र के साथियों की तरह एक दूसरे का अभिवादन करते थे।

कोलोन में हम थोड़े ही अर्से तक सम्पर्क में आये, लेकिन उन दोनों विरल व्यक्तियों का ऊंचा मूल्यांकन मैंने उसी समय कर लिया था और उनसे भविष्य के लिए बहुत कुछ की आशा करता था।

'कम्युनिस्ट घोषणापत्र' ने समसामयिक समाज के सम्बन्ध में उनके सटीक ज्ञान की बाबत लेश मात्र भी सन्देह बाक़ी नहीं रहने दिया और जिस सुबोध ढंग से वह लिखा गया था उससे साधारण मजदूर के लिए भी वर्ग-विग्रह का गहन वैज्ञानिक सार समझना सुगम बन गया। लेकिन मार्क्स और एंगेल्स ने पहले पहल «*Neue Rheinische Zeitung*» में ही यह प्रदर्शित किया कि ज्ञान के अतिरिक्त वे अदम्य इच्छा-शक्ति के भी धनी हैं।

काली-सफ़ेद* प्रतिक्रिया ने शीघ्र ही समझ लिया कि उसे कैसे

---

* प्रशियाई प्रतिक्रान्ति। काला और सफ़ेद – प्रशिया के राष्ट्रीय झंडे के रंग थे। – सं०

अद्वितीय विरोधियों से पाला पड़ा है और उसने «*Neue Rheinische Zeitung*» को ख़त्म करने में कोई कोर-कसर उठा न रखी। जब उसमें कामयाबी नहीं हुई तो उसने अख़बार का अन्त करने के लिए और भी अधिक सख़्त कारंवाइयां शुरू कीं। जनवादियों की राइनी हलका कमिटी के ख़िलाफ़ दो मुक़दमे चालू किए गए। पहला ७ फ़रवरी और दूसरा ८ फ़रवरी को। मैं दोनों मुक़दमों की सुनवाई में बड़ी दिलचस्पी के साथ मौजूद रहा। जिस महती वरिष्ठा तथा गहन ज्ञान के साथ मार्क्स और एंगेल्स ने काली-सफ़ेद प्रतिक्रिया के विरुद्ध मोर्चा लिया, उसे देख-सुनकर मन खिल उठता था। उन दोनों के विरोधी भी उनकी प्रशंसा किए बिना नहीं रह सके!

«*Neue Rheinische Zeitung*» के ज़बर्दस्ती बन्द और मार्क्स के देश-बदर कर दिए जाने के बाद सम्पादकीय विभाग के सदस्य बिखर गए। मार्क्स पेरिस चले गए और एंगेल्स प्फ़ाल्त्स, जहां राइख़ संविधान का आन्दोलन भड़क उठा था... प्फ़ाल्त्स में एंगेल्स ने जो कुछ किया, वह कार्ल मार्क्स के सम्पादकत्व में प्रकाशित «*Neue Rheinische Zeitung. Politisch-ökonomische Revue*» (नया राइनी अख़बार। एक राजनीतिक-आर्थिक समीक्षा), लन्दन, हैम्बर्ग और न्यूयार्क, १८५०, में राइख़ संविधान आंदोलन पर उनके द्वारा लिखित लेख में देखा जा सकता है।

३

बादेन में क्रान्ति की पराजय के बाद एंगेल्स और कई दूसरे विद्रोहियों को स्विट्ज़रलैण्ड भाग जाना पड़ा। लेकिन एंगेल्स वहां बहुत कम अर्से तक रहकर लन्दन चले गए, जहां मार्क्स तथा अनेक दूसरे जर्मन उत्प्रवासी पहले ही पहुंच चुके थे।

लन्दन में एंगेल्स और मार्क्स परिवार के कठिन दिन शुरू हुए, क्योंकि दोनों में से किसी के पास जीवन-निर्वाह के साधन नहीं थे। एल्योनोरा मार्क्स ने अपने एक लेख में उन मुश्किल वक़्तों का वर्णन किया है।

वही समय था, जब मार्क्स, एंगेल्स, लीब्कनेख़्त, वि० वोल्फ़ तथा दूसरों ने कम्युनिस्ट मजदूर शिक्षा समिति में सक्रिय भाग लिया। उस समय

उक्त समिति में नाना प्रवृत्ति रखनेवाले अनेक राजनीतिक उत्प्रवासी शामिल थे। उनमें हाल की राजनीतिक घटनाओं तथा भविष्य सम्बन्धी विचारों के सिलसिले में इतनी मत-भिन्नता थी और उत्प्रवासी जीवन में इतनी कटुता भरी थी कि शीघ्र ही रगड़े-झगड़े पैदा हो जाने में कोई आश्चर्य की बात नहीं थी...

जहां तक मुझे याद है, एंगेल्स को लन्दन छोड़कर १८५० में मैंचेस्टर जाना पड़ा था, जहां वे एक सूती मिल की नौकरी में भरती हो गए। उनके पिता उस सूती मिल के मालिकों में से एक थे। १८७० में ही अपना सारा समय अध्ययन और मार्क्स के साथ सहयोग में लगाने के लिए उन्होंने मैंचेस्टर छोड़ा था।

मैंचेस्टर में एंगेल्स मुख्यतः विल्हेल्म वोल्फ़, सैमुएल मूर और कार्ल शोर्लेम्मेर से ही मिलते-जुलते थे। कभी-कभी मार्क्स से मिलने लन्दन आ जाते थे, अथवा मार्क्स मैंचेस्टर चले जाते थे। लेकिन ऐसा अक्सर नहीं होता था और ये मुलाक़ातें लम्बे अर्से तक नहीं चलती थीं। लेकिन उनका पत्र-व्यवहार उतना ही अधिक विशद होता था...

मैंने १८५६ में एंगेल्स को एक पत्र लिखा था, जिसमें प्रसंगवश उनसे अपना एक फ़ोटो भेजने को कहा था। उस पत्र के बढ़िया जवाब के साथ फ़ोटो प्राप्त हुआ। उनके जवाबी पत्र को यहां उद्धृत करके मुझे ख़ुशी होती, लेकिन बहुत खोजने के बाद भी वह मिल नहीं रहा है।

१८७० की पतझड़ में एंगेल्स सपत्नीक लन्दन जाकर प्रिमरोज़ हिल के पासवाले प्रख्यात मकान में रहने लगे। वह मकान मार्क्स के घर के पास ही था और एंगेल्स उसमें अपनी मृत्यु के कुछ समय पहले तक रहते रहे।

१८७० में फ़्रान्सीसी-प्रशियाई युद्ध छिड़ गया, जिसमें एंगेल्स पूरी दिलचस्पी लेने लगे और फलतः उनका अधिकतर समय उसी के अध्ययन में बीतने लगा। उस युद्ध की बाबत *«Pall Mall Gazette»* में प्रकाशित उनके लेखों की बदौलत उन्हें "जनरल" उपनाम मिला और उनसे फ़ौजी मामलात में एंगेल्स की जानकारी सिद्ध हो गई। उन्होंने फ़्रान्सीसियों की अनेक हारों की भविष्यवाणी की। जब जर्मन फ़ौजें फ़्रान्सीसियों की उत्तरी सेना के गिर्द जमा हो रही थीं, तभी एंगेल्स ने *«Pall Mall Gazette»* में भविष्यवाणी कर दी थी कि अगर

फ्रेडरिक एंगेल्स, १८६८

हाइड पार्क मे लन्दन के मजदूरों का १८९२ का
पहली मई वाला प्रदर्शन, जिसमे
एंगेल्स और एल्योनोरा मार्क्स ने भाग लिया

एंगेल्स का जन्म-नगर बार्मेन

ईस्टबोर्न के पासवाला स्थान, जहां एंगेल्स के फूल
खुले समुद्र में विसर्जित किये गये

मैकमाहोन अपनी सेना के साथ दुश्मन की फ़ौजों को चीरकर बेल्जियम में नहीं घुस गए, तो निरन्तर अधिकाधिक तंगदायरे में कसती हुई जर्मन फ़ौजों का लौह घेरा उन्हें सेडान की घाटी में आत्मसमर्पण के लिए विवश कर देगा। दो हफ़्ते बाद ठीक ऐसा ही हुआ।

१८७१ में पेरिस कम्यून की पराजय के बाद अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर संघ की जनरल कौंसिल में, विशेषतः मार्क्स और एंगेल्स के लिए, परिस्थिति अत्यन्त कठिन और विक्षुब्ध हो गई। उस समय उन दोनों का काम बढ़ गया था, क्योंकि कम्यून के ऐसे बहुत-से उत्प्रवासी, जो इन्टरनेशनल के सदस्य थे, भाग कर लन्दन पहुंच गये थे।

उनमें से हंगरी के साथी लेओ फ़्रैंकेल को, जो कम्यून की सरकार के सदस्य थे और दियासलाई विक्रेता के रूप में प्रशियाई फ़ौजों की पांतें पार करके बच निकले थे, कदापि नहीं भूलना चाहिए। वे उन चन्द लोगों में से थे, जिन्हें मज़दूर आन्दोलन के लक्ष्यों की स्पष्ट जानकारी और चेतना थी। आम माफ़ी के बाद फ़्रैंकेल पेरिस लौट आए और फिर से अपना प्रचार-कार्य करने लगे। चन्द साल पहले पेरिस में उनका देहान्त हो गया। उनके निधन में मैंने एक निजी मित्र और पार्टी ने अपना एक श्रेष्ठतम सदस्य खो दिया। उनका नाम अमर रहेगा।

भिन्न-भिन्न रुझानों वाले कम्यून के उत्प्रवासी एक दूसरे का विरोध करते थे और कम्यून के पतन का दोष एक दूसरे के सिर मढ़ते थे। भग्न आशाएं और वे कठिन परिस्थितियां, जिनके प्रायः वे सभी शिकार हो गए थे, उनमें निरन्तर होनेवाले रगड़ों का मुख्य कारण थीं।

पूंजीवादी अख़बारों के नीचतापूर्ण हमले और कम्यून तथा उसके महत्त्व के सम्बन्ध में आम अनभिज्ञता के साथ साथ अराजकतावादियों के अत्याचारों की दुःखद स्मृति–ये सारी चीज़ें मिलकर मानो इन्टरनेशनल को ख़त्म करने की साज़िश रचे हुए थीं।

हेग कांग्रेस के फ़ैसले पर जनरल कौंसिल के न्यूयार्क में स्थानान्तरित किए जाने से मार्क्स को उनके अर्थशास्त्र सम्बन्धी अध्ययन के लिए अधिक समय मिलने लगा। वे अब अपने को पूरी तरह अपनी महान कृति 'पूंजी' के लेखन में लगा सकते थे। इन्टरनेशनल के काम का सारा बोझ एंगेल्स के कंधों पर आ पड़ा। तात्कालिक प्रश्नों पर अनेक लेखों के अलावा

'कम्युनिस्ट घोषणापत्र' के अनुवाद, उनके गाम संशोधन और सम्पादन के लिए भेजे जानेवाले अन्य अनुवादों और विशेष अवसरों के लिए पैम्फ़लेटों के लेखन में ही उनका अधिकतर समय ख़र्च होने लगा। इन सारे कामों के बावजूद उनका इतनी अधिक वैज्ञानिक कृतियों के प्रणयन के लिए भी समय निकाल सकना इस बात का प्रमाण है कि हमारे वृद्ध मित्र में कितनी प्रकाण्ड श्रमप्रियता और कार्यक्षमता थी...

१८७८ में एंगेल्स को बहुत भारी सदमा सहना पड़ा। उनकी पत्नी का, जो एक आयरी महिला थीं और फ़ीनियन आन्दोलन की प्राण रह चुकी थीं, देहान्त हो गया। उनका एक भी बच्चा नहीं था, इसलिए एंगेल्स के लिए पत्नी की मृत्यु एक गहरी चोट थी...

उसके बाद मार्क्स परिवार पर दुःख के बादल घिर आए: मार्क्स की बीमारी, उनकी पत्नी और पुत्री की बीमारी और उन दोनों की मृत्यु।

मार्च, १८८३ में मार्क्स की मृत्यु की ख़बर मिली, जो अप्रत्याशित न होते हुए भी कुछ कम दुःखद नहीं थी।

एंगेल्स ने मुझे यह पत्र भेजा था:

"लन्दन, १५ मार्च, १८८३

"प्रिय लेसनर,

"हमारे पुराने मित्र मार्क्स ने कल दिन के तीन बजे सदा के लिए शान्तिपूर्वक आंखें मूंद लीं। उनकी मृत्यु का तात्कालिक कारण संभवतः आंतरिक रक्तस्राव था।

"अन्त्येष्टि शनिवार को दिन के १२ बजे होगी। तुस्सी आपकी उपस्थिति के लिए प्रार्थना करती है।

"मैं बहुत जल्दी में हूं, इसके लिए क्षमा करें।

"आपका, फ़्रे० एंगेल्स।"

मार्क्स की मृत्यु के बाद हेलेन देमुत, जो श्रीमती मार्क्स के विवाह के समय से बरसों तक मार्क्स परिवार के समस्त सुख-दुख की भागीदार रही थी, एंगेल्स का घर चलाने लगी। वह ४ नवम्बर, १८९० को चल बसी। एंगेल्स के लिए वह बहुत बड़ी क्षति थी। सौभाग्यवश, उसके शीघ्र

ही बाद श्रीमती लुईज़ा फ़ाइबर्गर ने जो पहले श्रीमती काउत्स्की थीं, विएना से लन्दन आकर एंगेल्स की गृहस्थी संभाल ली।

कौन नहीं जानता कि एंगेल्स ने नए ट्रेड-यूनियन आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया और ८ घंटे के कार्य-दिवस के संघर्ष का समर्थन किया, यद्यपि वे स्वयं हर रोज़ १६ घंटे और रात को देर तक काम किया करते थे! अपने बुढ़ापे के बावजूद वे मई दिवस के उत्सवों में हमेशा उत्साहपूर्वक भाग लेते रहे, यहां तक कि ठेले पर भी चढ़ जाते थे, जो मंच का काम देता था। और एंगेल्स के मित्रों में से मई दिवस की शाम की उन दावतों को कौन भूल सकता है, जो आम तौर से सभाओं के बाद हुआ करती थीं?

एंगेल्स की जिन्दादिली और कार्यक्षमता में मृत्युपर्यन्त कोई कमी नहीं आई। विदेशी भाषाओं का उनका प्रकाण्ड ज्ञान तो सर्वविदित ही है। दस भाषाओं पर उनका पूर्ण अधिकार था। नार्वेई भाषा का अध्ययन तो उन्होंने ७० साल से अधिक का हो जाने के बाद शुरू किया, और सो भी इसलिए कि ईब्सेन और केल्लान्द की मूल रचनाओं को पढ़ सकें।

मार्क्स की तरह एंगेल्स भी सार्वजनिक सभाओं में बिरले ही भाषण करते थे। उनका अन्तिम सार्वजनिक भाषण १८९३ में हुआ। उन्होंने ज़ूरिख़ कांग्रेस में, विएना और बर्लिन में भाषण किया। जैसा कि उन्होंने मुझे बाद में बताया, ज़ूरिख़ में जिस प्रकार उनका स्वागत किया गया और आभार तथा प्रसन्नता की सहज अभिव्यक्ति देखने को मिली, उससे उनका हृदय गद्‌गद् हो उठा था। आस्ट्रिया, स्विट्ज़रलैण्ड तथा जर्मनी में उनका दौरा हमारे विचारों की विजय का द्योतक था और एंगेल्स अक्सर इस बात पर अफ़सोस किया करते थे कि मार्क्स इसे देखने के लिए जीवित नहीं रहे।

एंगेल्स की धैर्यशीलता और दृढ़ निश्चयता उनके अन्तिम समय तक क़ायम रही। अपने सभी व्यवहारों में वे सरल और निष्कपट रहे। किसी भी विषय का प्रश्न पूछा किया जाने पर, वे सदा संक्षिप्त और साधिकार उत्तर देते थे। चाहे किसी को पसन्द आये या न आये, वे अपनी राय लाग-लपेट के बिना प्रगट कर देते थे।

पार्टी की किसी बात से मतभेद होने पर वे फ़ौरन और निस्संकोच अपनी असहमति व्यक्त कर देते थे। ढुलमुलपन या समझौतेबाज़ी उनकी प्रकृति में ही नहीं थी...

बहुत सारे लोग उनसे मिलने आया करते थे, जिनमें पार्टी-साथियों के अलावा दूसरे लोग भी होते थे। जब ६ वीं दशाब्दी के अंत में *«Sozialdemokrat»* को जूरिख़ से लन्दन ले जाना पड़ा, तो मिलनेवालों की संख्या और भी बढ़ गयी। पर एंगेल्स की मेहमाननेवाज़ी में कोई अन्तर नहीं आया।

मार्क्स की मृत्यु के बाद मैं अधिक अक्सर एंगेल्स के यहां जाने लगा। मुझे उनका उतना ही अधिक विश्वास प्राप्त था, जितना मार्क्स का। जब उनसे मिलनेवालों की संख्या बहुत अधिक होती, तो मैं उनके पास कम जाता जिसपर वे फ़ौरन पूछते थे कि मैं इतना कम क्यों दिखलाई पड़ता हूं।

४

१८९५ की गर्मियों में एंगेल्स अपने स्वास्थ्य-सुधार के लिए अंतिम बार ईस्टबोर्न गए। लेकिन कोई सुधार नहीं हुआ और वे जुलाई के अन्त में वापस आ गए। तुस्सी उनके सम्बन्ध में बहुत चिन्तित थीं और उन्होंने पत्र द्वारा मुझे स्थिति की सूचना दी। मैंने निश्चय किया कि कुछ समय तक एंगेल्स से मिलने न जाऊं, ताकि वे अधिक बातचीत की परेशानी से बचे रहें। मुझे भय था कि मेरे मिलने से उन्हें प्रोद्दीपन होगा, क्योंकि वे स्वभाव से ही अत्यन्त उद्दीपनशील थे। फल यह हुआ कि उनकी लन्दन वापसी के बाद मैं अपने महान मित्र को जीवित देखने से वंचित रह गया।

५ अगस्त को मुझे बर्न्सटीन* ने ख़बर दी कि एंगेल्स की हालत बहुत ख़राब है और अगर मैं उन्हें मरने से पहले एक बार और देखना चाहता हूं तो झटपट आ जाऊं। फिर भी मुझे इस बात का आभास तक नहीं हुआ कि उनकी मौत इतनी निकट है और मैंने उनसे दूसरे दिन, ६ अगस्त को सुबह ही जाकर मिलने का निर्णय किया।

दूसरे दिन पहली ही डाक से श्रीमती फ़ाइबर्गर द्वारा यह ख़बर पाकर

---

* **बर्न्सटीन, एडुअर्ड (१८५०–१९३२) – जर्मन सामाजिक-जनवादी, एंगेल्स की मृत्यु के बाद पथ-भ्रान्त, मार्क्सवाद के संशोधक के रूप में सामने आया। – सं०**

मैं स्तब्ध रह गया कि हमारे मित्र ५ अगस्त की रात को ही, ११ और १२ बजे के बीच चल बसे थे।

यह दुःखद तथा अप्रत्याशित समाचार पाकर मुझपर क्या बीती, मैं शब्दों में इसे नहीं बता सकता...

मैं फ़ौरन उनके घर गया और पाया कि वे अपनी शैया पर उसी प्रकार मृत पड़े हुए हैं, जैसे हमारे मित्र मार्क्स १५ मार्च, १८८३ को पड़े हुए थे।

श्रीमती फ़ाइबर्गर, जो मुझे एंगेल्स के कमरे में ले गयीं, इतनी शोकाभिभूत थीं कि वे मुझसे एंगेल्स की अंतिम घड़ियों की बात नहीं कर पा रही थीं।

एंगेल्स की अंतिम इच्छा यह थी कि उनके फूल खुले समुद्र में विसर्जित कर दिए जाएं। २७ अगस्त को एल्योनोरा मार्क्स, डा० ए० एवेलिंग, ए० बर्न्सटीन और मैंने उनकी इस अंतिम इच्छा की पूर्ति की। हम एंगेल्स के ग्रीष्म-विश्राम के प्रिय स्थान, ईस्टबोर्न गए, वहां दो डांड़ों वाली एक नाव किराए पर ली और उसमें अपने अविस्मरणीय मित्र के फूलों का कलश रखकर नाव को खेते हुए प्रायः दो मील खुले समुद्र में ले गए। उस प्रवाह-यात्रा का मेरे मन पर जो प्रभाव पड़ा, उसे शब्दों में नहीं बयान किया जा सकता...

* * *

मार्क्स और एंगेल्स को दिवंगत हुए बरसों हो चुके हैं, लेकिन उनका कार्य अमर है। लाखों लाख मजदूर यह प्रदर्शित कर रहे हैं कि उनके उसूलों और इसी प्रकार उनकी कार्यनीति को समझा गया है, आत्मसात किया गया है और उनपर अमल किया जाता है और ऐसे मजदूरों की पांतें दिन-ब-दिन बढ़ रही हैं।

मेरे लिए यह अत्यधिक संतोष की बात है और मैं लाखों-लाख सर्वहारा के स्वर में स्वर मिलाकर इस घोषणा के साथ इन संस्मरणों को समाप्त करता हूं कि:

"आसन्न भविष्य समाजवादी आन्दोलन का है!"

फ़्रेडरिक अदोल्फ़ ज़ोर्गे

मार्क्स के सम्बन्ध में*

१४ मार्च, १८८३ को मुझे लन्दन से यह तार मिला :

"मार्क्स आज गुज़र गए। एंगेल्स।"

सर्वहारा वर्ग के संघर्ष का नेता, मज़दूर वर्ग की मुक्ति के हथियार गढ़नेवाला नहीं रहा। वह प्रकाण्ड प्रज्ञा, जो पूंजीवादी संसार के, तमिस्राजनित तथा तमिस्राजनक अज्ञान के निवारण और समस्त मानवजाति के निमित्त नए संसार, नए युग तथा नई स्थितियों की संभावनायें पैदा करने के लिए बिजलियां कौंधा रही थी, दिवंगत हो गई।

मार्क्स नहीं रहे और इस समाचार पर लाखों लाख लोगों ने शोक मनाया कि उनके सबसे बड़े वफ़ादार और विश्वासपात्र सलाहकार के दिल की धड़कन बन्द हो गई।

वैज्ञानिक मार्क्स ने, मज़दूर वर्ग के वकील मार्क्स ने क्या कुछ उपलब्ध किया, उसे न तो ताम्रपत्रों पर खुदवाने की आवश्यकता है और न दहकते शब्दों में बयान करने की। धातु या पत्थर का कोई स्मारक उसकी घोषणा नहीं करता, लेकिन सभी देशों और संसार के सभी भागों के सर्वहारा का

---

* ज़ोर्गे, फ़्रेडरिक अदोल्फ़ (१८२८–१९०६) – जर्मन कम्युनिस्ट, अमरीका में उत्प्रवासी; अमरीकी तथा अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर आन्दोलन में भाग लेनेवाले, मार्क्स और एंगेल्स के मित्र और सहकर्मी। ज़ोर्गे के संस्मरण १९०२ में प्रकाशित हुए। – सं०

असंख्य समवाय उसे महसूस करता है, जानता है और मार्क्स द्वारा उन्हें दिए गए इस महामंत्र—"दुनिया के मजदूरो, एक हो!" के तहत अपनी जुझारू पांतों की वृद्धि द्वारा सिद्ध करता है।

केवल कुछ ही लोग जानते हैं कि मार्क्स और उनकी वफ़ादार जीवन-संगिनी ने अपने विश्वासों के लिए क्या क़ुर्बानियां कीं। अपनी अमर कृतियों का प्रणयन करते हुए, विज्ञान की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण शाखाओं में नए पथ प्रशस्त करते हुए और सच्चे हृदय से मजदूर वर्ग की उन्नति की चेष्टा करनेवाले सभी लोगों को अपने परामर्श तथा कार्यों से सहायता देते हुए उन्होंने कितने अभाव और कितनी कठिनाइयां झेलीं!

इसके बावजूद मार्क्स को निरन्तर बदनाम किया गया, उनके इरादों और कार्यों पर कीचड़ उलीचा गया। यही कारण है कि आज से ५० साल पहले ७ नवम्बर, १८५३ को उनके तीन पुराने साथियों ने एक दस्तावेज प्रकाशित कराई, जिसके कुछ अंश यहां उद्धृत किए जा रहे हैं:

"जैसा कि सर्वविदित है, मार्क्स ने क्रान्ति के लिए अपनी क़ुर्बानियों की याद दिलाने को कभी एक पंक्ति भी नहीं लिखी। उलटे, टुटपुंजियों के दया-प्रदर्शन से अधिक उनका आक्रोश जागृत करनेवाली और कोई बात नहीं हो सकती थी... कम से कम पार्टी को यह मालूम तो हो जाना चाहिए कि उनपर किए गए हमलों का मूल्य क्या है।

"मार्क्स और एंगेल्स ने १८४३ से आज तक ब्रिटेन, बेल्जियम तथा पेरिस के कई पत्र-पत्रिकाओं के लिए मुफ़्त काम किया... अस्थायी सरकार के सदस्य फ़्लोकों ने दोनों को मनमानी रक़म देने का प्रस्ताव किया, लेकिन उन्होंने इनकार कर दिया। इतना ही नहीं, जैसा कि हम भली भांति जानते हैं, मार्क्स ने फ़रवरी क्रान्ति के भड़क उठने पर कई हज़ार निजी थालर ख़र्च कर दिये, जिनमें से कुछ तो ब्रसेल्स की आसन्न क्रान्ति के लिए मजदूरों को हथियारबन्द करने में लगे (जिसके लिए बेल्जियम के अधिकारियों ने उन्हें और उनकी पत्नी को क़ैद कर लिया), कुछ जर्मनी में क्रान्ति की तैयारी करने के लिए वहां भेजे गये मित्रों की मदद करने में और बाक़ी «*Neue Rheinische Zeitung*» की प्रारंभिक लागत में। मार्क्स ने १८४८ और १८४९ में इस अख़बार और क्रान्तिकारी प्रचार पर कोई ७,००० थालर ख़र्च कर दिए, जिनमें से कुछ तो उन्होंने और उनकी पत्नी

ने नक़द दिये और कुछ उनकी विरासत के रेहननामे के ज़रिए हासिल किये गये थे।

"यह कैसे हुआ कि अख़बार इस सरमाए का अधिकतर हिस्सा खा गया? शुरू में पत्तीदारों की संख्या बड़ी थी, लेकिन जब जून का विद्रोह हुआ और जर्मनी में आरंभतः उसका समर्थन करनेवाला एकमात्र अख़बार «*Neue Rheinische Zeitung*» ही रह गया, तो पूंजीवादी पत्तीदार स्वभावतः उससे अलग हो गए। उसके बाद कोलोन में घेरे की स्थिति घोषित होने पर टुटपुंजिया पत्तीदार भी छोड़ भागे। इसलिए मार्क्स ने अख़बार को अपनी 'निजी सम्पत्ति' के रूप में पत्तीदारों से ले लिया, यानी उन्होंने उसके सारे क़र्ज़ और उसकी सारी देनदारी अपने ऊपर ले ली... जब अख़बार फिर से अपना बोझ उठाने लायक़ हो गया, तो उसे ज़बर्दस्ती दबा दिया गया। मई, १८४९ में मार्क्स जब हैम्बर्ग के दौरे से वापस आए, तो उनके निर्वासन की आज्ञा उनकी पत्नी को प्राप्त हो चुकी थी।

"अख़बार बन्द कर दिया गया। उसकी सम्पत्ति-सूची में शामिल थे – १) एक भाप से चलनेवाली प्रेस, २) नए टाइपों से भरे कम्पोज़ीटरों के केस और ३) ग्राहकों के १,००० थालर चन्दे के पोस्टल आर्डर। मार्क्स ने वह सब कुछ अख़बार के क़र्ज़ों की अदायगी के लिए छोड़ दिया...

"३०० थालर क़र्ज़ लेकर उन्होंने कम्पोज़ीटरों और मुद्रकों का पावना चुकता किया और संपादकीय विभाग के सदस्यों को निकल भागने में सहायता की। एक धेला भी उनकी जेब में नहीं गया...

"इस प्रकार दुर्दशाग्रस्त होकर मार्क्स लन्दन पहुंचे और महज़ अपनी हिम्मत की बदौलत ही उस दुर्दशा से मुक्त हुए। अगर लन्दन पहुंचने के समय वे एकदम ख़स्ताहाल थे, तो इसलिए कि क्रान्ति को सब कुछ अर्पित कर आए थे। अगर वे और जल्दी अपनी हालत नहीं सुधार पाए, तो इसलिए कि वे मज़दूरों की निस्स्वार्थ सेवा करते थे... लन्दन में जब उनके एक बच्चे की मृत्यु हो गई, तो उनके पास अन्त्येष्टि तक के लिए पैसे नहीं थे...

"तो इस तरह मार्क्स बड़ी मुश्किल से महज़ गुज़ारा कर पाते थे और, इसके अलावा, पूंजीपति वर्ग की 'शिष्ट' धोखेबाज़ी का शिकार होते थे।

"अगर जर्मन मज़दूर पार्टी इस बात का मौक़ा देती है कि हर प्रकार के कमीने मार्क्स जैसे लोगों पर कीचड़ उलीचें – ऐसे लोगों पर, जिन्होंने उसके लिए केवल अपने श्रम तथा अपनी हैसियत की ही नहीं, बल्कि अपनी दौलत और अपने परिवार के सुख-चैन की भी क़ुर्बानी दी है, तब वह पार्टी हर किसी के सामने सज़ावार है।

"जो० वेडेमेयर,* अदोल्फ़ क्लुस्स**, डा० अ० जैकोबी***।"

मार्क्स पर महत्वाकांक्षा का आरोप और हृदयहीनता तथा अमानुषिक आचरण का दोष लगाया गया है। यह कितना अन्याय है!

उन्होंने न तो कभी महत्त्वाकांक्षा प्रदर्शित की और न प्रभुत्वशील होने का प्रयास किया। उन्होंने जो भी प्रभाव प्राप्त किया था, विशेषत: लन्दन की पुरानी जनरल कौंसिल में, जिसमें सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण दौर में चार-पंचमांश अंग्रेज़ और फ़ान्सीसी और केवल दो या तीन जर्मन सदस्य थे, उसका श्रेय मात्र उनके वरिष्ठ ज्ञान, उनके प्रकाण्ड पाण्डित्य, उनकी सर्वतोमुखी विद्वता तथा उनके उदात्त चरित्र को था।

मार्क्स पेरिस, ब्रसेल्स, कोलोन और लन्दन में मज़दूरों के बीच व्याख्यान देते थे, मजदूर समितियों में भाषण करते थे। जनरल कौंसिल में भी वे अपने विचारों और प्रस्तावों की, जो ही आम तौर से कौंसिल की आम नीति बनते थे, ऐसे सुपुष्ट तर्कों द्वारा व्याख्या करते थे कि उनकी सुसंगतता का लोहा उनके विरोधी तक भी मानते थे। युक्तिसंगतता के

---

* **वेडेमेयर, जोज़ेफ़** (१८१८–१८६६) – जर्मन तथा अमरीकी मज़दूर आन्दोलन के प्रख्यात नेता, जिन्होंने १८४८–१८४९ की जर्मन क्रान्ति तथा संयुक्त राज्य अमरीका के गृहयुद्ध में भाग लिया। मार्क्स और एंगेल्स के मित्र और सहकर्मी। – सं०

** **क्लुस्स, अदोल्फ़** – जर्मन इंजीनियर, कम्युनिस्ट लीग के सदस्य, १८४९ के बाद अमरीका में उत्प्रवासी। – सं०

*** **जैकोबी, अब्राहम** (१८३०–१९१९) – कम्युनिस्ट लीग के सदस्य, कम्युनिस्टों के कोलोन मुक़द्दमे के एक अभियुक्त, बाद में अमरीका में उत्प्रवासी। – सं०

अतिरिक्त उनकी उक्तियों में मार्मिकता भी होती थी। 'फ़्रान्स में गृहयुद्ध' के अंतिम वाक्य इस बात को चरितार्थ करते हैं।

उस असाधारण व्यक्ति के साथ तनिक भी निकट सम्बन्ध का सौभाग्य पानेवाले सभी लोग इस बात पर एकमत होंगे कि निजी सम्बन्धों में मार्क्स बहुत ही सौहार्दशील, सजीव और प्रीतिकर थे।

लेकिन ढोंगियों, ज्ञानहीन और दंभी व्यक्तियों के प्रति वे नितान्त निर्मम थे और ऐसे ही लोग मार्क्स के चरित्र को लांछित करते थे तथा उनकी "महत्त्वाकांक्षा" इत्यादि के क़िस्से-कहानियां गढ़ते और फैलाते थे।

जीवन की कठिनाइयों का मार्क्स जैसा अनुभव रखनेवाला कोई भी व्यक्ति दूसरों की सहायता के लिए सतत प्रस्तुत रहता और जब कभी भी संभव होता, सहायता करता। इसकी अनगिनत मिसालें दी जा सकती हैं, पर यहां एक ही पर्याप्त होगी। जुलाई १८७२ में जब अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर संघ के उत्तरी अमरीकी संघ की कांग्रेस का अधिवेशन समाप्त हुआ और उसने हेग कांग्रेस के लिए प्रतिनिधि चुने, तो एक मजदूर ने एक प्रतिनिधि को मार्क्स के लिए कुछ रक़म दी। वह राइनी प्रदेश का मजदूर था। उसे १८६४ या १८६५ में विवश होकर अपना घर-बार त्यागना पड़ा था और लन्दन पहुंचने पर उसके पास एक कानी कौड़ी भी नहीं थी। उसने अमरीका पहुंचने के लिए मार्क्स से सहायता करने की प्रार्थना की। मार्क्स ने उसकी सहायता की थी, यद्यपि तब ख़ुद उनकी भी कुछ अच्छी स्थिति नहीं थी।

जब कम्यून के उत्प्रवासी लन्दन पहुंचे, तो मार्क्स और उनके परिवार ने उनकी सहायता के लिए असाधारण प्रयास किए। आते-जाते उत्प्रवासियों के अतिरिक्त, उनके घर पर अक्सर प्रान्तों, मैंचेस्टर और लिवरपूल, लन्दन, यूरोप और अमरीका तथा अन्य सुदूर स्थानों से आए मजदूरों को देखा जा सकता था।

न० प० सिनेल्निकोव के नाम लिखित एक पत्र से*

१५ फ़रवरी, १८७३

विदेशों में मैंने अपना अधिकांश समय पेरिस या लन्दन में बिताया, जहां मैं रूस की तरह ही साहित्यिक रोज़ीनेदार की हैसियत से अपनी रोज़ी कमाता रहा। अपने अवकाश के समय में विदेश के मज़दूर आन्दोलन और सामाजिक जीवन के अन्य रुचिकर पक्षों का अध्ययन करता था।

अपने लन्दनवास के दौरान मैं कार्ल मार्क्स नामक एक सज्जन के सम्पर्क में आया, जो राजनीतिक अर्थशास्त्र के एक अधिकतम असाधारण लेखक और पूरे यूरोप में एक सर्वाधिक सुशिक्षित व्यक्ति हैं। कोई पांच साल पहले उन्हें रूसी भाषा पढ़ने की सूझी और वैसा करने के बाद उन्हें मिल्ल के प्रसिद्ध ग्रन्थ पर चेर्निशेव्स्की** की टीपें और उनके कुछ दूसरे लेख पढ़ने

---

* **लोपातिन, ग० अ०** (१८४५–१९१८) – रूसी क्रान्तिकारी, नरोदवादी, पहले इन्टरनेशनल की जनरल कौंसिल के सदस्य, मार्क्स परिवार के मित्र। यहां पूर्वी साइबेरिया के गवर्नर-जनरल न० प० सिनेल्निकोव के नाम इर्कूत्स्क जेलख़ाने से लोपातिन द्वारा लिखित एक पत्र का अंश दिया जा रहा है। – सं०

** **चेर्निशेव्स्की, निकोलाई गव्रीलोविच** (१८२८–१८८९) – महान रूसी क्रान्तिकारी जनवादी, भौतिकवादी दार्शनिक, वैज्ञानिक, समीक्षक और लेखक। यहां 'राजनीतिक अर्थशास्त्र पर जॉन स्टुअर्ट मिल्ल के पहले ग्रन्थ में योग और टीपें' नामक नि० चेर्निशेव्स्की की पुस्तक का हवाला है। – सं०

को मिले। मार्क्स ने उन लेखों को पढ़ा और वे चेर्निशेव्स्की के लिए अत्यधिक सम्मान भावना अनुभव करने लगे। उन्होंने मुझे कई बार बताया कि चेर्निशेव्स्की ही वास्तविक मौलिक विचार रखनेवाले एकमात्र तत्कालीन अर्थशास्त्री हैं, जबकि सभी दूसरे वस्तुतः महज़ संकलनकर्त्ता हैं; कि चेर्निशेव्स्की की कृतियां मौलिकता, चिन्तन-शक्ति और गहनता से भरपूर हैं और उस विज्ञान पर वे ही एकमात्र ऐसी कृतियां हैं, जो सचमुच पढ़ने और अध्ययन किये जाने के योग्य हैं। उन्होंने कहा कि रूसियों को इस बात के लिए शर्म आनी चाहिए कि अब तक उनमें से एक ने भी ऐसे असाधारण विचारक से यूरोप को परिचित करने की परवाह नहीं की और चेर्निशेव्स्की की राजनीतिक मृत्यु न केवल रूस के, बल्कि पूरे यूरोप के विज्ञान जगत के लिए भारी क्षति है। यद्यपि उस समय भी मैं राजनीतिक अर्थशास्त्र पर चेर्निशेव्स्की की कृतियों का बड़ा आदर करता था, तथापि उस क्षेत्र में मेरा ज्ञान इतना काफ़ी विस्तृत नहीं था कि उनके मौलिक और दूसरे लेखकों से लिए गये विचारों का अन्तर समझ सकता। स्वभावतः मार्क्स जैसे योग्यतावाले विवेचक की ऐसी राय ने चेर्निशेव्स्की के प्रति मेरे सम्मान को बढ़ा दिया। और जब मैंने लेखक के रूप में उनके बारे में व्यक्त की गई इस राय को उनके चरित्र की महान श्रेष्ठता तथा आत्मोत्सर्ग के बारे में ऐसे लोगों से सुनी रायों के साथ जोड़ा, जो उनसे घनिष्ठ रूप से परिचित थे और जो कभी भी अगाध भावप्रवणता के बिना उनकी चर्चा ही नहीं कर सकते थे, तब मेरे मन में उस महान सार्वजनिक लेखक तथा नागरिक को, जिसपर मार्क्स के ही शब्दों में रूस को गर्व होना चाहिए, फिर से दुनिया के सामने लाने की ज्वलन्त चाह पैदा हुई। मेरे लिए यह विचार असह्य था कि रूस का एक महानतम नागरिक, अपने युग का एक अधिकतम असाधारण विचारक जिसे रूस का आराध्य होना चाहिए था, वह साइबेरिया के किसी बदबख़्त कोने में दफ़्न रहकर यातना का व्यर्थ, दुर्दशाग्रस्त जीवन भोगता रहे। मैं शपथपूर्वक कहता हूं कि अगर मैं समर्थ होता और उस क़ुर्बानी द्वारा अपने देश की प्रगति के हेतु के एक अधिकतम प्रभावशाली पक्षधर को उस हेतु के निमित्त लौटा सकता, तो उनके साथ स्थान-परिवर्तन के लिए जैसे आज तैयार हूं वैसे ही बिना किसी हिचक के उस समय भी तैयार था। मैं एक क्षण को भी हिचके बिना और वैसी

ही सहर्ष तत्परता के साथ ऐसा करता, ठीक उसी तरह जैसे कोई सैनिक अपने प्रिय सेनापति की रक्षा के लिए अपने प्राणों की बलि दे देता है। लेकिन वह रोमानी सपना कभी भी सत्य नहीं होना था। इसके साथ ही उस समय मेरा ख़याल था कि उस व्यक्ति की सहायता करने का एक दूसरा अधिक व्यावहारिक और उपयुक्त तरीक़ा है।* वैसी परिस्थितियों में अपने निजी अनुभव और दूसरों के बारे में सुनी कई मिसालों के आधार पर मैं समझता था कि ऐसे उपक्रम में तत्त्वतः कुछ भी असंभव नहीं है; आवश्यकता केवल कुछ निर्भीकता और थोड़े पैसों की है। अतः उसके फ़ौरन ही बाद मैंने पीटर्सबर्ग के अपने दो निजी मित्रों को लिखकर सहायता मांगी और उन्होंने मुझे आवश्यक धन देना स्वीकार कर लिया और लिखा कि सफलता की सूरत में रक़म लौटा दी जाये अन्यथा उसकी बाबत सब कुछ भूल जायेंगे। जब मैं पीटर्सबर्ग से गुज़रा, तो उस रक़म में वहां के मेरे तीन और मित्रों ने कुछ-कुछ बढ़ती कर दी और कुल मिलाकर १०८५ रूबल हो गए।

लन्दन से रवाना होते समय मैंने किसी को यह तक नहीं बताया कि मैं कहां जा रहा हूं। मेरे इरादे को उन पांच व्यक्तियों के सिवा, जिनके साथ मैं इस सम्बन्ध में पत्रव्यवहार कर चुका था और जिनसे मुझे पैसे प्राप्त हुए थे, अन्य कोई नहीं जानता था। कुछ संयोगवश परिस्थितियों के कारण, जो ज़िक्र के क़ाबिल नहीं हैं, जेनेवा में एल्पीदिन भी मेरा इरादा पहले से ही जान गए थे। मार्क्स के साथ अपनी घनिष्ठता और उनके प्रति अपने प्रेम तथा सम्मान के बावजूद, मैंने उन से भी अपने इस इरादे की चर्चा नहीं की। मुझे यक़ीन था कि वे मुझे पागल समझेंगे, मुझे समझा-बुझाकर रोकने की कोशिश करेंगे और मुझे पूर्व सुविचारित कारंवाई से मुंह मोड़ना पसन्द नहीं है।

चेर्निशेव्स्की के सम्बन्धियों अथवा 'सोव्रेमेन्निक' (समकालीन) कर्मचारी-मण्डल में उनके मित्रों से परिचित न होने के कारण मैं ठीक-ठीक यह भी नहीं जानता था कि वे कहां पर हैं। साइबेरिया में कोई परिचित अथवा वहां के

---

*लोपातिन का इरादा चेर्निशेव्स्की को कालेपानी से भगा ले जाने का था।—सं०

लिए कोई परिचय पत्र न होने के कारण मुझे इर्कूत्स्क में लगभग एक महीना गुज़ारना पड़ा और तब जाकर मुझे सब कुछ पता लगा। इर्कूत्स्क में उस लम्बे पड़ाव के साथ मुझसे हुई कुछ ज़बर्दस्त ग़लतियों और कुछ ऐसी परिस्थितियों से, जो मेरे वश के बाहर थीं, स्थानीय प्रशासन का ध्यान मुझपर केन्द्रित हो गया। अगर मैं ग़लती नहीं करता, तो मेरी असफलता में एल्पीदिन के अविवेक ने भी अधिक हाथ बंटाया, क्योंकि उन्होंने जेनेवा में रहनेवाले एक सरकारी गुप्तचर को साइबेरिया के लिए मेरी रवानगी की ख़बर दे दी। बात चाहे जो भी हो, मुझे गिरफ़्तार कर लिया गया और मैंने अपने को चौथी बार जेल में पाया। यह समझकर कि मेरा प्रयास निष्फल गया और मेरे लिए संभाव्य भविष्य कुछ विशेष सुखकर नहीं है और यह भी देखते हुए कि इसी उम्मीद से अदालती कार्रवाई मुलतवी की जा रही है कि मैं कुछ इक़बाली बयान दूंगा, जो मुझे नहीं करना चाहिए था, मैंने फ़रार होने की कोशिश की, मगर नाकाम रहा और इर्कूत्स्क की जेल में डाल दिया गया।*

---

*लोपातिन ने इर्कूत्स्क जेल से ३ जून, १८७१ को भाग निकलने की पहली असफल कोशिश की, और सिर्फ़ दूसरी बार, १० जुलाई, १८७३ को ही वे सफल रहे। अगस्त १८७३ में लोपातिन पेरिस पहुंच चुके थे।–सं०

एक घटनापूर्ण जीवन पर विहंगम दृष्टि*

१६ जून, १८४३ को मेरी शादी हुई।

हम एवर्नबर्ग होते हुए क्रेयत्स्नाख़ से फ़ाल्त्स गए और बादेन-बादेन होते हुए वापस लौटे। उसके बाद हम सितम्बर के अन्त तक क्रेयत्स्नाख़ में रहे। मेरी प्यारी मां मेरे भाई एडगर के साथ त्रियेर लौट गईं। कार्ल के साथ मैं अक्तूबर में पेरिस पहुंची, जहां हेर्वेग** अपनी पत्नी के साथ हमसे मिले।

पेरिस में कार्ल और रूगे ने *«Deutsch-Französische Jahrbücher»* का सम्पादन किया, जिसके प्रकाशक जुलियस फ़्रोबेल थे। पत्रिका पहले ही अंक के बाद बन्द हो गयी। हम सेंट-जर्में में बानो सड़क पर रहते थे। हमारी नन्ही जेनी १ मई, १८४४ को पैदा हुई। उसके बाद मैं लाफ़ीत के दफ़नाये जाने के दिन पहली बार घर से बाहर निकली और उसके ६

---

*यहां कार्ल मार्क्स की पत्नी जेनी मार्क्स की आत्मकथात्मक टीपों के कुछ अंश दिये गये हैं, जो सिर्फ़ १८६५ तक के हैं। ये टीपें प्रकाशनार्थ नहीं लिखी गयी थीं, इसलिये काफ़ी सुसम्बद्ध नहीं हैं, फिर भी वे मार्क्स के व्यक्तित्व-चित्रण के लिये तथा मार्क्स परिवार की कठिन आर्थिक परिस्थितियों को स्पष्ट करने की दृष्टि से दिलचस्प हैं।–सं०

**हेर्वेग, गेओर्ग (१८१७–१८७५)–प्रसिद्ध जर्मन कवि, निम्नपूंजीवादी जनवादी।–सं०

हफ़्ते बाद घोड़ा डाकगाड़ी से अपने बेहद बीमार बच्चे को लेकर त्रियेर आई . . .

एक जर्मन धाय के साथ सितम्बर में मैं पेरिस लौटी। उस समय तक नन्ही जेनी के चार दांत निकल आए थे।

मेरी अनुपस्थिति में कार्ल के पास फ़्रेडरिक एंगेल्स एक बार आ चुके थे। एक दिन १८४५ के शुरू में यकायक हमारे घर पर पुलिस कमिश्नर आ धमका और उसने प्रशियाई सरकार की दर्ख़ास्त पर गीज़ो द्वारा जारी किया गया निर्वासन का हुक्मनामा दिखाया। उसमें लिखा था: "कार्ल मार्क्स २४ घंटे के भीतर जरूर पेरिस छोड़ दें।" मुझे कुछ अधिक मुहलत दी गई, जिसका इस्तेमाल मैंने अपना फ़र्नीचर और कुछ कपड़े बेचने में किया। उनके दाम मुझे हास्यास्पद रूप से कम मिले, लेकिन यात्रा के लिए पैसे तो जुटाने ही थे। दो दिन तक मैं हेर्वेग परिवार की मेहमान रही। बीमार और कड़ाके की सर्दी में फ़रवरी के शुरू में मैं कार्ल के पीछे-पीछे ब्रसेल्स पहुंची। वहां हम बूआ सोवाज होटल में ठहरे, जहां मैं पहले पहल हाइन्त्सेन और फ़ाइलिग्राथ से मिली। मई में हम पोर्ते दु लूवें के पीछे आल्यंस सड़क पर डा० ब्रोएर से किराए पर लिए गए एक छोटे-से मकान में उठ आए।

हम यहां जमे ही थे कि एंगेल्स भी वहां आ गए। थोड़े ही दिन बाद अपनी पत्नी के साथ हेस पहुंच गए और कोई एक सेबास्तियन ज़ाइलर भी यहां के छोटे-से जर्मन हल्के में आ मिले। उन्होंने एक संवाद ब्यूरो खोल लिया और हमारी छोटी-सी जर्मन बस्ती यहां आनन्दपूर्वक रहने लगी।

उसके बाद कुछ बेल्जियमी, जिनमें जीगो भी थे, और कुछ पोल भी हमारे साथ आ मिले। वहीं एक साफ़-सुथरे कॉफ़े में, जहां हम शाम को जाया करते थे, मेरा प्रथम परिचय नीली कुर्ती धारी बूढ़े लेलेवेल* के साथ हुआ।

---

*लेलेवेल, जोहम (१७८६–१८६१)–प्रख्यात पोल क्रान्तिकारी, जिन्होंने १८३०–१८३१ के पोल विद्रोह में भाग लिया, बाद में पोलैण्ड से उत्प्रवासी।–सं०

गर्मियों के दौरान कार्ल के साथ एंगेल्स जर्मन दर्शन की आलोचना पर काम करते रहे। उक्त आलोचना एक विस्तृत कृति थी और वेस्टफ़ेलिया में प्रकाशित होने को थी।

वसन्त में जोज़ेफ़ वेडेमेयर हमसे पहले पहल मिलने आए और कुछ दिन हमारे मेहमान रहे। अप्रैल में मेरी प्यारी मां ने अपनी निजी और विश्वस्त सेविका को मेरी सहायता के लिए ब्रसेल्स भेज दिया। मैं उनके साथ चौदह महीने की जेनी को लेकर एक बार फिर मां से मिलने गई। मां के पास ६ हफ़्ते रही और २६ सितम्बर को लौरा के जन्म से दो हफ़्ते पहले अपनी छोटी-सी जर्मन बस्ती में लौट आई। मेरे भाई एडगर ने ब्रसेल्स में काम पाने की आशा में जाड़े हमारे साथ गुज़ारे। वे ज़ाइलर के संवाद ब्यूरो में काम करने लगे। बाद को, १८४६ के वसन्त में हमारे प्रिय विल्हेल्म वोल्फ़ भी ब्यूरो में दाखिल हो गए। वे साइलेसिया के एक क़िले से निकल भागे थे, जहां छपाई का क़ानून भंग करने के कारण ४ साल से बन्द थे और "काज़ेमात्तेनवोल्फ़" के नाम से प्रसिद्ध थे। उनके हमारे बीच आने से हम लोगों के प्रिय "लुपुस"* के साथ उस घनिष्ठ मित्रता का आरंभ हुआ, जो मई १८६४ में उनकी मृत्यु के साथ ही समाप्त हुई।

इस बीच क्रान्ति के तूफ़ानी बादल उमड़-घुमड़ कर अधिकाधिक घने होते गए थे। बेल्जियमी क्षितिज भी अन्धकारमय था। सत्ता सबसे अधिक तो मज़दूरों, जनता के सामाजिक अंशकों से, डरती थी। पुलिस, फ़ौज, नागरिक गार्ड, सभी को रक्षा के लिए बुला लिया गया था, सभी को जंगी कारंवाई के लिए तैयार रखा जाता था। तभी जर्मन मज़दूरों ने फ़ैसला किया कि उनके लिए भी अपने को हथियारबन्द करने का समय आ गया है। तलवारें, रिवाल्वरें आदि हासिल की गईं। इसके लिए कार्ल ने ख़ुशी से पैसे दिए, क्योंकि उन्हें इन्हीं दिनों अपना विरासती हिस्सा प्राप्त हुआ था। इन सारी बातों में सरकार को साज़िश और मुजरिमाना योजनाएं दिखा दीं: मार्क्स को पैसे मिलते हैं और वह उनसे हथियार ख़रीदता है, इसलिए उससे पिंड छुड़ाना ही चाहिए। काफ़ी रात गये दो व्यक्ति हमारे

---

* लुपुस – विल्हेल्म वोल्फ़। जर्मन भाषा में «wolf» का अर्थ है भेड़िया, लैटिन भाषा में «lupus» भेड़िया होता है। – सं०

घर में घुस आए। उन्हें कार्ल की जरूरत थी। उनके सामने आने पर उन दोनों ने अपने को पुलिस सर्जेन्ट बताया और कहा कि उनके पास कार्ल को गिरफ्तार करके पूछ-ताछ के लिए ले जाने का वारंट है। वे कार्ल को ले गए। मैं बहुत ही चिन्ताकुल होकर प्रभावशाली लोगों के यहां यह पता लगाने के लिए भागी कि आखिर मामला क्या है। मैं अंधेरे में घर-घर दौड़ रही थी कि अचानक एक गार्ड ने मुझे पकड़ लिया और गिरफ़्तार करके एक अंधेरे क़ैदख़ाने में डाल दिया गया। वहां बेघर-बार कंगले, लावारिस आवारे और किस्मत की मारी पतित महिलाएं रखी जाती थीं। मुझे एक काल-कोठरी में ठूंस दिया गया। जब मैं सिसकती हुई उसमें दाख़िल हुई, तो बदनसीबी की शिकार एक सहवासिनी ने मुझे अपनी सोने की जगह पेश कर दी। वह सख़्त तख़्तों की बनी चौकी थी, जिसपर मैं लेट गई। सुबह की रोशनी फूटते ही अपने सामने की खिड़की पर लोहे की छड़ों के पीछे मुझे एक मुरझाया-सा ग़मगीन चेहरा दिखाई पड़ा। मैं खिड़की पर गई और अपने नेक पुराने दोस्त जीगो को पहचान गई। मुझे देखकर उन्होंने नीचे की तरफ़ देखने का संकेत किया। मैंने उस दिशा में निगाह डाली तो देखा कि कार्ल को फ़ौजी पहरे में ले जाया जा रहा था। एक घंटे बाद मुझे भी पूछ-ताछ करनेवाले मैजिस्ट्रेट के सामने पेश किया गया।

दो घंटे की पूछ-ताछ के बाद, जिसके दौरान उन्हें शायद ही मुझसे कुछ सूचना प्राप्त हुई होगी, पुलिसवालों ने मुझे एक बग्घी तक पहुंचा दिया और शाम के क़रीब मैं अपने बेचारे तीनों नन्हे-नन्हे बच्चों के पास पहुंच गई। इस घटना से भारी सनसनी फैल गई। सभी अख़बारों में इसकी चर्चा हुई। कुछ समय बाद कार्ल को भी रिहा कर दिया गया और फ़ौरन ब्रसेल्स छोड़ देने का हुक्म मिला।

वे पहले ही पेरिस लौटने का इरादा कर चुके थे और लुई फ़िलिप की सरकार द्वारा जारी किए गए अपने निर्वासन-आदेश को रद्द करने के लिए फ़्रान्स की अस्थायी सरकार के पास दर्ख़ास्त भेज चुके थे। उन्हें तत्काल ही फ़्लोकों के दस्तख़त से एक पत्र मिला, जिसमें बहुत ही चिकने-चुपड़े शब्दों में अस्थायी सरकार द्वारा उक्त हुक्म की मंसूख़ी की सूचना दी गई थी। इस प्रकार हमारे लिए पुनः पेरिस का दरवाज़ा खुल गया था और हमारे लिए नई क्रान्ति के चढ़ते हुए सूरजवाले देश से बेहतर और

कौनसी जगह हो सकती थी? हमें वहीं जाना था, बस वहीं! मैंने जल्दी-जल्दी अपना सामान बांधा, जो कुछ बेच सकी वह बेच दिया, लेकिन अपनी चांदी की सारी चीजों और सबसे बढ़िया कपड़ों से भरी पेटियां ब्रसेल्स में ही पुस्तक-विक्रेता फ़्योग्लर की सुपुर्दगी में छोड़ दीं, जो हमारी विदाई की तैयारी के दौरान ख़ास तौर से अनुग्रहशील तथा सहायता-तत्पर रहे थे।

इस प्रकार तीन साल तक ब्रसेल्स में रहने के बाद हम वहां से विदा हुए। बहुत ही उदास और ठंडा दिन था। हमारे लिए बच्चों को गरम रखना बहुत मुश्किल हो रहा था। सबसे छोटा बच्चा सिर्फ़ एक साल का था...

* * *

मई १८४६ के अन्त में कार्ल ने *«Neue Rheinische Zeitung»* का लाल स्याही में छपा हुआ आख़िरी अंक, सुप्रसिद्ध "लाल अंक", जो रंग-रूप और पाठ्य-सामग्री दोनों की दृष्टि से जलती हुई मशाल की तरह था, निकाला। एंगेल्स तत्काल ही बादेन के विद्रोह में शरीक हुए थे, जिसमें वे विलिख़ के एजीटांट थे। कार्ल ने कुछ समय के लिए फिर पेरिस चले जाने का फ़ैसला किया, क्योंकि जर्मनी में बने रहना उनके लिए असंभव हो गया था।* लाल वोल्फ़ भी उनके पीछे पीछे पेरिस पहुंच गए। मैं अपने तीनों बच्चों के साथ अपनी पुरानी जन्म-नगरी को देखने और अपनी प्यारी मां से मिलने के विचार से बिंगेन होती हुई वहां गई। बिंगेन से मैं थोड़े समय के लिए फ़्रैंकफ़ुर्त-आन-में चली गई, ताकि ब्रसेल्स के गिरवीदार से उन्हीं दिनों छुड़ाई गई चांदी की चीजों को नक़द मुद्रा में बदल लूं। वेडेमेयर और उनकी पत्नी ने हमें फिर आतिथ्य प्रदान किया और गिरवीदार के साथ निबटने में मेरी बड़ी सहायता की। इस प्रकार फिर मैंने यात्रा के लिए धन जुटा लिया।

---

*चूंकि मार्क्स ने १८४५ में अपनी प्रशियाई नागरिकता त्याग दी थी, इसलिए उससे फ़ायदा उठाकर वहां की सरकार ने उन्हें "आतिथ्य का क़ानून" भंग करनेवाले "विदेशी" के रूप में मई १८४६ में निर्वासित कर दिया।—सं०

लाल वोल्फ़ के साथ कार्ल फ़ाल्त्स और वहां से पेरिस गये। प्रतिक्रिया अपनी समस्त प्रचण्डता के साथ सर्वत्र खुल खेली। हंगरियाई क्रान्ति, वादेनी विद्रोह, इतालवी विप्लव – सभी पराभूत हो गए। हंगरी और वादेन में फ़ौजी अदालतों का वोलवाला था। लुई नेपोलियन के सत्ताकाल में, जो १८४८ के अन्त में बेहद बहुमत द्वारा राष्ट्रपति निर्वाचित हुए थे, ५०,००० फ़्रान्सीसी "सात पहाड़ियों के नगर" में दाखि़ल हो गए और इटली पर क़ब्ज़ा कर लिया।* विजयोल्लास में प्रतिक्रान्ति के आदर्श नारे थे: "वार्सा में व्यवस्था का बोलवाला है" और "पराजितों की मुसीबत आई"। पूंजीपति वर्ग ने राहत की सांस ली, टुटपुंजिया वर्ग फिर अपने कारोबार में लग गया, उदारतावादी दक़ियानूसी छुटभैये जेबों में घूंसे तानकर रह गये, मज़दूरों का पीछा किया गया, उन्हें दमन का शिकार बनाया गया और जिन लोगों ने ग़रीबों और उत्पीड़ितों के राज के लिए तलवार और क़लम से संघर्ष किया था, वे विदेशों में अपना पेट पालने के योग्य होकर ही ख़ुश थे।

कार्ल ने पेरिस में रहते हुए मज़दूर क्लबों और मज़दूरों के गुप्त संगठनों के अनेक नेताओं के साथ सम्पर्क स्थापित कर लिया। मैं उनके पीछे जुलाई १८४९ में पेरिस पहुंची और हम वहां एक महीना रहे। लेकिन हमें वहां भी चैन नहीं मिलना था। एक दिन वही परिचित पुलिस सर्जेन्ट फिर आया और हमें सूचित कर गया कि "कार्ल मार्क्स और उनकी पत्नी २४ घंटे के भीतर पेरिस छोड़ दें"। दया प्रदर्शित करते हुए कार्ल को मोर्बिआन के अन्तर्गत वान्न में शरणार्थी की हैसियत से रहने की इजाज़त दे दी गई। ज़ाहिर है कि कार्ल इस प्रकार का निर्वासन नहीं स्वीकार कर सकते थे। मैंने लन्दन में पक्के आश्रय-स्थल की तलाश के लिए फिर अपना बोरिया-बंधना समेटा।

कार्ल वहां मुझसे पहले पहुंचे। जब मैं अपने तीन छोटे-छोटे, मासूम और उत्पीड़ित बच्चों के साथ बीमार और थकी-मांदी वहां पहुंची, तो वे

---

*यहां रोम गणराज्य के ख़िलाफ़ १८४९ में हुए सशस्त्र फ़्रान्सीसी हस्तक्षेप की ओर इशारा है। उसका लक्ष्य पोप की धर्मेतर सत्ता की बहाली था। – सं०

मुझे लेने आए और हमें लिसेस्टर स्क्वेयर में एक दर्जी के वोर्डिंग हाउस में ठहराया। हमने शीघ्र ही चेल्सी में अधिक बड़ा मकान ढूंढा, क्योंकि वह समय नजदीक आता जा रहा था, जब मेरे लिए शान्तिमय साया ज़रूरी था। ५ नवम्बर को*, जब सड़क पर लोग "गैंयस फ़ॉक्स ज़िन्दाबाद" के नारे लगा रहे थे और नक़ली चेहरे लगाए हुए छोटे-छोटे लड़के चतुराई से बनाये गये गधों के पुतलों पर गश्त लगा रहे थे, तब उसी शोर-शराबे के बीच मेरा बेचारा नन्हा हाइनरिख़ पैदा हुआ।

महान षड्यंत्रकारी के सम्मान में हमने उसे "नन्हे फ़ॉक्स" का नाम दिया। उसके थोड़े ही दिन बाद बादेन से फ़रार एंगेल्स भी जेनोआ होते हुए लन्दन पहुंच गए...

हज़ारों उत्प्रवासी रोजाना लन्दन आते थे। उनमें से कुछ के पास ही अपने कोई साधन होते थे। सभी कमोवेश दारुण अभाव के शिकार होते थे, जिन्हें सहायता की आवश्यकता और अपेक्षा रहती थी। वह हमारे उत्प्रवासी जीवन की एक कठिनतम मुद्दत थी। उनकी सहायता के लिए उत्प्रवासी कमिटियां स्थापित की गईं, सभाएं आयोजित की गईं, अपीलें निकाली गईं, कार्यक्रम तैयार किए गए, बड़े-बड़े जुलूस निकाले गये। सभी उत्प्रवासी हल्क़ों में विरोध पैदा हो गये। विभिन्न पार्टियों में धीरे-धीरे पूरी फूट पड़ गई। यहां तक कि जर्मन जनवादी और समाजवादी बाक़ायदा अलग हो गये और कम्युनिस्ट मज़दूरों के बीच भी स्पष्ट दरार पड़ गई...

१८४९ की पतझड़ में ही कार्ल ने लन्दन में सम्पादित और हैम्बर्ग से प्रकाशित एक नई पत्रिका निकालने के लिए बातचीत शुरू कर दी थी। अनगिनत कठिनाइयों के बाद *«Revue der Neuen Rheinischen Zeitung»* नाम से पत्रिका के ३ या ४ अंक निकले। पत्रिका बहुत सफल रही, लेकिन पुस्तक विक्रेता, जो जर्मन सरकार के हाथ बिक गया था, उसके कारोबारी पहलू के प्रति इतना उदासीन और निकम्मा साबित हुआ कि यह बात शीघ्र ही प्रत्यक्ष हो गई कि पत्रिका को अधिक दिन जारी नहीं रखा जा सकता।

---

*५ नवम्बर को इंगलैंड में "बारूद षड्यन्त्र" का दिन प्रतिवर्ष मनाया जाता था।—सं०

१८५० के वसन्त में हमें अपना चेल्सी वाला मकान छोड़ने के लिए बाध्य होना पड़ा। मेरा बेचारा नन्हा फ़ॉक्स बराबर बीमार रहता था और दैनिक जीवन की चिन्ताएं मेरे स्वास्थ्य को भी नष्ट किये दे रही थीं। सभी तरह से सते-सताए और लेनदारों से परेशान हम एक हफ़्ते तक लिसेस्टर स्क्वेयर के एक जर्मन होटल में ठहरे। हम वहां अधिक नहीं रह सके। एक दिन सुबह हमारे मेहरबान मेजबान ने हमें नाश्ता देने से इनकार कर दिया और हमें विवश होकर अपने लिए दूसरा वासा तलाश करना पड़ा। मेरी मां से मिलनेवाली अल्प सहायता अक्सर हमें कटुतम अभावों से बचा लेती थी। एक यहूदी लेस व्यापारी के घर में हमें दो कमरे मिले जहां हमने चारों बच्चों के साथ कष्टमय गर्मियां बिताईं।

उस साल की पतझड़ में कार्ल और उनके कुछ निकटतम मित्रों ने उत्प्रवासियों की कार्रवाइयों से पूरी तरह नाता तोड़ लिया और उसके बाद से उनके किसी भी प्रदर्शन में भाग नहीं लिया। वे मजदूर शिक्षा समिति से भी अलग हो गये... लन्दन में लेखादि लिखकर जीविका उपार्जन की नाकाम कोशिशों के बाद एंगेल्स बहुत सख़्त शर्तों पर अपने पिता की सूती मिल में क्लर्क की हैसियत से काम करने मैंचेस्टर चले गए। हमारे दूसरे सब दोस्त शिक्षण-कार्य इत्यादि करके अपना ख़र्च चलाने की कोशिश करते रहे। वह और आगामी दो साल हमारे लिए अधिकतम कठिनाइयों, निरन्तर भारी चिन्ताओं, नाना प्रकार की जबर्दस्त महरूमियों तथा वास्तविक अभावों के साल थे।

अगस्त १८५० में अपनी ख़राब तन्दुरुस्ती के बावजूद मैंने अपने बीमार बच्चे को छोड़कर कार्ल के चाचा से सान्त्वना तथा सहायता पाने की आशा से हॉलैण्ड जाने का फ़ैसला किया। मैं पांचवें बच्चे की आमद और भविष्य की चिन्ता से विक्षुब्ध थी। कार्ल के चाचा अपने और अपने लड़कों के कारोबार पर क्रान्ति के प्रतिकूल प्रभाव के कारण बहुत खिन्न थे। क्रान्ति और क्रान्तिकारियों के प्रति उनमें कटुता पैदा हो गई थी। उन्होंने मुझे सहायता देने से बिलकुल इनकार कर दिया। लेकिन जब मैं वहां से चलने को हुई, तब उन्होंने मेरे सबसे छोटे बच्चे के लिए एक उपहार मुझे बरबस पकड़ा दिया और मैंने देखा कि उन्हें इस बात से कितना दर्द हुआ कि वे मुझे और अधिक न दे सके। बुजुर्ग यह नहीं महसूस कर सके कि मैं कितने

भारी मन से उनसे विदा हुई। मैं निराश-क्षुब्ध घर लौटी। बेचारा नन्हा एडगर अपने हर्षोत्फुल्ल चेहरे से उछलता हुआ मेरे स्वागत को लपका और मेरे नन्हे फ़ॉक्स ने मेरी ओर अपनी नन्ही-नन्ही बाहें फैला दीं। उसके लाड़-प्यार का सुख मुझे अधिक दिन नहीं प्राप्त हो सका। बच्चा फेफड़ों के शोथ की ऐंठन के दौरे से नवम्बर में मर गया। मुझे दारुण दुःख हुआ। मैंने यह अपना पहला बच्चा खोया था। उस समय मुझे इस बात का गुमान तक नहीं था कि अभी और ऐसे दुःख भोगने पड़ेंगे, जिनके सामने अन्य सभी दुःख नगण्य प्रतीत होंगे। उस बच्चे को दफ़नाने के शीघ्र ही बाद हम उस छोटे-से मकान को छोड़कर उसी सड़क पर एक दूसरे मकान में चले गए...

२८ मार्च, १८५१ को हमारी बेटी फ़ान्सिस्का का जन्म हुआ। हमें उस मुन्नी-सी बेचारी को एक धाय को सौंप देना पड़ा, क्योंकि छोटे-छोटे कमरों में और बच्चों के साथ उसे पालना हमारे लिए संभव नहीं था... १८५१ और १८५२ हमारे लिए घोरतम और साथ ही क्षुद्रतम परेशानियों, चिन्ताओं, निराशाओं और नाना प्रकार की महरूमियों के साल थे।

१८५१ की गर्मियों के शुरू में एक ऐसी घटना हुई, जिसका मैं ब्योरेवार वर्णन नहीं करना चाहती, हालांकि उससे हमारी निजी तथा अन्य प्रकार की चिन्ताएं बहुत बढ़ गयीं। वसन्त में प्रशियाई सरकार ने कार्ल के सभी राइन प्रान्तीय मित्रों पर बेहद ख़तरनाक क्रान्तिकारी कुचक्र रचने का आरोप लगाकर उन्हें जेलों में ठूंस दिया, जहां उनके साथ बेहद दरिन्दगी का व्यवहार किया गया। १८५२ के अन्त तक खुली अदालत में मुक़दमा नहीं चलाया गया। वही था कोलोन के कम्युनिस्टों का प्रसिद्ध मुक़दमा। डैनिएल्स और जैकोबी को छोड़कर बाक़ी सभी अभियुक्तों को ३ से ५ साल तक की क़ैद की सजा दे दी गई...

• • •

शुरू में मार्क्स के सेक्रेटरी डब्लू० पीपेर थे, लेकिन शीघ्र ही वह पद मैंने संभाल लिया। कार्ल के छोटे-से अध्ययनकक्ष में उनके लेखों की गिचपिच पाण्डुलिपि की नक़लें उतारने में मैंने जो दिन बिताए, मेरी स्मृति में वे मेरे जीवन के पुण्यतम दिनों के रूप में अंकित हैं।

१८५१ के अन्त में लुई नेपोलियन ने राज्य का तख़्ता पलटा और उसके अगले साल कार्ल ने अपनी 'अठारहवीं ब्रूमेर' लिखी, जो न्यूयॉर्क से प्रकाशित हुई। वह पुस्तक उन्होंने डीन स्ट्रीट के हमारे छोटे-से मकान में बच्चों के शोर-गुल और गृहस्थी के झमेलों के बीच लिखी थी। मैंने मार्च तक पाण्डुलिपि की नक़ल तैयार करके उसे भेज दिया, लेकिन वह काफ़ी दिन बाद छपकर निकली और उससे हमें प्रायः कुछ भी प्राप्ति नहीं हुई।

१८५२ में ईस्टर के दिन हमारी नन्ही फ़ान्सिस्का को सख़्त ब्रांकाइटिस हो गई। तीन दिन तक वह ज़िन्दगी और मौत के बीच पड़ी रही। उसे भयानक कष्ट सहन पड़ा। उसके मर जाने पर उसके नन्हे-से निर्जीव शरीर को पीछे के कमरे में छोड़कर हम आगे के कमरे में आ गये और रात को वहीं फ़र्श पर अपने बिस्तर लगा लिए। हमारे तीनों जीवित बच्चे हमारे पास लेटे थे और हम सभी उस नन्ही प्यारी बच्ची के लिए रोते रहे, जिसकी निर्जीव जर्द लाश साथ के कमरे में पड़ी हुई थी। उस प्यारी बच्ची की मृत्यु कठोरतम अभावों के दौरान हुई, ठीक उस समय जब हमारे जर्मन मित्र हमारी सहायता करने में असमर्थ थे। एर्नेस्ट जोन्स ने, जो उन्हीं दिनों हमारे यहां अक्सर और देर-देर के लिए आया करते थे, हमारी सहायता करने का वायदा किया, लेकिन वे भी कुछ नहीं कर सके... बहुत भारी मन से मैं झटपट एक फ़ान्सीसी उत्प्रवासी के यहां गई, जो हम से बहुत दूर नहीं रहते थे और हम लोगों से मिलने आया करते थे। मैंने उनसे उस भयानक विपत्ति में सहायता की याचना की और उन्होंने अत्यन्त मैत्रीपूर्ण सहानुभूति के साथ मुझे फ़ौरन दो पौण्ड दे दिए। उस धन का उपयोग उस ताबूत का दाम अदा करने में किया गया, जिसमें मेरी बच्ची चिरशांति की गोद में लेटी हुई है। जन्म लेने पर उसे पालना नहीं नसीब हुआ और बहुत समय तक वह अंतिम विश्राम-स्थल से भी वंचित रही। कितने दुःखी मन से हमने उससे विदा ली!

कम्युनिस्टों का मुक़दमा, जो अब विख्यात हो चुका है, अगस्त १८५२ में ख़त्म हुआ। कार्ल ने प्रशियाई सरकार की नीचता का पर्दाफ़ाश करते हुए एक पैम्फ़लेट लिखा, जिसे शाबेलित्स ने स्विट्ज़रलैण्ड में छपवाया। लेकिन प्रशियाई सरकार ने उसे सरहद पर ज़ब्त करके नष्ट करवा दिया।

क्लुस ने उसे फिर अमरीका में छपवाया और उस नए संस्करण की बहुतेरी प्रतियां यूरोप भर में वितरित हुईं।

१८५३ में कार्ल नियमित रूप से *«New York Tribune»* के लिए दो लेख लिखते रहे। उन लेखों ने अमरीका में सनसनी पैदा कर दी। उनसे होनेवाली नियमित आमदनी की बदौलत हम किसी हद तक अपने पुराने क़र्ज़े अदा करने और कम चिन्तामय जीवन बिताने में समर्थ हो गए। बच्चे अच्छे ढंग से बड़े हो रहे थे। उनका शारीरिक और मानसिक दोनों रूपों में विकास हो रहा था, हालांकि हम अभी तंग मकान में ही रह रहे थे...

उस साल का बड़ा दिन ही वह पहला उत्सव था, जिसे हमने लन्दन में आनन्दपूर्वक मनाया। *«New York Tribune»* के साथ कार्ल के सम्बन्ध की बदौलत हमें रोज़-रोज़ की कष्टदायक चिन्ताओं से मुक्ति मिल गई थी। बच्चे प्रायः गर्मियां भर पार्कों की ताज़ा हवा में वक़्त गुज़ारते रहे। उस साल हमारे यहां चेरियां, स्ट्राबेरियां और यहां तक कि अंगूर भी आए। बड़े दिन को हमारे मित्र हमारे तीनों बच्चों के लिए तरह-तरह के ख़ुशनुमा तोहफ़े – गुड़ियां, बन्दूकें, रसोई के बर्तन, ढोल और तुरहियां – लाये। शाम को द्रोंके* बड़े दिन का फ़र वृक्ष सजाने आए। वह बहुत ही सुखद संध्या थी।

एक सप्ताह बाद एडगर में उस असाध्य रोग के प्रथम लक्षण प्रगट हुए, जो एक साल बाद उसकी मृत्यु का कारण बना। अगर हम उस समय अपने उस छोटे स्वास्थ्यघातक मकान को छोड़कर उसे किसी समुद्र तटी स्थान पर ले जा सकते, तो संभव था कि वह बच जाता। लेकिन जो गुज़र गया उसे लौटाया नहीं जा सकता।

सितम्बर १८५५ में हम यह पक्का इरादा करके डीन स्ट्रीट के अपने पुराने हेडक्वार्टर पर लौट आए कि ज्यों ही एक छोटी-सी अंग्रेज़ी विरासत की बदौलत नानबाई, कसाई, ग्वाले, किराने और सब्ज़ीवाले तथा अन्य

---

* द्रोंके, एर्नेस्ट (१८२२–१८९१) – जर्मन सार्वजनिक लेखक, *«Neue Rheinische Zeitung»* का एक सम्पादक, १८४८–१८४९ की क्रान्ति के बाद राजनीतिक गतिविधियों से अलग। – सं०

सभी "शत्रुशक्तियों की" जंजीरों और बन्धनों से मुक्त हो जाएंगे, त्यों ही वहां से उठ जाएंगे। आख़िर १८५६ के वसन्त में हमें मुक्ति दिलानेवाली छोटी-सी रक़म प्राप्त हुई। हमने अपने सारे क़र्ज़े चुकाए, गिरवीदार से अपनी चांदी की चीज़ें और कपड़े-लत्ते छुड़ाए और नए कपड़ों से सज-धजकर बच्चों को साथ लिये हुए मैं अन्तिम बार अपने प्यारे पुराने जन्म-घर को रवाना हो गई...

उस साल का जाड़ा हमने घोर एकाकीपन में बिताया। हमारे लगभग सभी मित्र लन्दन छोड़ चुके थे और जो बच गए थे वे हमारे घर से बहुत दूर रहते थे। इसके अलावा, यद्यपि हमारा छोटा-सा सुन्दर मकान पहले के मकानों की तुलना में हमारे लिए एक महल के समान था, फिर भी उस तक पहुंचना आसान नहीं था। वहां चारों तरफ़ नई तामीरें हो रही थीं, ढंग की सड़क नहीं थी, ढेरों मलबे को लांघना पड़ता था और बरसात में चिपचिपी लाल मिट्टी की परतें जूतों पर इस तरह जम जाती थीं कि बड़ी कशमकश के बाद ही बोझिल पांवों से हमारे घर पहुंचा जा सकता था। फिर उन वीरान हलक़ों में घुप अंधेरा भी रहता था। इसलिए मलबे, कीचड़-मिट्टी और कंकड़-पत्थर के ढेरों से जूझने की अपेक्षा हर कोई गरम अंगीठी के पास बैठकर शामें गुज़ारना कहीं बेहतर समझता था।

उस जाड़े में मैं बहुत बीमार रही और दवाओं की बोतलों से घिरी रहती थी। बहुत समय के बाद ही मैं उस एकाकीपन की आदी हो सकी। मुझे वेस्ट-एन्ड की भीड़ भरी सड़कों की अभ्यस्त लम्बी सैरों, सभाओं, क्लबों, सुपरिचित आपानशाला और उन हार्दिक वार्तालापों का अभाव अक्सर खलता था, जिनसे कुछ समय के लिए जीवन की चिन्ताओं को भूल जाने में मुझे अक्सर सहायता मिलती थी। सौभाग्यवश मुझे *«Tribune»* को भेजे जानेवाले लेखों की नक़ल हफ़्ते में दो बार अब भी उतारनी पड़ती थी, जिसकी बदौलत संसार की घटनाओं से मेरा सम्पर्क बना रहता था।

१८५७ के मध्य में अमरीकी मजदूरों को एक और बड़े व्यापारिक संकट का सामना करना पड़ा। *«Tribune»* ने फिर से हफ़्ते में दो लेखों के हिसाब से पारिश्रमिक अदा करने से इनकार कर दिया, जिसके फलस्वरूप हमारी आमदनी फिर से बहुत कम हो गयी। सौभाग्यवश उस समय दाना एक विश्वकोश प्रकाशित कर रहे थे, जिसके लिए कार्ल से सैनिक तथा

आर्थिक प्रश्नों पर लेख लिखने का प्रस्ताव किया गया। लेकिन चूंकि यह काम बड़ा अनियमित था और बढ़ते हुए बच्चों और अपेक्षाकृत बड़े मकान के कारण ख़र्चे बढ़े हुए थे, इसलिए हमारा यह समय किसी भी रूप में ख़ुशहाली का नहीं था। वास्तविक अभाव तो नहीं था, लेकिन हम निरन्तर तंगी में और छोटे-छोटे अन्देशों और हिसाबों से परेशान रहते थे। ख़र्चों में बहुत कतर-ब्योंत के बावजूद हम उन्हें आमदनी के अनुकूल कभी नहीं बना पाते थे और हमारे क़र्ज़े दिन-ब-दिन और साल-ब-साल बढ़ते जाते थे...

६ जुलाई को हमारी सातवीं सन्तान पैदा हुई, लेकिन कुछ ही सांसें लेने के लिए। इसके बाद वह क़ब्रिस्तान में अपने भाई-बहनों के पास पहुंच गई...

१८६० के बसन्त में एंगेल्स के पिता की मृत्यु हो गई। उसके बाद एंगेल्स की आर्थिक स्थिति काफ़ी सुधर गई, हालांकि वे हर्मेन के साथ १८६४ तक के प्रतिकूल समझौते से बंधे रहे। १८६४ से एंगेल्स हिस्सेदार के रूप में कारोबार के संचालक बन गए।

अगस्त १८६० में मैंने फिर बच्चों के साथ हेस्टिंग्स में एक पखवारा बिताया। लौटने पर मैंने कार्ल द्वारा फ़ोग्ट तथा उनके साथियों के ख़िलाफ़ लिखी गयी किताब की नक़ल उतारना शुरू कर दिया। वह लन्दन में छपी और बहुत दौड़-धूप के बाद कहीं उस साल के अन्त तक जाकर प्रकाश में आई।

उस समय मैं चेचक से बहुत बीमार रही थी और उस भयानक रोग से इतनी ही स्वस्थ हो पाई थी कि अपनी आधी अंधी आंखों से 'श्री फ़ोग्ट' को पढ़ सकूं। वह बहुत ही मुसीबत का समय था। तीनों बच्चों को वफ़ादार लीब्कनेख़्त के यहां शरण और आतिथ्य प्राप्त हो गया था।

ठीक उसी समय उस महान अमरीकी गृहयुद्ध के प्रारंभिक पूर्वलक्षण प्रगट हुए, जो आगामी बसन्त में छिड़ने को था। पुराने यूरोप और उसके तुच्छ, पुराने ढंग के छोटे-मोटे झंझटों में अमरीका की दिलचस्पी नहीं रह गई थी। «*Tribune*» ने कार्ल को सूचना दी कि आर्थिक कारणों से वह सभी संवादपत्रों से इन्कार करने को मजबूर है और इसलिए अभी उनके सहयोग की आवश्यकता नहीं है। यह चोट इस कारण और भी अधिक महसूस हुई कि आमदनी के अन्य सभी स्रोत पूर्णतः सूख गए थे और कुछ भी काम प्राप्त करने के सारे प्रयत्न असफल साबित हो चुके थे। सबसे

बुरी बात तो यह थी कि यह पूर्ण असहायावस्था ठीक उस समय शुरू हुई, जब हमारी बड़ी बेटियों ने प्रारंभिक यौवन की सुन्दर सुनहरी आयु में क़दम रखे। इस प्रकार हम फिर से दस साल पहले झेली गई मुसीबतों, परेशानियों और महरूमियों के शिकार हो गए। अन्तर केवल यह था कि तब ५ और ६ साल की बच्चियों ने अचेतन रूप से उन्हें झेला था और अब १५ और १६ साल की उम्र में सब कुछ की चेतना रखते हुए उन्हें झेलना था। इस तरह हमने इस जर्मन कहावत की सचाई व्यवहारत: समझी कि "छोटे बच्चे – छोटी परेशानियां और बड़े बच्चे–बड़ी परेशानियां"। १८६० की गर्मियों में हमने इक्कॅरियस को दो महीने के लिए अपने यहां रखा, क्योंकि वह बहुत बीमार था।

१८६१ के वसन्त में कार्ल जर्मनी गए, क्योंकि आर्थिक सहायता प्राप्त करना नितान्त आवश्यक हो गया था। प्रशिया के "प्रतिभाशाली" कहलानेवाले बादशाह की बड़े दिन पर मृत्यु हो गई थी और उनकी गद्दी "सुन्दर विल्हेल्म"* को प्राप्त हुई थी। कार्पोरल ने आम माफ़ी की घोषणा की। कार्ल ने जर्मनी जाकर देश के नए जीवन को देखने के लिए इस अवसर का उपयोग किया। वे बर्लिन में लासाल के घर ठहरे और काउन्टेस हात्सफ़ेल्द्त** से अक्सर मिलते रहे। उसके बाद वे अपने चाचा लेओन फ़िलिप्स से मिलने हालैण्ड गए। चाचा ने सच्ची सदाशयता के साथ उन्हें बिना व्याज के ख़ासी रक़म उधार दे दी। कार्ल ठीक उस दिन जाक फ़िलिप्स फ़ॉन बोम्मेल के साथ घर लौटे, जिस दिन जेनी की १७वीं सालगिरह थी। उधार की रक़म की बदौलत हमारी नाज़ुक नैया भंवर से निकल आई थी और हम कुछ समय तक आनन्द से तिरते रहे, यद्यपि सदा ही जलाच्छादित चट्टानों और उथली रेतियों के बीच, कॅरिब्डिआ और सिल्ला के बीच, डांवांडोल रहे।

हमारी बड़ी बेटियों ने १८६० की गर्मियों में स्कूल की पढ़ाई समाप्त की और कालेज में केवल ऐसे विषयों के क्लासों में जाती रहीं, जो कालेज

---

*प्रशिया के फ़ेडरिक विल्हेल्म चतुर्थ १८६१ में मर गए और विल्हेल्म प्रथम सिंहासनासीन हुए।–सं०

**लासाल की मित्र तथा सहपक्षी।–सं०

से बाहर के विद्यार्थियों के लिए होते थे। वे श्री कोल्म ग्रौर श्री माजोनी से फ्रान्सीसी ग्रौर इतालवी भाषाएं पढ़ती रहीं ग्रौर जेनी १८६२ तक श्री ग्रोल्डफ़ील्ड से ड्राइंग सीखती रही। पतझड़ में लड़कियों ने श्री हेनरी वैनर से गाना सीखना शुरू किया...

१८६३ के वसन्त भर जेनी वहुत बीमार ग्रौर निरन्तर डाक्टरों के इलाज में रही। कार्ल भी बेहद ग्रस्वस्थ थे। वे १८५० से नियमित रूप से हर साल एंगेल्स से मिलने जाते थे ग्रौर इस बार भी गए। वहां से लौटने पर भी उनका स्वास्थ्य कुछ वेहतर नहीं था। हमने फिर हैस्टिंग्स में समुद्र तट पर तीन हफ़्ते बिताए, जिनमें से १२ दिन वैनर के साथ रहे। कार्ल हमें लेने ग्राए, पर उनका स्वास्थ्य बहुत गिरा हुग्रा नज़र ग्राया ग्रौर उनकी तबीयत लगातार ख़राब रही। ग्रन्त में उस साल के नवम्बर में यह पता चला कि वे जहरबाद नामक भयानक रोग से ग्रस्त हैं। उसी महीने की १० तारीख़ को भयंकर फोड़े को चीरा गया, लेकिन उसके बाद भी बहुत दिनों तक उनका जीवन ख़तरे में रहा। स्वस्थ होने में पूरे चार हफ़्ते लगे ग्रौर उन्हें घोर शारीरिक कष्ट सहना पड़ा, जिसके साथ मर्मभेदी मानसिक यंत्रणाएं भी जुड़ी रहीं। डाक्टर ने कहा कि जलवायु-परिवर्तन से कार्ल को बहुत लाभ होगा ग्रौर उनकी सलाह के ग्रनुसार, ग्रभी पूरी तरह स्वस्थ हुए बिना ही, कार्ल बीच जाड़े में हमारी चिन्तामिश्रित हार्दिक शुभकामनाग्रों के साथ त्रियेर में ग्रपनी मां के उत्तराधिकार की व्यवस्था करने के निमित्त जर्मनी के लिए रवाना हो गए। वहां वे ग्रपनी बहन एमिली ग्रौर बहनोई कोन्रादी के साथ ठहरे ग्रौर फिर ग्रपनी बूग्रा से मिलने फ़्रैंकफ़ुर्त गए। वहां से वे ग्रपने चाचा के यहां बोम्मेल गए। उनके चाचा ग्रौर नेत्त्खेन ने उनकी बहुत ग्रच्छी देखभाल की, क्योंकि उनकी बीमारी ग्रभी समाप्त नहीं हुई थी ग्रौर दुर्भाग्यवश उनके बोम्मेल पहुंचते ही फिर बुरी तरह से उभर ग्रायी, जिसके लिए डाक्टरी देखभाल ग्रौर साव-धान परिचर्या की ग्रावश्यकता हुई। फलतः उन्हें बड़े दिन से लेकर १६ फ़रवरी तक मजबूरन हालैण्ड में रुकना पड़ा।

वह एकाकी उदास जाड़ा कितना भयानक था! उत्तराधिकार में ग्रपने भाग के रूप में जो नक़द रक़म कार्ल लाए, उसने हमें ऋणों ग्रौर गिरवीदारों, इत्यादि से मुक्ति पाने में समर्थ बनाया। सौभाग्यवश हमें एक

बहुत सुन्दर और हवादार मकान मिल गया, जिसे हमने बहुत आरामदेह और अपेक्षाकृत शांजन ढंग मे सजाया। १८६४ के ईस्टर पर हम खुले और रौशन कमरों वाले उस सुहावने धूपदार मकान में उठ गए।

२ मई, १८६४ को हमें एंगेल्स के पत्र से सूचना मिली कि हमारे नेक और वफ़ादार पुराने दोस्त लुपुस बहुत बीमार हैं। कार्ल झटपट उनसे मिलने को रवाना हो गये और उनके वफ़ादार दोस्त ने उन्हें दम भर को पहचान भी लिया। लुपुस ने ६ मई को सदा के लिए आंखें मूंद लीं। अपने वसीयतनामे में उन्होंने गौण अंश के कुछ अन्य अधिकारियों के साथ मुझे, कार्ल और हमारे बच्चों को अपना मुख्य उत्तराधिकारी नामजद किया था। केवल तभी पता चला कि उस सरल, सीधे-सादे ढंग से रहनेवाले व्यक्ति ने अपने अत्यधिक उद्यम तथा प्रयास से १,००० पौण्ड की ख़ासी रक़म बचा रखी थी। उन्हें बुढ़ापे में शान्तिपूर्वक और आरामदेह ढंग से अपने परिश्रम का फल-लाभ नहीं बदा था। उससे उन्होंने हमें सहायता, सुविधा और एक वर्ष की निश्चिन्तता प्रदान की।

कार्ल के स्वास्थ्य को ध्यान में रखते हुए, जो अब भी डांवांडोल था, उनके लिए गर्मी में समुद्रतट पर जाना नितान्त आवश्यक हो गया था। वे जेनी के साथ रैम्सगेट चले गए। कुछ समय बाद लौरा और तुस्सी भी वहां पहुंच गईं...

उस साल के दौरान कार्ल अपनी अर्थशास्त्र सम्बन्धी बड़ी कृति* के लिए प्रकाशक प्राप्त करने में सफल हो गए। हैम्बर्ग में माइस्नेर ने ख़ासी अनुकूल शर्तों पर उसे प्रकाशित करने का वायदा किया। कार्ल उस पुस्तक को समाप्त करने के लिये जोरशोर के साथ काम करने लगे...

---

* 'पूंजी'। – सं०

जोज़ेफ़ वेडेमेयर के नाम जेनी मार्क्स का पत्र

२० मई, १८५०

प्रिय श्री वेडेमेयर,

तब से एक साल होने को आ रहा है, जब मुझे आपका और आपकी प्रिय पत्नी का इतना मैत्रीपूर्ण और हार्दिक आतिथ्य प्राप्त हुआ था, जब आपके यहां रहते हुए मैंने घर जैसा आराम महसूस किया था। इस पूरी मुद्दत में मैंने अपने अस्तित्व का कोई लक्षण नहीं प्रदर्शित किया है। आपकी पत्नी ने मुझे कैसे अपनेपन के साथ पत्र लिखा, लेकिन मैंने उत्तर नहीं दिया और आपके बच्चे के जन्म का समाचार पाकर भी मैं मौन हो रही। मेरा यह मौन मेरे लिए अक्सर बोझिल रहा है, लेकिन अधिकतर समय मैं लिखने में असमर्थ रही हूं और आज भी मुझे यह कठिन लग रहा है, बहुत कठिन।

लेकिन परिस्थितियां मुझे क़लम उठाने को विवश कर रही हैं। प्रार्थना है कि *«Revue»* से जो भी रक़म मिली हो, या मिलनेवाली हो, वह **यथासंभव शीघ्र भेजें।** हमें उसकी **बहुत ही आवश्यकता** है। हम पर निश्चय ही यह लांछन कोई नहीं लगा सकता कि हम बरसों से जो क़ुर्बानियां कर रहे हैं और मुसीबतें झेल रहे हैं, उनका कभी कोई दिखावा किया गया है। हमारी परिस्थितियों की जनता को बहुत कम, या बिलकुल नहीं के बराबर जानकारी है। मेरे पति ऐसे मामलों में बहुत संवेदनशील हैं और वे आधिकारिक रूप से मान्य "महापुरुषों" के जनवादी भिक्षाटन की अपेक्षा

अपनी अंतिम कौड़ी तक क़ुर्बान कर देना बेहतर समझेंगे। लेकिन वे अपने मित्रों से, विशेषतः कोलोन के मित्रों से, अपने «*Revue*» के लिए सक्रिय और जोरदार सहायता की अपेक्षा रख सकते थे। वे ऐसी सहायता की अपेक्षा सबसे पहले वहां से रख सकते थे, जहां «*Neue Rheinische Zeitung*» के लिए उनकी कुर्बानियां सर्वविदित हैं। लेकिन इसके बजाए लापरवाही और बुरे प्रबन्ध के कारण कारोबार बिलकुल तबाह हो गया है और यह कहना कठिन है कि पुस्तक-विक्रेता, प्रबन्धकर्त्ताओं अथवा कोलोन के परिचितों की टालमटोल या जनवादियों का आम रुख़ इस तबाही के लिए अधिक दोषी रहा है।

यहां मेरे पति जीवन की छोटी-छोटी चिन्ताओं से प्रायः अभिभूत हैं जिन्होंने ऐसा घिनौना रूप ग्रहण कर लिया है कि इस रोज़-रोज़ के, हर घड़ी के संघर्ष में अपने को क़ायम रखने में ही उनकी सारी शक्ति, उनके स्वाभिमान की सारी शान्त, स्पष्ट और नीरव चेतना लग जाती है। प्रिय वेडेमेयर, आप अख़बार के लिए मेरे पति द्वारा की गई कुर्बानियों को जानते हैं। जब उसकी सफलता की प्रायः कोई आशा नहीं रह गई थी, तब उन्होंने उसमें हज़ारों की रक़म लगाई, उन्होंने ऐसे नेक जनवादियों की प्रेरणा से उसका मालिक बनना स्वीकार कर लिया, जिन्हें अन्यथा ख़ुद उसके क़र्ज़ों के लिए जवाबदेह होना पड़ता। अख़बार की राजनीतिक और कोलोन के अपने परिचितों की नागरिक प्रतिष्ठा की रक्षा करने के लिए उन्होंने पूरी ज़िम्मेदारी अपने ऊपर ले ली। उन्होंने अपनी छपाई की मशीन बिकवा दी, सारी आमदनी क़ुर्बान कर दी और नई इमारत का किराया और सम्पादकों को बक़ाया तनख़ाह आदि चुकाने के लिए वहां से हटने के पहले ३०० थालेर उधार तक लिये – यह सब बावजूद इसके कि उन्हें बलपूर्वक निष्कासित किया जाता था। आप जानते हैं कि हमने अपने लिए कुछ भी नहीं रखा। मैं चांदी की अपनी आख़िरी चीज़ें गिरवी रखने फ़ैंकफ़ुर्त गई। मैंने कोलोन में अपना फ़र्नीचर बिकवा दिया, क्योंकि मेरे कपड़े-लत्ते तक के कुर्क हो जाने का ख़तरा था। प्रतिक्रान्ति के दुर्भाग्यपूर्ण दौर के शुरू में मेरे पति पेरिस चले गए, जिनके पीछे-पीछे अपने तीनों बच्चों को लेकर मैं भी वहां पहुंची। लेकिन वे वहां अभी जमे ही थे कि उन्हें निर्वासित कर दिया गया और मुझे तथा मेरे बच्चों को भी उसके बाद वहां

कार्ल मार्क्स, १८६७

जेनी मार्क्स

कार्ल मार्क्स की बेटी लौरा

कार्ल मार्क्स अपनी सबसे बड़ी बेटी जेनी के साथ

रहने की इजाज़त नहीं दी गई। मैं उनके पीछे-पीछे ब्रिटेन पहुंची। एक महीने बाद हमारी चौथी संतान पैदा हुई। तीन संतानों का होना और चौथी को जन्म देना क्या अर्थ रखता है, इसे समझने के लिए लन्दन और वहां की परिस्थितियों को जानना ज़रूरी है। हमें ४२ थालेर प्रति मास केवल किराए के ही देने पड़ते थे। हम अपने को मिलनेवाली रक़म में से वह सब कुछ अदा कर सकते थे, लेकिन *«Revue»* के प्रकाशन के साथ हमारे स्वल्प साधन चुके गए। राज़ीनामे के बावजूद हमें पैसे नहीं दिए गए और अगर दिए भी गए, तो थोड़ा-थोड़ा करके, जिससे हम यहां विकटतम स्थिति में पड़ गए।

मैं किसी अतिरंजना के बिना अपने यहां के जीवन के एक दिन का विवरण दूंगी, और आप देखेंगे कि शायद बहुत कम उत्प्रवासियों ने ऐसा कुछ भी झेला होगा। यहां चूंकि धायें बहुत महंगी हैं, इसलिए सीने और पीठ में निरन्तर भयानक दर्द के बावजूद मैंने नई सन्तान को अपना ही दूध पिलाने का निश्चय किया। लेकिन बेचारे शिशु ने दूध के साथ इतनी अधिक परेशानी और दमित चिन्ता पी ली कि ख़ुद लगातार बीमार और दिन-रात तीव्र पीड़ा से ग्रस्त रहने लगा। दुनिया में आने के बाद से कभी भी रात भर नहीं सोया, अधिक से अधिक दो या तीन घंटे और सो भी कभी-कभार ही सोया है। हाल में उसे सख़्त ऐंठन भी हुई थी और वह निरन्तर जीवन और मृत्यु के बीच झूलता रहा है। अपनी पीड़ा में उसने मेरी छाती को इतने जोर से चूसा कि वह छिल गयी, खाल फट गई और उसके कांपते नन्हे मुंह में अक्सर ख़ून ढलने लगा। एक दिन मैं इसी प्रकार उसे लेकर बैठी हुई थी कि हमारे मकान की प्रबन्धिका आ गई। हम उसे जाड़ों में २५० थालेर अदा कर चुके थे और उससे इस बात का क़रार हो चुका था कि बाक़ी रक़म उसे नहीं, बल्कि मकान-मालिक को अदा की जाएगी, जो उसके ख़िलाफ़ क़ुर्कीनामा हासिल कर चुका था। वह क़रार से मुकर गई और हमसे बक़ाया ५ पौण्ड की मांग की। चूंकि हमारे पास उस समय पैसे नहीं थे (नाउट का पत्र उसके बहुत बाद आया), इसलिए दो क़ुर्क-अमीन हमारी सारी स्वल्प सम्पत्ति – बिस्तरे, कपड़े-लत्ते – सब कुछ, यहां तक कि मेरे बेचारे बच्चे का पालना और ज़ार-ज़ार रोती हुई मेरी बेटियों के बेहतरीन खिलौने भी क़ुर्क कर गए। उन्होंने दो घंटे में आकर सब कुछ

उठा ले जाने की धमकी दी। उस सूरत में मुझे दुखती छाती के साथ अपनी ठिठुरती सन्तानों को लेकर फ़र्श पर सोना पड़ता। हमारे मित्र श्राम्म हमारे लिए सहायता प्राप्त करने शहर भागे। लेकिन वे ज्यों ही एक घोड़ा गाड़ी में सवार हुए कि घोड़े बेक़ाबू हो गए और श्राम्म गाड़ी में से कूद पड़े। वे ख़ून से लथ-पथ घर वापस लाए गए, जहां मैं अपने ठंड से कांपते बच्चों के साथ आंसू बहा रही थी।

दूसरे ही दिन हमें वह मकान छोड़ देना था। दिन सर्द और उदास था, बारिश हो रही थी। मेरे पति हमारे लिए मकान तलाशने गये। चार बच्चों का ज़िक्र आते ही हमें रखने के लिए कोई भी राज़ी न होता। अन्त में एक मित्र ने हमारी सहायता की। हमने किराया अदा कर दिया और मैंने दवाख़ानावाले, नानबाई, क़साई और ग्वाले का बक़ाया चुकाने के लिए झटपट अपने पलंग बेच डाले, क्योंकि क़ुर्क़ी की शर्मनाक घटना से घबराकर वे सभी अचानक अपने हिसाब की भरपाई के लिए मुझ पर टूट पड़े थे। हमारे बेचे गए पलंग बाहर निकाले गए और उन्हें एक गाड़ी में लादा गया। इसके बाद क्या हुआ था? सूर्यास्त के बाद का समय था। हम अंग्रेज़ी कानून की अवहेलना कर रहे थे। मकान-मालिक दो पुलिसवालों को लिए हमारे यहां दौड़ा आया और यह दावा किया कि हम विदेश भाग जाना चाहते हैं और हमारी चीज़ों में उसकी अपनी चीज़ें भी हो सकती हैं। कोई पांच मिनट में ही दो-तीन सौ लोग, चेल्सी की पूरी भीड़, हमारे दरवाज़े के इर्दगिर्द जमा गई। पलंग फिर अन्दर लाए गए क्योंकि उन्हें ख़रीदारों को दूसरे दिन सूर्योदय के बाद ही दिया जा सकता था। अन्त में अपना सारा सामान बेचकर ही हम क़र्ज़ की अन्तिम कौड़ी तक चुकाने लायक़ हुए। मैं अपने नन्हे-मुन्नों के साथ नं० १, लिसेस्टर स्ट्रीट, लिसेस्टर स्क्वेयर पर एक जर्मन होटल के दो कमरों में उठ आई, जहां हम इस समय हैं, और यहां ५.५ पौण्ड फ़ी हफ़्ते पर कमोबेश इनसान की तरह रह रहे हैं।

प्रिय मित्र, आप मुझे हमारे जीवन के एक दिन के इस लम्बे और ब्योरेवार विवरण के लिए क्षमा करें। मैं जानती हूं कि यह शालीनता नहीं है, लेकिन आज की शाम मेरा हृदय विदीर्ण हो रहा है और मैं सबसे पुराने, सबसे अच्छे और सबसे वफ़ादार दोस्त के सामने कम से कम एक बार तो

अपने हृदय का बोझ हल्का कर लेना चाहती हूं। यह न सोचें कि इन तुच्छ दुश्चिन्ताओं ने मुझे झुका दिया है: मैं इस बात को बहुत अच्छी तरह जानती हूं कि हमारा संघर्ष एकाकी नहीं है और मैं तो ख़ास तौर से भाग्य-शालिनी हूं, सुखी हूं, तक़दीर की चहेती हूं क्योंकि मेरे प्यारे पति मेरे साथ हैं, जो मेरे जीवनाधार हैं। वस्तुतः जिस बात से मुझे आन्तरिक पीड़ा होती है और मेरा हृदय विदीर्ण हो जाता है, वह यह है कि उन्हें बहुत ही तुच्छ चीज़ों के लिए इतना अधिक कष्ट भोगना पड़ता है, कि उनकी इतनी कम सहायता की जा सकती है, कि जिसने राज़ी-ख़ुशी से अनेक दूसरे लोगों की सहायता की, अब वह ख़ुद इतना असहाय है। लेकिन, प्रिय वेडेमेयर, यह न सोचिए कि हम किसी से कुछ मांग करते हैं। मेरे पति ने जिन लोगों को अपने विचारों का भागी बनाया, प्रोत्साहन दिया, समर्थन दिया, उनसे वे केवल इतनी ही मांग कर सकते थे कि वे अधिक कारोबारी जोश प्रदर्शित करें, उनके «*Revue*» का अधिक साथ दें। यह दावा तो मैं गर्व और साहस के साथ कर सकती हूं। उतने स्वल्प के तो वे अधिकारी थे और मैं समझती हूं कि यह किसी के प्रति भी अन्याय न होता। यही चीज़ मुझे दुखी करती है। लेकिन मेरे पति की राय भिन्न है। उन्होंने अधिकतम भयानक घड़ियों में भी भविष्य के प्रति अपने विश्वास, अपनी ख़ुशमिज़ाजी तक को भी कभी नहीं खोया। मुझे और लाड़ से मेरे साथ चिपटते हुए अपने बच्चों को ख़ुश देखकर वे सन्तुष्ट रहते हैं। प्रिय वेडेमेयर, उन्हें यह मालूम नहीं है कि अपनी स्थिति के बारे में मैंने आपको इतने ब्योरे के साथ लिखा है, इसलिए आप इन पंक्तियों का हवाला न दें। उन्हें केवल इतना ही मालूम है कि मैंने उनके नाम पर आपको यह लिखा है कि आप यथासंभव हमारे पैसों की वसूली और उन्हें भेजने की जल्दी करें।

अलविदा, प्रिय मित्र! अपनी प्यारी पत्नी को मेरा अधिकतम हार्दिक अभिवादन कहें और अपने नन्हे-मुन्ने को एक ऐसी मां की तरफ़ से चूम लें, जिसने अपने बच्चे के लिए बहुत आंसू बहाए हैं। हमारी तीनों बड़ी सन्तानें सब कुछ के बावजूद बहुत अच्छी तरह हैं। बेटियां सुन्दर, स्वस्थ, प्रसन्न और मिलनसार हैं और हमारा गोलमटोल नन्हा बेटा विनोदप्रिय है और उसके दिमाग़ में बड़े ही दिलचस्प विचार आते रहते हैं। वह शैतान बहुत

ही भावप्रवण होकर गरजते स्वर में दिन भर गाता रहता है। जब वह फ़ाइलिग्राय के मर्सेइयेज़ गान के इन शब्दों को कण्ठ-स्वर की पूरी शक्ति लगाकर गाता है, तब मकान हिल उठता है :

> जून, आ जा !
> जून महत् अनुष्ठानों का !
> मनोकांक्षा है हमारी
> यशोपावन कर्मपथ पर पग बढ़ाने की।

अलविदा !

लुईज़ा वेडेमेयर के नाम जेनी मार्क्स का पत्र

११ मार्च, १८६१

प्रिय श्रीमती वेडेमेयर,

आपका कृपापत्र मुझे आज सुबह मिला और यह प्रदर्शित करने के लिए कि उसे पाकर मुझे कितनी प्रसन्नता हुई, मैं फ़ौरन आपको एक लम्बा पत्र लिखने बैठ रही हूं, क्योंकि आपके हार्दिक पत्र से मालूम होता है कि हमारे बारे में कभी-कभी समाचार पाकर आपको ख़ुशी होगी और आपके मन में हमारी दोस्ताना याद अब भी उसी तरह बनी हुई है, जैसी हमारे मन में आपकी।

भला पार्टी वाले ऐसे पुराने साथी और मित्र जिनके लिए एक ही प्रकार के सुख-दुख और हर्ष-विषाद नियत हैं, समय और महासागर द्वारा वियुक्त होने के बावजूद क्या कभी एक दूसरे के लिए बेगाने बन सकते हैं? इसलिए मैं इतनी दूर से आपकी ओर संघर्ष, मुसीबतों और आज़माइशों के दौर के बहादुर और वफ़ादार साथी की ओर, अपना हाथ बढ़ाती हूं। यह ठीक है, प्रिय श्रीमती वेडेमेयर, कि हमारे दिल अक्सर भारी और विषण्ण हुए हैं और मैं इस बात की भी अच्छी तरह कल्पना कर सकती हूं कि हाल में आप पर भी क्या बीती होगी! मैं आपके सारे संघर्षों, सारी चिन्ताओं और सारे अभावों की कल्पना कर सकती हूं, क्योंकि ख़ुद मैंने भी अक्सर वही सब कुछ भोगा है। लेकिन दुःखभोग हमें तपाकर पक्का बनाता है और प्रेम हमें सहारा देता है!

हमारे लन्दनवास के शुरूआती साल बहुत भारी गुज़रे। लेकिन आज मैं उन सारी ग़मगीन यादों की, अपने द्वारा उठाई गई सारी क्षतियों की चर्चा नहीं करना चाहती और न ही हमारे उन गुज़र गए प्यारे बच्चों को ही याद करना चाहती हूं जिनकी सूरतें मौन शोकपूर्वक हम अपने दिलों में अब भी संजोए हुए हैं।

आज मैं आपको अपने जीवन के उस नये दौर के बारे में बताना चाहती हूं, जिसमें दुःख के काले बादलों के साथ-साथ कुछ सुनहले दिन भी मुस्कराये हैं।

अपनी तीनों बेटियों के साथ मैं १८५६ में त्रियेर गई। मेरी प्यारी मां को उनकी नातिनों के साथ मेरे आने पर जो ख़ुशी हुई, वह बयान के बाहर है। लेकिन दुर्भाग्यवश वह ख़ुशी देर तक क़ायम न रह सकी। बहुत ही अच्छी और स्नेहमयी मां बीमार पड़ गई और ग्यारह दिन के कष्टभोग के बाद मुझे और बच्चियों को अपना आशीर्वाद देकर उन्होंने अपनी प्यारी-प्यारी थकी हुई आंखें सदा के लिए बन्द कर लीं। आपके पति, जो यह जानते हैं कि मेरी मां कितनी स्नेहशीला थीं, मेरे शोक की गहराई को सबसे अधिक अच्छी तरह अनुभव कर सकेंगे। अपनी प्यारी मां को दफ़नाने और उनकी स्वल्प मीरास को अपने भाई एडगर के साथ बांट कर हमने त्रियेर को ख़ैरबाद कहा।

उस समय तक हम लन्दन के बहुत ही मामूली-से दो कमरों में रहते थे। अपनी सारी क़ुर्बानियों के बाद मां हमारे लिए जो कुछ सौ थालेर छोड़ गई थीं, उनसे हमने सुन्दर हैम्पस्टेड हीथ के पास ही एक छोटा-सा मकान किराए पर ले लिया और अब हम वहीं रहते हैं। हम जिन कोठरियों में पहले रहे थे, उनकी तुलना में यह सचमुच राजसी आवास है और यद्यपि नीचे से ऊपर तक इसे सजाने में हमारा ४० पौण्ड से अधिक नहीं ख़र्च हुआ (गुदड़ी बाज़ार से ख़रीदी चीज़ें इसमें बहुत काम आयीं), फिर भी मुझे अपने आरामदेह बैठकख़ाने में बैठकर शुरू में वैभवशीलता की अनुभूति होती थी। बीती शान-शौक़त के अवशेष कपड़े-लत्ते और दूसरी चीज़ें रेहनदार से छुड़ा ली गईं और मुझे एक बार फिर पुराने स्काट्लैण्डी बेलबूटेदार दस्तमालों को गिनने का सुख नसीब हुआ। यद्यपि वह चमत्कार बहुत दिन नहीं क़ायम रहा, क्योंकि एक-एक करके चीज़ें फिर गिरवीदार के यहां

पहुंच गयीं, फिर भी वह आरामदेह जीवन सचमुच आनन्दप्रद था। तभी पहला अमरीकी संकट आया और हमारी आमदनी आधी हो गई। हम फिर तंगदस्त और ऋणी हो गये। ऐसा होना अनिवार्य था, क्योंकि हमें तीनों लड़कियों की उन्हीं दिनों प्रारंभ की गई शिक्षा को जारी रखना था।

अब मैं हम लोगों के अस्तित्व के उज्ज्वल पक्ष, अपने जीवन के रौशन पहलू—अपने प्यारे बच्चों पर आती हूं। मुझे यक़ीन है कि आपके पति, जो हमारी लड़कियों को उनके बचपन में प्यार करते थे, अब उन्हें सुन्दर तरुणियों के रूप में देखकर तो और भी अधिक प्रसन्न होंगे। अपनी प्यारी बेटियों का प्रशस्तिगान करके अब मुझे आपकी नज़रों में स्नेहान्ध माता समझी जाने का ख़तरा उठाना पड़ेगा। वे दोनों ही निहायत नेकदिल और सुशीला हैं, उनमें सचमुच मोहक शालीनता और कुमारी-सुलभ लज्जाशीलता है। जेनी १ मई को १७ साल की हो जाएगी। वह बहुत आकर्षक है, सुन्दरी भी कही जा सकती है। उसके बाल सघन काले और चमकदार और ऐसी ही काली और प्यारी-प्यारी आंखें हैं और विशिष्ट अंग्रेजी ताजगी लिए हुए सांवला रंग है। उसके सेबनुमा गोल-गोल बालिका-सुलभ मुख की प्यारी-प्यारी सुशीला भावाभिव्यक्ति उसकी कुछ-कुछ ऊपर को उठी हुई नाक के दोष को छिपा लेती है और जब उसके सस्मित अधर खुलते हैं और सुन्दर दांत चमक उठते हैं, तब तो उसे देखते ही बनता है।

लौरा गत सितम्बर में १५ वर्ष की हुई। वह अपनी बड़ी बहन से बिल्कुल भिन्न है, शायद उसकी अपेक्षा अधिक सुन्दर और अधिक सुघड़ नाक-नक्शेवाली। वह जेनी की भांति ही लम्बी, छरहरी और सुघड़ है, किन्तु हर प्रकार से उसकी अपेक्षा अधिक सुन्दर, अधिक चपल और अधिक शुभ्र है। उसके घुंघराले शाहबलूती केश इतने मोहक, उसकी प्यारी-प्यारी हरिताभ आंखें, जिनमें मानो सदैव ख़ुशी के दीपक जलते रहते हैं इतनी रुचिर हैं तथा उसका माथा इतना उदात्त और सुडौल है कि उसके मुख के ऊर्ध्व भाग को रमणीय कहा जा सकता है। किन्तु उसके मुख का अधोभाग उतना सुडौल नहीं है और अभी पूर्ण विकास को नहीं प्राप्त हुआ है। दोनों बहनों का रूप सचमुच खिलता हुआ है और दोनों ही नख़रेबाज़ी से इतनी मुक्त हैं कि मैं अक्सर उनकी मौन सराहना करती हूं; इसलिए

ग्रौर भी कि यही बात उनकी मां के लिए तब नहीं कही जा सकती थी, जब वह जवान थी ग्रौर हल्का-फुलका फ़्राक पहने घूमती थी।

स्कूल में उन्होंने हमेशा प्रथम पुरस्कार प्राप्त किए। अंग्रेजी भाषा पर उनका पूरा अधिकार है और वे फ़्रांसीसी भी ख़ासी जानती हैं। वे इतालवी में दांते को समझ लेती हैं और थोड़ी स्पेनी भी पढ़ सकती हैं। केवल जर्मन भाषा में ही उनके लिए भारी कठिनाई है, हालांकि मैं समय-समय पर उन्हें पढ़ाने-सिखाने की हर चन्द कोशिश करती हूं। लेकिन वे तनिक भी इच्छुक नहीं हैं और इस सिलसिले में मेरा आदेश अथवा मेरे प्रति उनका आदर भी किसी काम नहीं आता। जेनी चित्रकारी में विशेष रूप से निपुण है और उसके पेन्सिल-रेखाचित्र हमारे कमरों के श्रेष्ठतम अलंकार हैं। लौरा चित्रकारी के सम्बन्ध में इतनी लापरवाह थी कि हमने दंड के रूप में उसकी चित्रकारी की शिक्षा बन्द कर दी। इसके बदले वह लगन के साथ पियानो बजाने का अभ्यास करती है और अपनी बहन के साथ अंग्रेजी और जर्मन में बहुत मनोहर ढंग से युगल-गान गाती है। दुर्भाग्यवश उनकी संगीत-शिक्षा बहुत देर से, केवल डेढ़ साल पहले, प्रारंभ हुई। उनकी संगीत-शिक्षा का बोझ उठाना हमारे बस की बात नहीं थी। इसके अलावा हमारे पास पियानो भी नहीं था। अब जो पियानो है, वह किराये का है और उसे पियानो कहना तो उचित भी नहीं होगा। दोनों लड़कियां अपने मधुर, शालीन स्वभाव के कारण हमें बहुत सुख देती हैं। लेकिन उनकी कनिष्ठा बहन सारे घर की लाड़ली और दुलारी है।

यह बच्ची हमारे प्यारे बेचारे एडगर की मौत के फ़ौरन बाद पैदा हुई थी और चुनांचे भाई के लिए बड़ी लड़कियों का सारा प्यार-दुलार नन्ही बहन को मिल गया और वे प्रायः मातृवत सतर्कता के साथ उसका लालन-पालन करने लगीं। हां, यह सच है कि उससे अधिक प्रियदर्शिनी, सुरूपा, सरल और हंसोड़ बच्ची की कल्पना मुश्किल से ही की जा सकती है। प्यारी-प्यारी बातें करना और क़िस्से-कहानियों का शौक़ उसकी सबसे बड़ी विशेषता है। यह विशेषता उसने ग्रिम बन्धुओं से पाई है, जिन की पुस्तक से वह कभी अलग नहीं होती थी। हम सभी थक जाने तक उसे वे कहानियां पढ़कर सुनाते रहते हैं और अगर 'कोलाहली भूतना', 'राजा ग्रोसेल्वर्ट' या 'बर्फ़-सफ़ेदा' के बारे में हम कहीं एक शब्द भी भूल जायें,
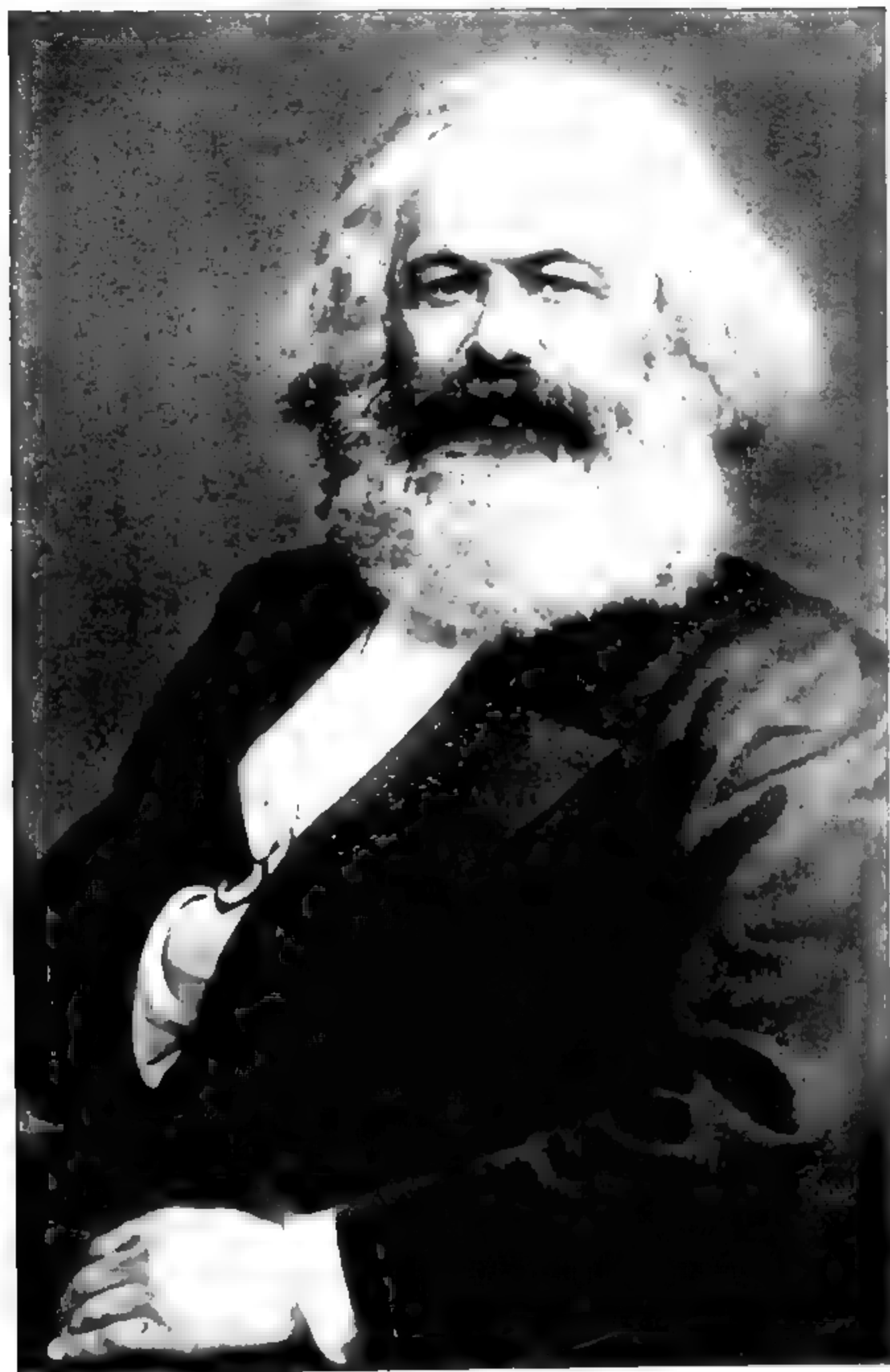
१८७० में क्रेज़ो धातुकर्म कारख़ाने में मज़दूरों की हड़ताल

तो हमारी शामत समझिये! बच्ची ने इन्हीं कहानियों के जरिये अंग्रेज़ी भाषा के अलावा, जिसे वह यहां की हवा के साथ ग्रहण करती है, जर्मन भी सीख ली है और असाधारण रूप से सही तथा सटीक भाषा बोलती है। वह कार्ल की असली दुलारी है और उसकी चहक उनकी अनेक चिन्ताएं हर लेती है।

जहां तक गृहकार्य का सम्बन्ध है, हेलेन पहले की तरह ही वफ़ादारी और ईमानदारी के साथ मेरी मदद करती है। उसके बारे में अपने पति से पूछिये और वे आपको बतायेंगे कि वह मेरे लिए कैसा क़ीमती हीरा है। उसने सुख-दुख में समान रूप से पिछले १६ सालों में हमारा साथ दिया है...

मैंने कार्ल की एक नई पुस्तक की पाण्डुलिपि की नक़ल तैयार करना अभी मुश्किल से ख़त्म किया था और वह अभी छापेख़ाने में ही थी कि मेरी तबीयत सहसा बहुत ख़राब मालूम होने लगी। मुझे बहुत जोर का बुख़ार हो आया और डाक्टर बुलाने की नौबत आ गई। डाक्टर २० नवम्बर को आये और बहुत ब्योरे तथा सावधानी के साथ मेरी जांच की। लम्बे मौन के बाद उन्होंने मुझसे कहा: "प्रिय श्रीमती मार्क्स, मुझे अफ़सोस के साथ कहना पड़ता है कि आपको चेचक है – बच्चों को फ़ौरन इस घर से हटा दिया जाना चाहिये।" इन शब्दों ने घर में जिस संत्रास और रुदन-क्रन्दन को जन्म दिया, उसकी कल्पना आप कर सकती हैं। हम कर ही क्या सकते थे? लीब्कनेख़्त परिवार हमारे बच्चों को फ़ौरन अपने यहां ले जाने को तैयार हो गया और उसी दिन दोपहर को बच्चियां अपना स्वल्प सामान लेकर घर से निर्वासित हो गईं।

मेरी हालत हर घंटे बद से बदतर होती गई। चेचक के दाने भयानक रूप से उभर आये। मैं घोर पीड़ा में थी। चेहरा दर्द से जलता जा रहा था और मैं सोने में बिल्कुल असमर्थ थी। मुझे कार्ल की बेहद मरणान्तक चिन्ता थी, जो अधिकतम प्यार के साथ मेरी सुश्रूषा कर रहे थे। अन्त में मैं बाहरी तौर पर चेतनाशून्य हो गई, हालांकि मैं निरन्तर पूरी तरह होश में थी। मैं लगातार खुली खिड़की के पास लेटी रहती, ताकि मुझे हर घड़ी नवम्बर की सर्द हवा मिलती रहे, जबकि अंगीठी में आग धधकती रहती, मेरे जलते होंठों पर बरफ़ रखी जाती और रह-रहकर मुझे

शराब की बूंदें पिलाई जातीं। मैं मुश्किल से कुछ निगल सकती थी, मेरी श्रवण-शक्ति अधिकाधिक कमज़ोर होती जा रही थी और अन्त में मेरी आंखें भी बन्द हो गईं। मैं सोचने लगी, क्या अब मेरे लिये चिरन्तन रात ही बनी रहेगी!

मेरी मज़बूत काठी और अधिकतम प्यार तथा सच्चे दिल से की गई सुश्रूषा की विजय हुई और अब मैं फिर पूर्णतः स्वस्थ हूं, सिवा इसके कि मेरा चेहरा चेचक के गहरे लाल दाग़ों से विकृत है, ठीक जो रंग आज फ़ैशन में है, उसी "माजेन्टा" के रंग के। बच्चियां कहीं बड़े दिन की पूर्ववेला में ही मां-बाप के उस घर में वापस आ सकीं, जिसके लिये वे इतनी उदास थीं। हमारे पुनर्मिलन की हृदयद्रावकता अवर्णनीय थी। मुझे देखकर लड़कियां भावाभिभूत हो उठीं और उनके लिए आंसू रोकना मुश्किल हो गया। पांच हफ़्ते पहले मैं अपनी स्वस्थवदना बच्चियों के साथ बिलकुल सम्भ्रान्त दीखती थी। आश्चर्यजनक रूप से मेरे बालों में कहीं सफ़ेदी नहीं थी और मेरे दांत तथा शरीर की गठन भी अच्छी थी, जिससे लोग मुझे बहुत संजोई हुई स्त्री मानते थे। लेकिन अब वह सारी बातें अतीत की बन चुकी थीं और ख़ुद अपने को ही मैं जंगली जानवर जैसी प्रतीत होती थी, जिसका स्थान लोगों के बीच नहीं, बल्कि किसी चिड़ियाघर में होना चाहिये। लेकिन आप बहुत अधिक संत्रस्त न हों। अब हालत इतनी बुरी नहीं है, दाग़ अब भरने लगे हैं।

मैंने बिस्तर छोड़ा ही था कि मेरे प्यारे कार्ल बीमार पड़ गये। आत्यन्तिक चिन्ताओं, परेशानियों और नाना यंत्रणाओं ने उन्हें बिस्तर से लगा दिया। उनके दायमी जिगर रोग ने पहली बार उग्र रूप ग्रहण किया। लेकिन ख़ुदा का शुक्र है कि चार हफ़्ते की तकलीफ़ के बाद उनकी हालत सुधर गई। इस बीच *«Tribune»* से हमारी आमदनी फिर आधी हो गई थी और कार्ल की पुस्तक के लिये पैसे पाने के बजाय हमें तमस्सुक के पैसे भरने पड़ गये। इन सब के ऊपर उस भयानक बीमारी का भारी ख़र्च सहना पड़ा। संक्षेप में, आप उन जाड़ों में हमारी स्थिति का अनुमान कर सकती हैं!

इन सारी बातों के फलस्वरूप कार्ल ने अपने पुरखों के देश, तम्बाकू और पनीर की धरती, हॉलैण्ड का एक सरसरी दौरा लगाने का फ़ैसला

किया। वे देखना चाहते हैं कि उन्हें अपने चाचा से कुछ पैसे मिल सकते हैं कि नहीं। इस प्रकार मैं फ़िलहाल वियोगिनी हूं और यह देखने की प्रतीक्षा में हूं कि उनकी हॉलैण्ड-यात्रा क्या सफलता प्रदान करती है। शनिवार को मुझे ६० गुल्डेनों के साथ पहला, किंचित आशापूर्ण पत्र मिला। ज़ाहिर है कि ऐसे कामों में देर लगती है, चतुराई, कूटनय और सावधानी से काम करने की आवश्यकता होती है। फिर भी मुझे आशा है कि कार्ल वहां से कुछ न कुछ तो ले ही आयेंगे। हॉलैण्ड में कुछ सफलता मिलते ही वे थोड़े समय के लिये गुप्त रूप से बर्लिन जाकर देश की स्थिति और एक मासिक अथवा साप्ताहिक पत्र निकालने की संभावना टटोलना चाहते हैं। हम पिछले दिनों के अनुभव से इस बात के क़ायल हो गये हैं कि जब तक हमारे पास अपना अख़बार नहीं होगा, तब तक कोई प्रगति संभव नहीं है। अगर कार्ल को पार्टी का नया अख़बार निकालने में सफलता मिल गई, तो वे निश्चय ही आपके पति से अमरीका के सम्वाद भेजने की प्रार्थना करेंगे।

कार्ल की रवानगी के प्राय: फ़ौरन ही बाद हमारी वफ़ादार हेलेन बीमार पड़ गई और यद्यपि अब वह अच्छी होने लगी है, फिर भी अभी बिस्तर नहीं छोड़ पायी है। इस कारण मेरे लिये ढेरों काम पड़े हैं और मैं यह पत्र बेहद जल्दी-जल्दी ख़त्म कर रही हूं। लेकिन मैं लिखे बिना नहीं रह सकती थी, रहना चाहती भी नहीं थी और अपने सबसे पुराने और सबसे सच्चे दोस्तों के सामने दिल का बोझ हल्का करके मुझे बड़ी राहत मिली है। इसी लिये हर चीज़ के बारे में इतने ब्योरे के साथ लिखने के लिये आपसे माफ़ी नहीं मांगती। लेखनी अपने आप ही दौड़ती चली गई और अब मेरी यही आशा तथा आकांक्षा है कि जल्दी में घसीटी गई ये पंक्तियां आपको उस आनन्द का कम से कम एक अंश तो प्रदान कर सकें, जो आपका पत्र पढ़कर मुझे प्राप्त हुआ।

तमस्सुक से सम्बन्धित मामला मैंने बात की बात में तय कर लिया और सारा काम ऐसे व्यवस्थित ढंग से निबटा दिया, जैसे कि मेरे प्रभु और स्वामी यहीं मौजूद हों।

मेरी बच्चियां आपके बच्चों को – एक लौरा दूसरी लौरा को, प्यार और अभिवादन भेजती हैं और उन सभी को मेरी तरफ़ से चूमें! आपको

हार्दिक अभिवादन, मेरी प्यारी सहेली! इन कठिन घड़ियों में बहादुर और साहसी बनी रहें। दुनिया निर्भीकों की है। अपने पति के लिये वफ़ादार और दृढ़ सहारा बनें। शरीर और मस्तिष्क को स्फूर्तिमय रखें और अपने प्यारे बच्चों से अधिक सम्मान की मांग न करनेवाली सच्ची साथी बनें। अवसर होने पर हमें फिर लिखें।

आपकी

जेनी मार्क्स।

एल्योनोरा मार्क्स-एवेलिंग

कार्ल मार्क्स*

(चन्द सरसरी विचार)

मेरे ग्रास्ट्रियाई दोस्त चाहते हैं कि मैं उन्हें ग्रपने पिता सम्बन्धी कुछ संस्मरण लिख भेजूं। वे मुझसे इससे ग्रधिक मुश्किल मांग कोई भी नहीं कर सकते थे। लेकिन ग्रास्ट्रियाई मजदूर-मजदूरिनें उस हेतु के लिये ऐसी शानदार लड़ाई लड़ रहे हैं, जिसके लिये कार्ल मार्क्स ने ग्रपना सारा जीवन ग्रौर कृतित्व ग्रर्पित कर दिया था, कि उन्हें इनकार नहीं किया जा सकता। इस प्रकार मैं उन्हें ग्रपने पिता के बारे में चन्द सरसरी, क्रमहीन विचार लिख भेजने की कोशिश करती हूं...

मार्क्स को बहुत ही कटु, कठोर, कभी न झुकनेवाले ग्रौर ऐसे व्यक्ति के रूप में पेश किया जाता है, जिस तक किसी की रसाई न हो, जो मानो ग्रोलिम्पस पर ग्रलग-थलग ग्रौर एकाकी बैठे जुपिटर की तरह हमेशा वज्रपात ही करता हो, मुस्कान से सर्वथा ग्रनजान हो। मार्क्स के बारे में ऐसे मनगढ़न्त क़िस्से से ग्रधिक हास्यास्पद ग्रौर कुछ नहीं हो सकता। इस धरती के ग्रधिकतम ख़ुशमिज़ाज ग्रौर हंसमुख, विनोद ग्रौर जिन्दादिली से छलकते तथा संक्रामक ग्रौर ग्रप्रतिरोध्य ग्रट्टहास के धनी एक व्यक्ति का, ग्रधिकतम दयालु, भलेमानस ग्रौर सहानुभूतिशील साथी का

---

* मार्क्स की पुत्री एल्योनोरा के संस्मरण १८९५ में प्रकाशित किये गये थे।—सं०

ऐसा चित्रण मार्क्स को जाननेवाले सभी लोगों के लिये सतत आश्चर्य और कौतुक का स्रोत है।

घर में और वैसे ही मित्रों, यहां तक कि मात्र परिचितों के सम्बन्ध में भी मार्क्स की असीम खुशमिज़ाजी और अपार संवेदनशीलता को ही उनकी मुख्य चारित्रिक विशेषताएं कहा जा सकता है। उनकी सौजन्यता और धैर्यशीलता वस्तुतः उदात्त थीं। अपेक्षाकृत कम धैर्यशील व्यक्ति नाना प्रकार के लोगों द्वारा प्रस्तुत किये जानेवाले सतत व्याघातों और अनवरत मांगों से अक्सर आपे से बाहर हो जाता। क्या यह मार्क्स की शालीनता और भलमनसाहत के लिये चारित्रिक बात नहीं है कि एक बार जब कम्यून के एक शरणार्थी (प्रसंगवश, वे असहनीय रूप से उबा देनेवाले व्यक्ति थे) ने मार्क्स के साथ बैठकर मरणान्तक रूप से ऊब भरे तीन घंटे नष्ट करवाये और जब अन्त में उनसे यह कहा गया कि समय की तंगी है और बहुतेरे काम करने को पड़े हैं, तो उन्होंने इसके जवाब में कहा कि "प्यारे मार्क्स, मैं आपको माफ़ करता हूं..."

जैसे इस ऊब भरे व्यक्ति के प्रति, वैसे ही उन सब के प्रति, जिन्हें मार्क्स ईमानदार आदमी समझते थे (और वे अक्सर अपना बहुमूल्य समय ऐसे लोगों को दिया करते थे, जो उनकी उदारता का बहुत दुरुपयोग करते थे), वे सदा ही अधिक से अधिक सद्भावना और सहानुभूति रखनेवाले व्यक्ति थे। उनमें लोगों से उनके मन की बात कहलवा लेने की, उनको यह महसूस कराने की अद्भुत शक्ति थी कि जिस बात में उनकी दिलचस्पी है, उसमें वे भी दिलचस्पी रखते हैं। मैंने अधिकतम विभिन्न स्थितियों और पेशों के लोगों को यह कहते सुना है कि मार्क्स में उन्हें और उनकी समस्याओं को समझने की अद्भुत क्षमता है। जब वे किसी को वस्तुतः गंभीरतापूर्वक आरज़ूमन्द समझते थे, तब तो उनका धैर्य असीम होता था। तब वे किसी भी प्रश्न को तुच्छ न मानकर और किसी भी तर्क को बचकाना न मानते हुए गंभीर उत्तर देते थे। ज्ञानातुर प्रतीत होनेवाले हर नर-नारी की सेवा में उनका समय और व्यापक ज्ञान सदा समर्पित रहता था।

• • •

लेकिन मेरे खयाल में बच्चों के साथ मार्क्स के व्यवहार में ही उनका सर्वाधिक मधुर रूप देखा जा सकता था। निश्चय ही, बच्चों को उनसे बेहतर खेल का साथी कभी नहीं मिल सकता था।

उनके बारे में मेरी सबसे पुरानी याद तब की है, जब मैं तीन साल की थी और तब "मूर" (उनका यह पुराना घरेलू नाम मेरी ज़बान से बरबस निकल जाता है) मुझे अपने कन्धों पर बिठाकर हमारे ग्रैफ़्टन टिरेंस वाले छोटे-से बाग़ में घुमाया करते थे, मेरी भूरी लटों में इश्कपेंचा के फूल खोंसा करते थे। "मूर" निस्सन्देह बेहतरीन घोड़ा थे। बहुत पहले – मुझे याद तो नहीं, लेकिन कहते सुना है – मेरी बहनें और नन्हा भाई, जिसकी मृत्यु ठीक मेरी पैदाइश के बाद हुई और मेरे माता-पिता के लिये जीवन भर का दुख बन गई, "मूर" को कुर्सियों में "जोत" देते थे और उस रथ पर "चढ़कर" उनसे खिंचवाते थे।

निजी रूप से मैं उन्हें सवारी का घोड़ा बनाना बेहतर समझती थी, शायद इस कारण कि मेरी कोई हमउम्र बहन नहीं थी। उनके कन्धे पर बैठकर, उनके बालों के उस सघन अयाल को जोर से पकड़े हुए, जिसमें सफ़ेदी झलकने ही लगी थी, ग्रैफ़्टन टिरेंस वाले अपने मकान के छोटे-से बाग़ और उसके इर्दगिर्द के उन मैदानों में, जहां अब मकान बन गये हैं, मैंने शानदार सवारी की थी।

अब "मूर" नाम के बारे में चन्द शब्द। हम सब के घरेलू नाम थे ('पूंजी' के पाठक जानते हैं कि ऐसे नाम देने में मार्क्स कितने पटु थे)। "मूर" उनका बाक़ायदा, प्राय: आधिकारिक, नाम था। केवल हम लोग ही नहीं, बल्कि सभी निकट के मित्र भी उन्हें उसी नाम से पुकारते थे। लेकिन वे हमारे "चाल्ली" (मूलत: शायद "चार्ली" का, जो कार्ल का ही दूसरा पाठान्तर है, बिगड़ा रूप) और "ओल्ड निक" भी थे।

मां हमेशा हमारी "मेमे" थीं।

मेरे माता-पिता की आजीवन सच्ची मित्र, हमारी प्रिय हेलेन देमुत, अनेक नामों से गुजरने के बाद हमारी "निम" बन गईं।

१८७० के बाद एंगेल्स हमारे "जनरल" हो गये और हमारी बहुत घनिष्ठ मित्र लिना श्योलेर "ओल्ड मोल" बन गईं।

मेरी वड़ी वहन जेनी "चीनी सम्राट क्वि-क्वि" और "दि" थीं और मेरी दूसरी वहन लौरा (श्रीमती लफ़ार्ग) "हॉट्टेनटाट" और "काकादू" थीं।

मैं "तुस्सी" (यह नाम मेरे साथ लगा रह गया है) और "चीनी राजकुमार क्वो-क्वो" थी। इसी तरह वहुत दिनों तक मैं 'निबेलुंग-गान' की "वोना आल्वेरिख़" भी रही।

वहुत वढ़िया घोड़ा होने के अलावा "मूर" में इससे अच्छा एक और गुण भी था। वे कहानियां सुनाने में वेजोड़ थे, अनूठे थे।

मैंने अपनी बुआ लोगों को कहते सुना है कि बचपन में वे अपनी बहनों के लिये भयानक उत्पीड़क थे। उन्हें वे त्रियेर में मार्कुसवर्ग सड़क पर अपने घोड़ों की तरह "हांकते" थे और उससे भी वदतर यह कि उन्हें गंदे हाथों से बनाई गई गुंधे हुए गंदे आटे की "टिकियां" खाने को मजबूर करते थे। लेकिन वे ऐसा करने के पुरस्कारस्वरूप कार्ल द्वारा सुनाई जानेवाली कहानियों के लिए चूं तक किये बिना "हांकना" भी झेल लेती थीं और "टिकियां" भी खा लेती थीं।

उसके वहुत, वहुत साल वाद मार्क्स अपने वच्चों को कहानियां सुनाने लगे। मेरी बहनों को (मैं तब वहुत छोटी थी) वे टहलने के समय कहानियां सुनाते थे और उन कहानियों की माप अध्यायों में नहीं, मीलों में की जाती थी। लड़कियों की पुकार होती थी, "अच्छा, अब एक और मील सुनाइये।"

जहां तक मेरा सम्बन्ध है, "मूर" द्वारा मुझे सुनाई गई अद्‌भुत कहानियों में सबसे वढ़िया, सबसे आनन्ददायक 'हान्स र्‌योक्ले' की कहानी थी। वह महीनों चलती रहती थी, वह कहानियों की एक पूरी शृंखला थी। अफ़सोस कि ऐसी कवित्वपूर्ण, सूक्ष्म व्यंजनापूर्ण और विनोदपूर्ण कहानियों को लिख लेनेवाला कोई नहीं था!

ख़ुद हान्स र्‌योक्ले हॉफ़मैनी ढंग का जादूगर था, जिसकी खिलौनों की दूकान थी और जो हमेशा "तंगी" में रहता था। उसकी दूकान बहुत ही अद्‌भुत चीजों, कठपुतलों-कठपुतलियों, देवों-बौनों, राजा-रानियों, मजदूरों-मालिकों, हजरत नूह की नाव के समान बहुसंख्यक चौपायों और चिड़ियों, मेजों, कुर्सियों, गाड़ियों, हर क़िस्म और हर पैमाने के सन्दूक़ों से भरी

हुई थी। लेकिन उसके ख़ुद जादूगर होने के बावजूद वह न तो कभी शैतान का, और न क़साई का ही कर्ज़ा चुका पाता था और इस कारण अपनी मरज़ी के ख़िलाफ़ उसे निरन्तर अपने खिलौने शैतान को बेचने पड़ते थे। लेकिन अनेक आश्चर्यजनक घटनाओं के बाद वे सारी चीज़ें फिर हान्स र्योक्ले की दूकान में लौट आती थीं।

उन घटनाओं में से कुछ उतनी ही विकट, उतनी ही संत्रासकारी थीं, जितनी हॉफ़मैन की कहानियों की घटनायें। उनमें से कुछ हास्यपूर्ण थीं, लेकिन वे सभी अभिव्यक्ति की अनन्त ओजस्विता, प्रखरता और विनोदमयता के साथ सुनाई जाती थीं।

इसी प्रकार "मूर" अपने बच्चों को पढ़कर सुनाने के भी आदी थे। यों, जैसे मेरी बहनों को वैसे ही मुझे भी उन्होंने पूरे का पूरा होमर, पूरे का पूरा 'निबेलुंग-गान', 'गुद्रुन', 'डॉन क्विक्ज़ोट', 'अलिफ़ लैला', इत्यादि पढ़कर सुना दिया था। जहां तक शेक्सपियर का सम्बन्ध है, तो उनकी कृतियां हमारे घर की इंजील थीं, जो शायद ही कभी हमारे हाथ या मुंह से अलग होती थीं। छे साल की होते-होते मुझे शेक्सपियर के पूरे-पूरे दृश्य ज़बानी याद हो गये थे।

मेरी छठी सालगिरह पर "मूर" ने मुझे पहला उपन्यास, अमर 'भोला पीटर'*, भेंट किया। उसके बाद मार्रियेट और कूपर की रचनाओं के पूरे के पूरे संग्रह आये और मेरे पिता मेरे साथ उन सारी कथाओं को पढ़ते थे, उनपर अपनी छोटी-सी बिटिया के साथ गंभीर विचार-विमर्श करते थे। जब उस छोटी-सी बिटिया ने मार्रियेट की सागर-कथाओं से प्रोत्साहित होकर यह घोषित किया कि वह भी "जहाज की कप्तान" (जिसका अर्थ वह पूरी तरह नहीं समझती थी) बनेगी और अपने पिता से पूछा कि क्या उसके लिये "लड़कों जैसी पोशाक पहनना" और "जंगी जहाज पर नौकरी हासिल करने के लिये भाग जाना" संभव होगा, तब उन्होंने उसे आश्वासन दिया कि ऐसा सब कुछ संभव है, लेकिन सारी योजनाएं पक्की हो जाने तक इसके बारे में किसी से कुछ कहने की ज़रूरत नहीं है।

---

*अंग्रेज़ी लेखक फ़० मार्रियेट का एक उपन्यास।—सं०

लेकिन उन योजनाओं के पक्की होने से पहले ही वाल्टर स्कॉट का जादू सिर चढ़कर बोलने लगा और उस छोटी-सी बिटिया ने त्रास के साथ जाना कि स्वयं उसका भी जुगुप्सित कैम्पबेल कुल से कोई दूर का नाता है। उसके बाद स्कॉटलैण्ड में विद्रोह की तैयारी और "पैंतालीस" (१७४५)* की पुनरावृत्ति की योजनाएं बनीं। मुझे इतना और जोड़ देना चाहिये कि मार्क्स ने वाल्टर स्कॉट की कृतियां बार-बार पढ़ी थीं और उन्हें उतना ही जानते और सराहते थे, जितना बाल्ज़ाक और फ़ील्डिंग की कृतियों को।

अपनी छोटी-सी बिटिया से इन और अनेक दूसरी पुस्तकों की बातें करते हुए, वे उसे दर्शाते थे, यद्यपि जिसकी अभिज्ञता उसे नहीं होती थी, कि उन कृतियों में जो कुछ सुन्दरतम है, श्रेष्ठतम है, उसे कहां खोजना चाहिये; उसे यह सिखाते थे—हालांकि उसे महसूस नहीं होने देते थे कि उसे शिक्षा दी जा रही है क्योंकि उसपर वह आपत्ति करती—कि वह ख़ुद सोचने की, ख़ुद समझने की कोशिश करे।

ठीक इसी प्रकार वह "कटु" और "कठोर" इनसान छोटी-सी लड़की से राजनीति और धर्म की बातें भी करता था। मुझे अच्छी तरह याद है कि जब मैं शायद कोई पांच या छे साल की थी और मेरे मन में धार्मिक सन्देह पैदा हो गये थे (हम रोमन कैथोलिक गिर्जाघर गये थे, जहां के बढ़िया संगीत की मेरे मन पर प्रबल छाप पड़ी थी), जिनकी, जाहिर है कि मैंने "मूर" से चर्चा की। उन्होंने हर चीज इतनी साफ़ और स्पष्ट कर दी कि तब से अब तक कभी कोई शंका पैदा नहीं हुई।

और उनकी धनिकों द्वारा हत बढ़ई की कहानी मेरे स्मृति-पटल पर कैसे अंकित होकर रह गई है, जिसे, मैं समझती हूं, कि उनसे पहले या उनके बाद और किसी ने वैसे नहीं सुनाया होगा।

---

*वाल्टर स्कॉट के 'वेवरले' नामक उपन्यास की ओर संकेत है, जिसमें स्कॉटलैण्ड में १७४५ की घटनाओं—ब्रिटिश राज के ख़िलाफ़ विद्रोह का वर्णन है।—सं०

ग्रौर मार्क्स स्वयं कह सकते थे: "बच्चों को मेरे पास ग्राने दीजिये, उन्हें रोकिये-टोकिये नहीं", क्योंकि वे जहां कहीं भी जाते, बच्चे भी किसी प्रकार उनके पास पहुंच जाते। ग्रगर वे हैम्पस्टेड हीथ में, हमारे पुराने मकान से लगे हुए उत्तरी लन्दन के विस्तृत खुले मैदान या किसी पार्क में जा बैठते, तो बच्चों की टोली तत्काल ही उस लम्बे-लम्बे बालों, बड़ी दाढ़ी ग्रौर दयालु भरी ग्रांखों वाले बड़े व्यक्ति को ग्रधिकतम मैत्री तथा संकोचहीनता के साथ घेर लेती थी। इस प्रकार बिल्कुल ग्रजनबी बच्चे उनके पास ग्राते ग्रौर ग्रक्सर उन्हें सड़क पर रोक लेते।

एक बार, मुझे याद है, कोई दस साल के एक स्कूली लड़के ने इन्टरनेशनल के "भयावह" नेता को बिलकुल बेतकल्लुफ़ी से मेटलैण्ड पार्क में रोक लिया ग्रौर कहा: «swop knives»। उसने मार्क्स को समझाया कि स्कूली बच्चों की भाषा में «swop» का ग्रर्थ होता है बदलना। उसके बाद दोनों ने ग्रपने ग्रपने चाकू निकाले ग्रौर उनकी तुलना की। लड़के के चाकू में एक ही फल था, जबकि मार्क्स के चाकू में दो। लेकिन वे मोथरे थे। बहुत बहस के बाद सौदा तय हो गया, चाकू बदल लिये गये ग्रौर इन्टरनेशनल के "भयावह" नेता ने ग्रपने चाकू के फल के मोथरेपन के बदले एक पेनी भी दी।

इसी प्रकार मुझे याद है कि किस ग्रसीम धैर्य ग्रौर माधुर्य के साथ वे उस समय मेरे सारे प्रश्नों के उत्तर देते थे, जब ग्रमरीकी युद्ध* ग्रौर नीली किताबों ने कुछ समय के लिये मारियेट ग्रौर वाल्टर स्कॉट की जगह ले ली थी। उन्होंने एक बार भी यह शिकायत नहीं की कि मैं उनके काम में बाधक होती हूं, हालांकि ग्रपनी महान कृति का प्रणयन करते समय एक नन्ही बच्ची की बकबक से उन्हें कुछ कम परेशानी नहीं होती होगी। लेकिन बच्ची को यह कभी महसूस नहीं होने दिया गया कि वह काम का हरज कर रही है। मुझे याद ग्राता है कि उन्हीं दिनों मैं यक़ीनी तौर से यह महसूस करने लगी कि युद्ध के मामले में ग्रब्राहम लिंकन को मेरी सलाह की बुरी तरह ग्रावश्यकता है ग्रौर मैं उन्हें लम्बे-लम्बे पत्र लिखने लगी,

---

*१९वीं शताब्दी के सातवें दशक में संयुक्त राज्य ग्रमरीका के उत्तरी तथा दक्षिणी राज्यों के बीच हुग्रा गृहयुद्ध।—सं०

जिन सभी को जाहिर है कि "मूर" को पढ़ना और "डाक में डालना" पड़ता था। बरसों बाद उन्होंने मुझे वे बचकाने पत्र दिखलाए, जिन्हें उन्होंने मनोरंजक होने के कारण रख छोड़ा था।

तो बचपन और किशोरावस्था में मार्क्स मेरे ऐसे आदर्श मित्र रहे थे।

घर में हम सभी एक दूसरे के अच्छे साथी रहे और वे सदा ही सबसे अधिक सहृदय और ख़ुशमिजाज रहे। उन सालों के दौरान भी, जब वे निरन्तर जहरबाद की यंत्रणाओं के शिकार रहे, जीवन की अन्तिम घड़ियों तक...

• • •

मैंने इन बिखरी-बिखरायी चन्द यादों को लिख दिया है, लेकिन अपनी मां के बारे में कुछ बातें जोड़े बिना तो ये भी बिल्कुल अधूरी रहेंगी। अगर यह कहा जाये कि जेनी फ़ॉन वेस्टफ़ालेन के बिना मार्क्स वह कुछ नहीं होते, जो थे, तो इसमें कोई अतिशयोक्ति न होगी। किन्हीं भी अन्य दो व्यक्तियों के जीवन, सो भी दोनों ही अनोखे जीवन, कभी इतने एकरूप और एक दूसरे के पूरक नहीं रहे।

असाधारण रूपवती जेनी फ़ॉन वेस्टफ़ालेन, जिनका सौन्दर्य मार्क्स के लिये अन्त समय तक गर्व और आह्लाद का कारण रहा और जिनके सौन्दर्य ने हाइने, हेर्वेग और लासाल जैसे व्यक्तियों से बरबस सराहना प्राप्त की, और जिनकी मनीषा और तीक्ष्णदिमाग़ी भी उनके सौन्दर्य की तरह ही जाज्वल्यमान थीं, लाखों में एक थीं।

बचपन में कार्ल और जेनी साथ-साथ खेले थे, तरुणाई में—क्रमशः १७ और २१ की आयु में—उनकी सगाई हो गई और राचेल के लिये जैकब की तरह मार्क्स ने भी विवाह बन्धन में बंधने से पहले सात साल तक उसके लिए साधना की। उसके बाद दोनों ने अपनी वफ़ादार और विश्वसनीय दोस्त हेलेन देमुत के साथ तूफ़ानों और मुसीबतों के, निर्वासन, विकट दैन्य, अपवाद, कठोर संघर्ष और साहसिक संग्रामों के आगामी बरसों में अडिग, बेझिझक, हमेशा कर्त्तव्य और ख़तरे के स्थान पर डटे रहकर जमाने का सामना किया। मार्क्स ब्राउनिंग के शब्दों में सचमुच कह सकते थे:

वह मेरी चिरप्रिय,
जिसे अर्पित है मेरा प्यार,
प्यार जो ऐसा अमर, अशेष
कि उसको घाल न सकता काल,
न परिवर्तित कर सकता योग।

मैं कभी-कभी सोचती हूं कि उन्हें आपस में बांधनेवाली जितनी मजबूत कड़ी मज़दूरों के हेतु के प्रति उनकी वफ़ादारी थी, उतनी ही उनकी असीम विनोदप्रियता भी थी। उन दोनों से बढ़कर किसी मज़ाक़ का रस निश्चय ही किसी और ने कभी नहीं लिया होगा। मैंने उन्हें बार-बार, ख़ास तौर से जब अवसर मर्यादित और संतुलित व्यवहार की मांग करता था, आंसू निकल आने तक हंसते देखा है और जो लोग इस प्रकार के मनमौजीपन पर नाक-भौं चढ़ाने की प्रवृत्ति रखते थे, वे भी उनके साथ हंसने के सिवा और कुछ नहीं कर सकते थे। और कितनी बार मैंने यह भी देखा कि वे एक दूसरे की ओर देखने का साहस नहीं कर पाते थे, क्योंकि दोनों ही जानते थे कि नजरें मिलते ही अदम्य ठहाका फूट पड़ेगा। इन दोनों व्यक्तियों को अपने सिवा किसी भी चीज़ पर नजर गड़ाये और हंसी रोकने के कारण, जो अन्ततः सारी कोशिशों के बावजूद फूट ही पड़ती थी, बिल्कुल स्कूली बच्चों की तरह, घुटन महसूस करते हुए देखने की मुझे ऐसी याद है, जिसे मैं उन लाखों-करोड़ों से भी बदलना नहीं चाहूंगी, जिन्हें विरसे में पाने का श्रेय कभी-कभी मुझे दिया जाता है। जी हां, सारी तकलीफ़ों, सारे संघर्षों और सारी निराशाओं के बावजूद वह जोड़ी ख़ुशमिज़ाज जोड़ी थी और "आक्रोशपूर्ण वज्रपाती जुपिटर" यह मात्र कपोल कल्पना है। संघर्ष के वर्षों के दौरान यदि उन्हें अनेक निराशाएं हुईं, भारी कृतघ्नता का सामना करना पड़ा तो उन्हें ऐसे सच्चे मित्र भी उपलब्ध थे, जो बहुत कम लोगों को नसीब होते हैं। जहां मार्क्स का नाम है, वहां फ़ेडरिक एंगेल्स का भी नाम है और जो लोग मार्क्स के घरेलू जीवन को जानते थे, वे उस महिला—हेलेन देमुत—के श्लाघ्य नाम को भी याद करते हैं, जिससे अधिक सदाशया कभी कोई न रहा होगा।

मानव-प्रकृति के ग्रध्येताग्रों को यह बात विचित्र नहीं लगेगी कि ऐसा जुझारू व्यक्ति साथ ही ग्रधिकतम दयालु ग्रौर कोमल भी था। वे समझ जाएंगे कि वे केवल इसी कारण इतनी घृणा करने में समर्थ थे कि उतना ही ग्रधिक प्रेम भी कर सकते थे, कि ग्रगर उनकी तीखी लेखनी दान्ते की तरह निश्चय ही किसी की ग्रात्मा को नरकवास में धकेल सकती थी, तो केवल इसी लिए कि वे इतने खरे ग्रौर दयालु थे; कि ग्रगर उनका चुटीला व्यंग संक्षारी तेजाब की तरह जलाने की क्षमता रखता था, तो वही व्यंग दुखी ग्रौर विपन्न लोगों के लिए शान्तिप्रद भी हो सकता था।

दिसम्बर १८८१ में मेरी मां की मौत हो गई। उसके पन्द्रह महीने बाद वह व्यक्ति भी उनका मरण-संगी बन गया, जो जीवन में कभी उनसे ग्रलग नहीं हुग्रा था। जीवन के ज्वरावेग के बाद वे शान्तिपूर्वक सो रहे हैं। ग्रगर मेरी मां ग्रादर्श महिला थीं, तो वे—हां, वे

इनसान थे, हर चीज में इनसान;
होगा न कोई दूसरा,
उनके कभी समान!

एल्योनोरा मार्क्स-एवेलिंग

फ़्रेडरिक एंगेल्स*

२८ नवम्बर, १८९० को फ़्रेडरिक एंगेल्स ७० साल के हो जायेंगे। संसार के सभी समाजवादी यह सालगिरह मनायेंगे। इस अवसर पर मुझसे *«Sozialdemokratische Monatsschrift»* (सामाजिक-जनवादी मासिक) के पाठकों के लिए वर्तमान पार्टी के माने हुए अगुआ पर एक लेख लिखने को कहा गया है।

ऐसे कठिन काम के लिए आवश्यक सभी विभिन्न गुणों में से मैं अपने में एक ही गुण के होने का दावा कर सकती हूं और वह यह कि मैं उम्र भर से एंगेल्स को जानती हूं। फिर भी यह संदिग्ध बात है कि लम्बे और घनिष्ठ परिचय से कोई किसी का चरित्र-चित्रण करने में समर्थ हो सकता है कि नहीं। सबसे अधिक कठिन तो होता है स्वयं अपना वर्णन करना।

मार्क्स और एंगेल्स – इन दोनों व्यक्तियों का जीवन और कार्य इतना घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है कि उन्हें अलग नहीं किया जा सकता – की जीवन गाथा लिखने के लिए – "कल्पनावाद से विज्ञान तक" समाजवाद के विकास का ही नहीं, बल्कि लगभग आधी सदी से अधिक के दौरान पूरे मजदूर आन्दोलन का इतिहास लिखना पड़ेगा। कारण यह है कि वे दोनों व्यक्ति महज़ विचारधारात्मक नेता, ऐसे सिद्धान्त-शिक्षक, ऐसे दार्शनिक नहीं थे, जिन्होंने रोज़मर्रा के कामकाजी जीवन से अपने को बेगाना और अलग रखा

---

* १८९० में प्रकाशित। – सं०

हो। वे हमेशा योद्धा, हमेशा संग्राम की अगली क़तार में रहे, क्रांति के सैनिक भी रहे और क्रान्ति की कमान के सदस्य भी।

एंगेल्स के जीवन के ब्योरे अब इतने सुख्यात हैं कि उनका केवल संक्षिप्त उल्लेख करना ही पर्याप्त मालूम होता है। उनकी साहित्यिक तथा वैज्ञानिक कृतियां इतनी प्रख्यात हैं कि उनका विश्लेषण प्रस्तुत करने का प्रयास मेरी धृष्टता होगी : उनका केवल क्रमिक उल्लेख ही काफ़ी होगा। लेकिन मैं यहां व्यक्ति के रूप में एंगेल्स का, उनके जीवन और काम करने के ढंग का संक्षिप्त रेखाचित्र प्रस्तुत करने की कोशिश करना चाहती हूं। मेरा ख़याल है कि अनेक लोगों को इससे ख़ुशी हासिल हो सकेगी...

मैं यह मानती हूं कि एंगेल्स के समान जीवन का अध्ययन हम लोगों को, जो युवा हैं और उनके दिखाए रास्ते पर चल रहे हैं, मदद देगा और अनुप्राणित करेगा।

• • •

फ़्रेडरिक एंगेल्स राइनी प्रदेश के बार्मेन नगर में २८ नवम्बर, १८२० को पैदा हुए थे। उनके पिता कारख़ानेदार थे। यह ध्यान में रखना चाहिए कि उस समय राइनी प्रदेश शेष जर्मनी की अपेक्षा आर्थिक दृष्टि से काफ़ी आगे था।

उनका परिवार सम्मानित था। ऐसे परिवार में पैदा किसी पुत्र ने शायद ही कभी उससे इतना पूर्णतः भिन्न रास्ता अपनाया होगा। परिवारवालों ने ज़रूर ही उन्हें "भोंडा बत्तख़बच्चा" माना होगा। शायद वे लोग अभी तक यह नहीं समझते होंगे कि "बत्तख़बच्चा" दर-असल "राजहंस" था। जिस किसी ने भी एंगेल्स से उनके परिवार की चर्चा सुनी है, उसे यह स्पष्ट है कि उन्होंने अपनी ख़ुशमिजाजी अपनी मां से विरसे में पाई है।

वे आम ढंग से पढ़े और कुछ समय तक उन्होंने एल्बेफ़ेल्ड स्कूल में शिक्षा प्राप्त की। पहले उनका इरादा विश्वविद्यालय में दाख़िल होने का था, लेकिन वह इरादा कार्यान्वित नहीं हुआ। स्कूल की अन्तिम परीक्षा से एक साल पहले वे बार्मेन के एक कारोबार में दाख़िल हो गए और फिर स्वेच्छा से एक साल तक बर्लिन में फ़ौज में रहे।

विल्हेल्म लीब्कनेख़्त और तुस्सी (एल्योनोरा मार्क्स)

कार्ल मार्क्स की सबसे छोटी बेटी एल्योनोरा

१८४२ में उन्हें एक ऐसे कारोबार में काम करने के लिए मैन्चेस्टर भेज दिया गया, जिसमें उनके पिता साझेदार थे। वहां उन्होंने दो साल गुजारे और पूंजीवाद के क्लासीकी देश में, आधुनिक उद्योग के मर्मस्थल मे विताये गये उन दो वर्षों के महत्त्व को बढ़ा-चढ़ाकर नहीं आंका जा सकता।

यह बात उनके लिए चारित्रिक थी कि अपनी कृति 'इंगलैण्ड में मजदूर वर्ग की स्थिति' के लिए सामग्री जुटाते हुए उन्होंने चार्टिस्ट आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया और चार्टिस्टों के पत्र *«Northern Star»* और ओवेन के अखबार *«New Moral World»* में बराबर लिखते रहे।

१८४४ में एंगेल्स पेरिस होते हुए जर्मनी वापस गए। वहीं उनकी उस व्यक्ति से पहली मुलाक़ात हुई, जिसके साथ अर्से से पत्रव्यवहार कर रहे थे और जो उनका जीवन-पर्यन्त का मित्र बननेवाला था। यह व्यक्ति था कार्ल मार्क्स।

उस मुलाक़ात का तात्कालिक फल था 'पवित्र परिवार' का संयुक्त प्रकाशन और उस कृति का प्रारंभ, जो बाद में ब्रसेल्स में समाप्त हुई...

उसी साल एंगेल्स ने 'इंगलैण्ड में मजदूर वर्ग की स्थिति' लिखी, जो ४० साल पुरानी होने के बावजूद आज भी इतनी समसामयिक पुस्तक है कि जब उसका अंग्रेजी संस्करण निकला तब अंग्रेज मजदूरों ने समझा कि वह अभी चन्द साल पहले ही लिखी गयी है! उसी अर्से में एंगेल्स ने विभिन्न निबन्ध और लेख इत्यादि लिखे।

पेरिस से वे बार्मेन लौटे, मगर सिर्फ़ थोड़े समय के लिए।

१८४५ में वे मार्क्स के पीछे-पीछे ब्रसेल्स पहुंचे और वहीं वस्तुतः उनके संयुक्त कार्य का प्रारंभ हुआ। अपने अपार साहित्यिक कार्य के अतिरिक्त, दोनों मित्रों ने एक जर्मन मजदूर समिति की स्थापना की। लेकिन सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य उनका न्याय संघ में शामिल होना था, जिससे आगे चलकर प्रख्यात कम्युनिस्ट लीग का जन्म हुआ। उसी लीग में इन्टरनेशनल का बीज-रूप निहित था।

१८४७ में ब्रसेल्स में रहते हुए ही मार्क्स और पेरिस में एंगेल्स न्याय संघ के सैद्धान्तिक शिक्षक बन गए और उसी साल की गर्मियों में संघ की पहली कांग्रेस लंदन में हुई। एंगेल्स ने संघ के पेरिस सदस्यों के प्रतिनिधि के रूप में उसमें भाग लिया। संघ को पूरी तरह पुनःसंगठित किया गया।

उसी वर्ष की पतझड़ में संघ की दूसरी कांग्रेस हुई, जिसमें मार्क्स भी मौजूद थे। उसके फल – 'कम्युनिस्ट पार्टी के घोषणापत्र' – से आज सारी दुनिया परिचित है।

लंदन से दोनों मित्र कोलोन गए और फ़ौरन व्यावहारिक सरगर्मियों के क्षेत्र में कूद पड़े। उन सरगर्मियों का इतिहास «*Neue Rheinische Zeitung*» और मार्क्स के 'कोलोन के कम्युनिस्ट मुक़दमे के बारे में रहस्योद्घाटन' में दर्ज है।

अख़बार के बन्द होने और मार्क्स के निष्कासन के फलस्वरूप दोनों मित्रों को कुछ समय के लिए अलग होना पड़ा। मार्क्स पेरिस चले गये, एंगेल्स प्फ़ाल्त्स।

एंगेल्स ने बादेनी विद्रोह में विलिख़ के एजीटांट के रूप में भाग लिया। वे तीन बार फ़ौजी मुठभेड़ों में शरीक हुए और जिन्होंने उन्हें लड़ाई के मैदान में देखा था, वे उसके बहुत दिन बाद तक उनके असाधारण धीरज और ख़तरे के प्रति नितान्त उपेक्षाभाव की चर्चा करते रहे।

एंगेल्स ने «*Neue Rheinische Zeitung. Politisch-ökonomische Revue*»में बादेनी विद्रोह की रिपोर्ट लिखी। उसकी पूर्ण पराजय के बाद बादेन से स्विट्ज़रलैण्ड के लिए रवाना होनेवाले वे अन्तिम व्यक्ति थे। फिर वे लन्दन गए, जहां पेरिस से निष्कासन के बाद मार्क्स भी पहुंचे।

अब एंगेल्स के जीवन में एक नए दौर की शुरूआत हुई... मार्क्स लन्दन में बस गए और एंगेल्स मैन्चेस्टर की उस सूती मिल के लिए रवाना हो गए, जिसमें उनके पिता साझीदार थे। वहां जाकर उन्होंने अपना क्लर्की का काम फिर से शुरू कर दिया।

एंगेल्स को मजबूरन बीस साल तक कारोबारी जीवन बिताना पड़ा और इन बीस सालों के दौरान दोनों मित्रों की महज़ विरल, संक्षिप्त और सांयोगिक मुलाक़ातें ही होती रहीं। लेकिन उनका आपसी सम्पर्क बना रहा।

मैन्चेस्टर से आनेवाले पत्र मेरी पहली यादों में से हैं। दोनों मित्र एक दूसरे को प्रायः रोज़ पत्र लिखते थे और मुझे याद है कि "मूर", जैसा कि हम घर पर अपने पिता को पुकारते थे, कितना अक्सर उन पत्रों से बातें किया करते थे, मानो उनका लिखनेवाला वहां मौजूद हो।

"नहीं, बात यों नहीं है..."

"तुम्हारी यह बात सही है!", इत्यादि, इत्यादि।

लेकिन जो बात मुझे बहुत ही अच्छी तरह याद है, वह यह है कि एंगेल्स के पत्र पढ़ते हुए "मूर" कभी-कभी गालों पर आंसू बह निकलने तक हंसा करते थे।

ज़ाहिर है कि मैन्चेस्टर में एंगेल्स सर्वथा अकेले नहीं थे।

सबसे पहले तो "सर्वहारा वर्ग के निर्भीक, वफ़ादार, श्रेष्ठ योद्धा विल्हेल्म वोल्फ़ वहां थे", जिन्हें 'पूंजी' का पहला खण्ड समर्पित किया गया है और जिन्हें हम घर पर "लुपुस" कहा करते थे।

बाद में मेरे पिता और एंगेल्स के वफ़ादार मित्र सैमुएल मूर (जिन्होंने मेरे पति के साथ मिलकर 'पूंजी' का अंग्रेज़ी अनुवाद किया) और प्रोफ़ेसर शोर्लेमेर, जो आजकल के एक सर्वाधिक प्रमुख रसायनशास्त्री हैं, वहां पहुंच गये।

लेकिन यह सोचना भयावह है कि, इन मित्रों को छोड़कर, एंगेल्स जैसे व्यक्ति को बीस साल इस ढंग से गुज़ारने पड़े। यह बात नहीं है कि उन्होंने कभी इस बात की शिकायत की हो या इस पर कुड़बुड़ाए हों। क़तई नहीं। वे अपने काम पर इतने प्रसन्न और शान्त रहते थे, जैसे कि "नौकरी पर जाने" या दफ़्तर में बैठने जैसा दुनिया में और कुछ हो ही नहीं।

लेकिन मैं उस समय एंगेल्स के साथ थी, जब उनके उस जब्रिया श्रम का अन्त हुआ और मैं यह समझ गई कि उन बरसों के दौरान उन पर क्या कुछ गुज़री होगी। सुबह अन्तिम बार दफ़्तर जाने के लिए जूते पहनते हुए जिस विजयोल्लास के साथ उन्होंने पुकार लगाकर कहा था कि "बस, अन्तिम बार!", उसे मैं कभी न भूलूंगी।

चन्द घंटों बाद हम गेट पर खड़े उनका इन्तज़ार कर रहे थे। हमने उन्हें उनके मकान के सामनेवाले छोटे-से मैदान में से आते देखा। वे अपनी छड़ी लहराते हुए गा रहे थे और उनका चेहरा ख़ुशी से चमक रहा था। फिर हमने जश्न मनाने के लिए मेज़ लगायी और शैम्पेन पीकर आनन्दित हुए।

उस समय मैं बहुत छोटी थी और यह सब कुछ समझ नहीं सकती थी, पर अब, जब कभी इस बात की याद करती हूं, तो आंखों में आंसू आ जाते हैं।

उसके बाद, १८७० में एंगेल्स लन्दन आ गए और फ़ौरन इन्टरनेशनल

द्वारा शुरू किए गए प्रचुर काम का एक अंश अपने जिम्मे ले लिया। वे उसकी जनरल कौंसिल के सदस्य और साथ ही बेल्जियम तथा बाद में स्पेन और इटली के लिए पत्राचारी सदस्य थे।

इसके अलावा एंगेल्स असाधारण रूप से अधिक और विविधतापूर्ण लेखन-कार्य करते थे। उन्होंने १८७० से १८८० तक असंख्य लेख और पत्रक लिखे।

लेकिन हर लेहाज से उनकी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कृति 'श्री यूजेन ड्यूहरिंग द्वारा विज्ञान में प्रवर्तित क्रान्ति' है, जो १८७८ में प्रकाशित हुई। इस कृति के प्रभाव तथा महत्त्व की चर्चा करना आज ठीक उतना ही अनावश्यक है, जितना 'पूंजी' के प्रभाव तथा महत्त्व की।

अगले दस बरसों के दौरान एंगेल्स मेरे पिता के पास हर रोज आते रहे। वे कभी-कभी साथ टहलने निकल जाते, लेकिन उतना ही प्रायः वे मेरे पिता के कमरे में ही, अपनी-अपनी तरफ़ की दीवारों के साथ-साथ एक सिरे से दूसरे सिरे तक चहलक़दमी करते और कोने पर पहुंचकर मुड़ते समय अपनी एड़ी से गड्ढा-सा बनाते हुए बने रहते। इस कमरे में वे ऐसी ऐसी समस्याओं पर विचार करते जिनकी अधिकतर लोग कल्पना तक नहीं कर सकते। अक्सर वे चुपचाप कमरे के एक सिरे से दूसरे सिरे तक एक दूसरे की बगल में भी चहलक़दमी करते थे। या फिर, उनमें से प्रत्येक उस प्रश्न पर बात करता, जो उस समय मुख्यतः उसके मन पर छाया होता था और अन्त में दोनों आमने-सामने खड़े होकर यह स्वीकार करते हुए हंसने लगते कि पिछले आध घंटे से प्रत्येक ऐसे प्रश्नों में उलझा हुआ था जिनका दूसरे के प्रश्नों से कोई सम्बन्ध नहीं था।

अगर स्थान और समय की दृष्टि से सम्भव होता, तो उन दिनों के बारे में मैं कितना कुछ लिख सकती थी! इन्टरनेशनल के बारे में, कम्यून के बारे में और उन महीनों के बारे में, जब कि हमारा घर होटल बना रहा था, जहां हर उत्प्रवासी के लिए दरवाजे खुले रहते थे और उसे सहायता प्राप्त होती थी।

१८८१ में मेरी मां की मृत्यु हो गई। मेरे पिता, जिनका स्वास्थ्य गिरता जा रहा था, चन्द महीनों तक ब्रिटेन से बाहर रहे। १८८३ में वे भी चल बसे।

हर कोई जानता है कि तब से एंगेल्स ने कितना कुछ किया है। उन्होंने अपना अधिकांश समय मेरे पिता की कृतियों को प्रकाशित कराने, नये संस्करणों के प्रूफ़ पढ़ने तथा 'पूंजी' के अनुवादों को देखने-भालने में लगाया है। मुझे इस काम या उनके अपने मौलिक लेखन की चर्चा करने की जरूरत नहीं है।

एंगेल्स ने हर रोज जितना काम किया है, उसे वे लोग ही समझ सकते हैं, जो उनको जानते हैं। अंग्रेजों, जर्मनों और फ़ान्सीसियों की तो बात ही क्या, इतालवी, स्पेनी, डच, डेनमार्की और रूमानियाई लोग (एंगेल्स को इन सारी भाषाओं का पूर्ण ज्ञान है) – सभी उनके पास सहायता और परामर्श के लिए आते हैं।

हम सभी, जो जन-हित के लिए काम करते हैं, हर कठिनाई का सामना होने पर एंगेल्स के पास जाते हैं और उनसे हमारी कोई अपील कभी व्यर्थ नहीं जाती।

हाल के बरसों में इस अकेले व्यक्ति ने जितना काम किया है, वह एक दर्जन साधारण लोगों के लिए भी अधिक होता। और एंगेल्स फिर भी काम करते जाते हैं, क्योंकि वे जानते हैं, जैसा कि हम सब जानते हैं, जो कुछ मार्क्स छोड़ गए हैं, उसे केवल वे ही संसार को दे सकते हैं। एंगेल्स को अभी हम लोगों के लिए बहुत कुछ करना है, और वे करेंगे भी!

यह उनके जीवन का महज रेखाचित्र है। कहा जा सकता है कि यह उस आदमी का ढांचा है, स्वयं वह आदमी नहीं है। उस ढांचे में प्राण फूंकने के लिए मुझसे, शायद हम में से हर किसी से, अधिक योग्य होना जरूरी है। हम उनके बहुत ही निकट हैं और इसलिए उनका असली मूल्यांकन करने में असमर्थ हैं।

• • •

एंगेल्स अब सत्तर साल के हो चुके हैं। लेकिन वे बड़ी आसानी से इतने बरसों का बोझ संभाले हुए हैं। उनमें शारीरिक और मानसिक उत्साह विद्यमान है। वे अपने छे फ़ुट से कुछ अधिक लम्बे क़द को ऐसे सम्भाले रहते हैं कि इतने लम्बे नहीं लगते। उनकी दाढ़ी, जो अजीब बात है कि

एक ही तरफ़ को बढ़ती है, अब सफ़ेद होने लगी है। इसके विपरीत उनके केशों में सफ़ेदी का नाम-निशान भी नही है। वे ज्यों के त्यों भूरे हैं। जो भी हो, पर ख़ूब जांच करने पर भी कोई सफ़ेद बाल नहीं मिला। केशों की दृष्टि से वे हम में से अधिकतर की अपेक्षा जवान हैं।

इतना ही नहीं, वे जितने जवान दिखाई देते हैं उससे भी अधिक जवान हैं। वस्तुत: मेरी जान-पहचान के लोगों में तो वे सबसे अधिक जवान हैं। जहां तक मेरी याद साथ देती है, पिछले बीस कठिन बरसों के दौरान वे ज़रा भी बूढ़े नहीं हुए हैं।

१८६६ में मैं उनके साथ आयरलैण्ड गई थी और उनके साथ उस देश को देखना बहुत रोचक रहा, क्योंकि वे "राष्ट्रों की निओबा"*, आयरलैण्ड का इतिहास लिखना चाहते थे। उसके बाद १८८८ में मैं उनके साथ अमरीका गई। १८८८ में भी वे १८६६ की तरह ही जिन्दादिल थे और जिस समूह या जिन लोगों के बीच होते, उनका केन्द्र-बिन्दु और आत्मा बन जाते।

'सिटी आफ़ बर्लिन' और 'सिटी आफ़ यून्यार्क' नामक जहाज़ों पर वे हर तरह के मौसम में डाक पर टहलने और गिलास भर बियर पीने के लिए हमेशा तैयार रहते थे।

कभी भी बाधाओं से कतराना नहीं, बल्कि उनपर से छलांग मारकर अथवा चढ़कर पार करना उनके जीवन का एक पक्का उसूल प्रतीत होता है।

यहां मैं अपने पिता और एंगेल्स के चरित्र के एक पक्ष का विवेचन करना और उस पर अधिक जोर देना चाहती हूं, क्योंकि बाहरी दुनिया

---

*पौराणिक कथा के अनुसार फ़ीब राजा अम्फ़ीओन की पत्नी निओबा ने अपने बहुसंख्यक बच्चों से गर्वित होकर लेतो देवी का उपहास किया, जिसके केवल दो बच्चे थे—अपोल्लो तथा अर्थेमीदा। अत: निओबा को दण्ड देने के लिये लेतो की आज्ञा पर अपोल्लो तथा अर्थेमीदा ने निओबा के सभी बच्चों को मार डाला और ख़ुद निओबा को अश्रुप्रवाहिनी चट्टान में परिवर्त्तित कर दिया। यहां आयरलैण्ड की निओबा से तुलना की गई है।—सं०

उससे अपरिचित है और अधिकतर लोगों को वह अविश्वसनीय प्रतीत होता है।

मेरे पिता को हमेशा एक प्रकार के पुरुषद्वेषी, कटुभाषी, मित्र और शत्रु, सभी पर समान रूप से विजलियां गिराने के लिए तत्पर जुपिटर के रूप में वर्णित किया गया है।

लेकिन जिस किसी को एक वार भी उनकी सुन्दर भूरी आंखों में झांकने का मौक़ा मिला, जो अन्तर्भेदिनी होने के साथ-साथ ही इतनी मृदुल, इतनी विनोदपूर्ण और सदय थीं; जिस किसी ने भी उनकी संक्रामक, मनोल्लासक हंसी सुनी, वह जानता है कि व्यंग्यपूर्ण जुपिटर एक कोरी कल्पना है।

यही वात एंगेल्स के लिए भी सही है। ऐसे लोग हैं जो उन्हें तानाशाह, स्वेच्छाचारी और छिद्रान्वेषी आलोचक के रूप में चित्रित करते हैं। लेकिन इस वात में कोई भी सचाई नहीं है...

युवाजन के प्रति एंगेल्स की अजस्र अनुग्रहशीलता की बात करना मैं आवश्यक नहीं समझती। हर देश में ऐसे काफ़ी लोग हैं जो उसकी गवाही दे सकते हैं। मैं केवल इतना ही कह सकती हूं कि मैंने उन्हें बहुत अक्सर किसी नौजवान की दोस्ताना सेवा करने के लिए अपने काम को ताक पर रखते देखा है और किसी नौसिखुए की मदद करने के कारण उनका अपना काम उपेक्षित पड़ा रहा है।

एक वात के लिए एंगेल्स कभी क्षमा नहीं करते और वह है धोखा-धड़ी। जो व्यक्ति अपने प्रति कपटाचारी है और उससे भी बढ़कर अपनी पार्टी के प्रति कपटाचारी है, वह एंगेल्स के यहां किसी दया का अधिकारी नहीं है। वे इसे अक्षम्य पाप मानते हैं...

यहां मैं एंगेल्स के एक और लक्षण का उल्लेख करना चाहती हूं। यद्यपि वे संसार के अधिकतम सटीक व्यक्ति हैं और अन्य सभी की अपेक्षा उनमें कर्त्तव्य तथा सर्वोपरि पार्टी अनुशासन की भावना तो बहुत ही प्रबल है, तथापि वे लकीरपंथी तनिक भी नहीं हैं...

एंगेल्स के युवकोचित जोश और उनकी कृपालुता के अतिरिक्त कोई चीज़ भी इतनी अद्भुत नहीं है, जितनी उनकी बहुविज्ञता है। ज्ञान की प्रत्येक शाखा में – प्राकृतिक इतिहास, रसायन विज्ञान, वनस्पति विज्ञान,

भौतिकी, भाषा विज्ञान (आठवीं दशाब्दी में *«Figaro»* ने लिखा था, "वे बीस भाषाओं में हकलाते हैं"), राजनीतिक अर्थशास्त्र, और अन्ततः, किन्तु किसी भी अर्थ में कम महत्त्वपूर्ण नहीं, सैनिक पैंतरेबाजी में वे अपनी ज़मीन पर होते हैं। १८७० में फ़्रान्सीसी-प्रशियाई युद्ध के दौरान एंगेल्स ने *«Pall Mall Gazette»* में जो लेख प्रकाशित कराए, उनकी बड़ी धूम रही, क्योंकि उनमें उन्होंने सेदान के संग्राम और फ़्रान्सीसी सेना के चकनाचूर होने की अचूक भविष्यवाणी की थी।

प्रसंगवश कहें कि उसी समय से उन्हें "जनरल" उपनाम दिया गया है। मेरी बहन ने उन्हें *«General Staff»* घोषित कर दिया। वह नाम उनपर चिपककर रह गया और तब से हम उन्हें "जनरल" ही पुकारते रहे हैं। लेकिन आज उस उपनाम का अर्थ व्यापकतर हो गया है: एंगेल्स हमारी मजदूर वर्गी सेना के वास्तविक जनरल हैं...

एंगेल्स के एक दूसरे रूप, और शायद सर्वाधिक तात्त्विक रूप का अवश्य ही उल्लेख किया जाना चाहिए। वह है उनकी नितान्त निस्स्वार्थता।

उन्होंने कहा, "मार्क्स के जीवन काल में मैं गौण भूमिका अदा करता रहा और मेरा ख़याल है कि मैंने उसमें दक्षता प्राप्त कर ली है और मुझे बेहद ख़ुशी है कि मुझे मार्क्स जैसा निपुण मुख्य वादक मिल गया था।" आज एंगेल्स वाद्यवृन्द के निदेशक हैं। लेकिन उनमें वैसी ही नम्रता, सादगी और सरलता है, मानो वे उन ही के शब्दों में "गौण वादक" हों।

अनेक लोगों की तरह मुझे भी अपने पिता और एंगेल्स की मैत्री की चर्चा करने का अवसर मिला है। वह ऐसी मैत्री थी, जो ग्रीक पुराण-कथाओं में वर्णित दामोन और पाइथियास की मैत्री के समान ऐतिहासिकता प्राप्त कर लेगी।

ये टीपें उन दो मैत्रियों की चर्चा के बिना पूर्ण नहीं हो सकतीं, जो उन्हें मेरे पिता की संगति के फलस्वरूप प्राप्त हुई थीं और जिन्होंने उनके जीवन और कार्य पर प्रभाव डाला है। पहली है मेरी मां के साथ उनकी मैत्री और दूसरी हेलेन देमुत के साथ, जो इस साल ४ नवम्बर को चल बसी और माता-पिता की बग़ल में ही सुख की नींद सो रही है।

मेरी मां की क़ब्र पर एंगेल्स ने ये शब्द कहे थे:

"मित्रो!

"जिस उदारमना महिला को हम मिट्टी दे रहे हैं, वे १८१४ में ज़ाल्त्सवेदेल में पैदा हुई थीं। उनके पिता, बैरन फ़ॉन वेस्टफ़ालेन, उसके शीघ्र ही बाद सरकारी सलाहकार के रूप में त्रियेर भेज दिए गए और वहां उनकी मार्क्स परिवार के साथ घनिष्ठ मैत्री हो गई। बच्चे साथ-साथ बड़े हुए। दो परम मेधावी प्रकृतियों ने एक दूसरे को पा लिया। जब मार्क्स विश्वविद्यालय में दाख़िल हुए तो उन दोनों के चिरसंगी बनने की बात निश्चित तथ्य बन चुकी थी।

"१८४३ में, पहले *«Rheinische Zeitung»* समाचारपत्र के बन्द कर दिए जाने के बाद, जिसके मार्क्स कुछ समय तक सम्पादक रहे थे, उनका विवाह हुआ। उसके बाद से जेनी मार्क्स न केवल अपने पति के भवितव्य, कार्य और संघर्ष में भागीदार रहीं, बल्कि उन्होंने अधिकतम समझबूझ और अधिकतम गरमजोशी के साथ उनमें भाग लिया।

"युवा दम्पति स्वेच्छित निर्वासन के रूप में पेरिस गये और वह निर्वासन बहुत शीघ्र ही वास्तविक बन गया। वहां भी प्रशियाई सरकार ने मार्क्स का पीछा किया। यहां यह भी कहा जाना चाहिए कि दुर्भाग्य से अलेक्ज़ेंडर फ़ॉन हम्बोल्ट जैसा व्यक्ति इतना नीचे गिर गया कि उसने मार्क्स के ख़िलाफ़ निष्कासन-आज्ञा प्राप्त करने में हाथ बंटाया। परिवार को ब्रसेल्स जाने के लिए विवश होना पड़ा।

"तभी फ़रवरी क्रान्ति हुई। फलस्वरूप ब्रसेल्स में भड़क उठे उपद्रवों के दौरान केवल मार्क्स ही नहीं गिरफ़्तार किए गए, बल्कि बेल्जियमी पुलिस ने तो किसी आधार के बिना उनकी पत्नी को भी जेल में ठूंस दिया।

"१८४८ की क्रान्तिकारी लहर अगले चन्द बरसों में शान्त हो गयी। फिर वही निर्वासन, पहले पेरिस में और उसके बाद फ़्रान्सीसी सरकार की नयी दख़लन्दाजी के फलस्वरूप लन्दन में। और इस बार का निर्वासन अपनी सारी विभीषिकाओं के साथ जेनी मार्क्स के लिए एक यथार्थ बन गया। इसके बावजूद वे उस आर्थिक कठिनाई को तो सह ही लेतीं, जिसके फलस्वरूप उन्हें अपने दो बेटों और एक छोटी बच्ची से हाथ धोना पड़ा, लेकिन सरकार और पूंजीवादी विरोधपक्ष ने, जिसमें कुत्सित उदारतावादियों से लेकर जनवादी तक शामिल थे, उनके पति के विरुद्ध मिलकर एक ज़बर्दस्त साज़िश की और उनपर अधिकतम नीच और गर्हित लांछनाओं की

झड़ी लगा दी; सभी अख़बारों ने एक होकर उन्हें आत्म-रक्षा के प्रत्येक साधन से वंचित कर दिया, जिससे कि कुछ समय के लिए वे अपने शत्रुओं के सामने, जिन्हें वे नफ़रत करने के सिवा और कुछ कर ही नहीं सकते, असहाय हो गए,—इन सारी बातों से उन्हें गहरा आघात पहुंचा। ऐसी स्थिति बहुत दिनों तक क़ायम रही।

"लेकिन सदा के लिए नहीं। यूरोपीय सर्वहारा वर्ग ने फिर अपने अस्तित्व की ऐसी परिस्थितियां उपलब्ध कर लीं, जिनमें वह कुछ हद तक स्वतन्त्र रूप से क्रियाशील हो सकता था। इन्टरनेशनल की स्थापना की गई। सर्वहारा का वर्ग संघर्ष एक देश से दूसरे देश में फैलने लगा और उनके पति अग्रणी संघर्षकर्त्ताओं में सबसे अग्रणी थे। उसके बाद उनके लिए ऐसा समय आया, जिसने उनकी कुछ कठिनाइयों की क्षतिपूर्त्ति कर दी। वे यह देखने के लिए जीवित रहीं कि जिस लांछना ने उनके पति को आहत किया था वह हवा के सामने भूसे की तरह उड़ गयी। वे यह देखने के लिए जीवित रहीं कि उनके पति की शिक्षा का, जिसे दबा देने के लिए सामन्ती से लेकर जनवादी तक, सभी प्रतिक्रियावादी पार्टियों ने एड़ी-चोटी का जोर लगाया था, सभी सभ्य देशों और सभी भाषाओं में खुले आम प्रचार होने लगा। वे यह देखने के लिए जीवित रहीं कि सर्वहारा आन्दोलन, जो उनके अपने अस्तित्व के साथ एकरूप हो गया था, रूस से अमरीका तक के पुराने संसार को झकझोरने लगा और सारे प्रतिरोधों के बावजूद विजय में अधिकाधिक विश्वास के साथ आगे बढ़ने लगा। और उनकी अन्तिम ख़ुशियों में से एक ख़ुशी यह थी कि हमारे जर्मन मजदूरों ने राइख़स्ताग के पिछले चुनावों में अपनी अशेष ओवन शक्ति का ज्वलन्त प्रमाण प्रस्तुत किया।

"ऐसी अन्तर्भेदी आलोचनात्मक मेधा, ऐसी राजनीतिक व्यवहार-कुशलता, ऐसे ओजस्वी तथा तीव्रोत्साही चरित्र और अपने संघर्षमान साथियों के प्रति ऐसी निष्ठावाली इस महिला ने लगभग चालीस साल तक आन्दोलन के लिए क्या कुछ किया, आम जनता यह बात नहीं जानती, हमारे समय के अख़बारों के वृत्तलेखों में इसका जिक्र तक नहीं है। इसे तो वही जान सकता है, जिसे इसकी अनुभूति हुई हो। लेकिन मैं इतना जरूर जानता हूं कि अगर कम्यून के उत्प्रवासियों की पत्नियां उन्हें अक्सर याद करेंगी, तो हम दूसरों को अक्सर उनकी सुलझी हुई और बुद्धिमत्तापूर्ण सलाह का अभाव

खलेगा—उस सुलझी हुई सलाह का अभाव जो आडम्बरहीन होती थी, वह बुद्धिमत्तापूर्ण सलाह जो प्रतिष्ठा के किसी प्रश्न पर झुकना नहीं जानती थी।

"उनके निजी व्यक्तिगत गुणों की बात करना मैं आवश्यक नहीं समझता। उनके मित्र उन्हें जानते हैं और भूलेंगे नहीं। अगर संसार में कभी कोई ऐसी महिला हुई हैं, जिनका सबसे बड़ा सुख दूसरों को सुखी बनाना रहा, तो वह यही महिला थीं।"

हेलेन देमुत की अन्त्येष्टि पर एंगेल्स ने कहा:

"मार्क्स अक्सर पार्टी के कठिन और पेचीदा मामलों में उससे सलाह लेते थे... जहां तक मेरा सम्बन्ध है, तो मार्क्स की मृत्यु के बाद से जो सारे काम करने में समर्थ हुआ हूं, उसके लिए मैं बड़ी हद तक उस सुखद वातावरण और सहायता का ऋणी हूं, जो उसकी उपस्थिति से मेरे घर को प्राप्त हुई, जहां मार्क्स की मृत्यु के बाद आकर रहने का उसने मुझे सम्मान प्रदान किया।"

मार्क्स और उनके परिवार के लिए वह क्या थी इसका केवल हम लोग ही मूल्यांकन कर सकते हैं और उसे शब्दों में तो हम भी नहीं व्यक्त कर सकते। १८३७ से १८९० तक वह हम में से प्रत्येक की सच्ची मित्र और सहायिका रही।

एडगर लॉन्गे

कार्ल मार्क्स के पारिवारिक जीवन के कुछ पहलू*

मेरी यह हार्दिक इच्छा है कि कार्ल मार्क्स के पारिवारिक जीवन की रूपरेखा प्रस्तुत करने के लिए मैं अनेक निजी यादों को आधार बनाता। किन्तु दुर्भाग्यवश ये यादें वर्षों के व्यवधान द्वारा और सबसे बढ़कर इस तथ्य के कारण धुंधली पड़ गई हैं कि जब मैंने अपने नाना को अन्तिम बार देखा था, तब केवल तीन साल का था।

लेकिन यह अजीब बात है कि न जाने क्यों व्यक्ति के जीवन में घटनेवाली अनेक घटनाओं में से कुछ तथ्य दिमाग़ में नक़्श रह जाते हैं।

इस प्रकार मुझे अपने नाना और भाई जॉन के साथ बोई दे शांप्रू की सैर की बहुत स्पष्ट याद है। तब, १८८२ के साल तक शतावरी खेतों और अंगूरी बाग़ों से युक्त आर्जेन्त्योए दूरस्थ देहात जैसा लगता था। यह जुलाई १८८२ की बात है, जब मार्क्स मेरे माता-पिता से मिलने वहां आए थे। कम्यून के भूतपूर्व सदस्य, मेरे पिता शार्ल लॉन्गे के १८८० के अन्त में निर्वासन से लौटने के बाद मेरे माता-पिता उसी देहाती ज़िले में रहते थे।

---

* ये टीपें फ़्रान्सीसी कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्य और कार्ल मार्क्स के नाती (यानी उनकी बेटी जेनी और शार्ल लॉन्गे के पुत्र) एडगर लॉन्गे द्वारा मार्च १९४९ में कार्ल मार्क्स की ६६वीं बरसी पर लिखी गई थीं। उसी वर्ष फ़्रांसीसी कम्युनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय समिति के मुखपत्र 'कम्युनिज़्म की कापियां' में प्रकाशित।—सं०

मेरे नाना ने मेरे बचपन के दिनों में मुझे जो खेदजनक, पर मानना पड़ेगा कि बिलकुल उचित, ख्याति प्रदान की, उसके लिए मेरे मन में कोई दुर्भावना नहीं है। ऐसा लगता है कि जब मैं कोई अठारह महीने का था, तो बहुत खाऊ था और इस कारण नाना जी मुझे "भेड़िया" कहने लगे। मार्क्स ने मुझे यह नाम इस कारण दिया कि एक दिन मुझे कच्चे गुर्दे के एक टुकड़े को चाकलेट का टुकड़ा समझकर चबाते हुए देख लिया गया और अपनी ग़लती के बावजूद उसे चबाता रहा।

बहरहाल, मेरी मां को लिखे एक पत्र में नाना जी ने मेरे प्रति अपनी उस राय को कुछ हल्का बना दिया था: "जॉनी और हैरी" (मेरा छोटा भाई) "और नेक 'भेड़िए' को, जो सचमुच बहुत बढ़िया बच्चा है, मेरी याद दिलाना।"

नाती-नातिनों के साथ मार्क्स के सम्बन्धों पर मैं बाद को लौटूंगा। अभी तो उनके राजनीतिक जीवन को छुए बिना ही उनके पारिवारिक जीवन का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करना चाहता हूं।

• • •

संक्षेप में याद दिलाऊं कि त्रियेर नगर पर फ़्रांस के क़ब्ज़े की समाप्ति के शीघ्र ही बाद १८१८ में मार्क्स का वहां जन्म हुआ।

उनके पिता ने, जो यहूदी थे और जिनके पूर्वजों में रावियों (यहूदी पादरियों) की एक लम्बी शृंखला शामिल थी, प्रोटेस्टैण्ट मत ग्रहण कर लिया था, जिससे उनके विचार में वकालत के पेशे में सुविधा होगी।

अठारह साल की उम्र में मार्क्स की मंगनी जेनी फ़ॉन वेस्टफ़ालेन के साथ हो गई, जो "त्रियेर में सबसे अधिक सुन्दर मानी जाती थीं"। उनका परिवार ब्रून्सविक से सम्बन्ध रखता था।

अपने नाना जी के जीवन का पहला हिस्सा, जो राजनीतिक दृष्टि से सुविख्यात है, मैं छोड़े दे रहा हूं और महज़ यह याद दिलाऊंगा कि वे १८४३ में पेरिस आए और जनवरी १८४५ में वहां से निर्वासित कर दिए गए (उसी पेरिस-प्रवास के दौरान मेरी मां पैदा हुईं और इस प्रकार वे जन्मना पेरिसवाली थीं)।

उसके बाद वे ब्रसेल्स में रहे, लेकिन वहां से भी निर्वासित कर दिए गए और २४ फ़रवरी को निर्मित अस्थायी सरकार के नाम पर फ़्लोकों द्वारा बुलाए जाने पर ५ मार्च, १८४८ को फिर पेरिस लौट गए।

अप्रैल में इस बात के क़ायल होकर वे पेरिस छोड़कर जर्मनी चले गए कि सर्वहारा वर्ग द्वारा सम्पन्न की गई फ़रवरी क्रान्ति ने पूंजीपति वर्ग को एक बार फिर सत्ता पर अधिकार जमाने और मजदूर वर्ग के ख़िलाफ़ इस्तेमाल करने की सम्भावना दी है।

जर्मनी में उन्होंने क्रान्ति का झंडा बुलन्द किया और उस दिन तक घनघोर संघर्ष करते रहे, जब प्रतिक्रिया विजयी हुई और उन्हें फिर से जलावतनी के लिए मजबूर होना पड़ा।

वे जून १८४९ के शुरू में पेरिस लौट आए और राजतंत्रवादियों के बहुमतवाली विधान सभा की बैठक के समय वहां मौजूद थे।

एक महीना मुश्किल से बीता होगा कि उन्हें सौजन्यपूर्वक २४ घंटे के भीतर नगर छोड़ने को कह दिया गया। तब वे अगस्त १८४९ के अन्त में इंगलैंड चले गए और उसी देश में, जो उस समय संसार के सभी निर्वासितों का आश्रय स्थान था, उन्होंने अपना बाक़ी जीवन बिताया, चौंतीस साल गुजारे। शुरू में ही मैं यह कहना जरूरी समझता हूं कि अपनी निरन्तर गिरती हुई तन्दुरुस्ती (जिगर की बीमारी, दमे के दौरों, फोड़ों के प्रायिक विस्फोटों) और आर्थिक कठिनाइयों के बावजूद अगर वे अपने आरम्भ किए हुए कार्यभार की पूर्त्ति कर सके, तो इसका श्रेय फ़्रेडरिक एंगेल्स को ही था।

मार्क्स और एंगेल्स की मैत्री ओरेस्तेस और पाइलादेस* की प्राचीन गाथा की तरह ही इतिहास में स्थान पाने के योग्य है। एंगेल्स ने अपने जीवन के अधिकतर भाग में मैंचेस्टर में अपने पिता के कारोबार की एक शाखा का प्रबन्ध-भार केवल इसलिए ढोया और एक ऐसा व्यवसाय, जो उनके लिए भारी बोझ था, इसलिए चलाया कि मार्क्स को अपना काम पूरा करने में सहायता दे सकें। इसमें तनिक सन्देह नहीं है कि एंगेल्स के बिना मार्क्स और उनका परिवार भूखों मर जाते।

---

*यूनानी पुराण-कथाओं में सच्ची दोस्ती की मिसाल।—सं०

मैं एक और व्यक्ति के बारे में भी कुछ शब्द कहना चाहता हूं, जिसने मार्क्स के जीवन और परिवार में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। मेरा अभिप्राय सौहार्दपूर्वक लेन्हेन नाम से पुकारी जानेवाली श्रेष्ठ महिला हेलेन देमुत से है।

वह आठ या नौ साल की उम्र में मेरी परनानी बैरनेस फ़ॉन वेस्टफ़ालेन की सेवा में नियुक्त हुई और मेरी नानी के विवाह के दिन से मृत्यु के दिन तक उनके साथ हर जगह—पेरिस, ब्रसेल्स और लन्दन में—बनी रही।

उसने बच्चों की पैदाइशें और मौतें देखीं, मार्क्स परिवार के साथ ग़रीबी, भूख और विपत्ति की यातनाएं झेलीं, उनके बच्चों, मित्रों और सर्वतः वंचित उत्प्रवासियों की देखभाल की, हर चीज़ के गिरवी हो जाने की हालत में भी खिलाने-पिलाने की गुंजाइश निकाली, कपड़े सीने और धोने अथवा बीमार होने की हालत में उनकी चारपाइयों के पास बैठकर रातें गुज़ारीं। मेरे मन में उसकी अधिकतम मर्मस्पर्शी स्मृतियां बनी हुई हैं।

वह श्लाघनीय महिला मार्क्स, उनकी पत्नी और उनके नाती हैरी के साथ लन्दन के हाईगेट क़ब्रिस्तान में दफ़नाए जाने की पूर्णतः अधिकारिणी थी।

लन्दन में उत्प्रवासियों की ग़रीबी

अब मैं उन नितान्त साधनहीन लन्दन आनेवाले उत्प्रवासी और उत्प्रवासी परिवार के जीवन का संक्षिप्त विवरण देना चाहता हूं। मार्क्स और उनके परिवार के लिए वहां दैन्य, यातनाओं और मुसीबतों का जीवन प्रारंभ हुआ और एंगेल्स के नाम मार्क्स के एक पत्र के निम्न उद्धरण से बढ़कर उस जीवन की बेहतर रूपरेखा और किसी बात द्वारा नहीं प्रस्तुत की जा सकती कि "मैं अपनी पत्नी द्वारा रो-रोकर गुज़ारी जानेवाली संत्रासकारी रातों को अब और नहीं झेल सकता..."

मकान से निकाले जाने पर जून १८५० में मार्क्स ने अपने परिवार के साथ लिसेस्टर स्क्वेयर के एक मामूली होटल और बाद में डीन स्ट्रीट में शरण ली, जहां उनका वासा और भी अधिक अकिंचन था—एक कमरे के

साथ संलग्न एक कोठरी। चुनांचे वही एक कमरा रसोईघर, अध्ययनकक्ष और दीवानखाने का काम देता था।

मुसीबतें तो लगातार आती ही रहीं।

फ़ान्सिस्का के जन्म पर मार्क्स ने १८५१ में एंगेल्स को लिखा था: "२८ मार्च को मेरी पत्नी ने एक बच्चे को जन्म दिया। बच्चे की पैदाइश के समय बहुत तकलीफ़ नहीं हुई। लेकिन वे शारीरिक कारणों से अधिक आर्थिक कारणों से अभी तक चारपाई से लगी हैं। मेरे घर में शब्दशः कानी कौड़ी भी नहीं है, लेकिन दुकानदारों, गोश्तवाले, रोटीवाले आदि-आदि के बिलों की मेरे पास कोई कमी नहीं है...

"तुम स्वीकार करोगे कि ये सारी बातें कुछ अच्छी तस्वीर नहीं पेश करतीं और मैं गले तक टुटपुंजिया दलदल में फंसा हुआ हूं। इसके साथ ही मुझपर यह आरोप लगाया जाता है कि मैं मजदूरों का शोषण करता हूं तथा तानाशाही की तमन्ना रखता हूं। कितनी भयंकर बात है!"

इसी प्रकार ८ सितम्बर, १८५२ के पत्र में उन्होंने लिखा था:

"मेरी पत्नी बीमार हैं। जेनी" (मेरी मां) "बीमार है। हेलेन को एक प्रकार का स्नायविक ज्वर है। मैं डाक्टर बुलाने में असमर्थ रहा हूं और अब भी हूं, क्योंकि मेरे पास दवा के लिए पैसे नहीं हैं। पिछले हफ़्ते भर मैं अपने परिवार को रोटी और आलू खिलाता रहा हूं और मैं नहीं जानता कि आज के लिए कुछ और रोटी-आलू मुहैया कर सकूंगा कि नहीं।"

जनवरी १८५५ को छठी सन्तान की पैदाइश हुई। वे उसे तुस्सी (मेरी मौसी एल्योनोरा एवेलिंग) पुकारते थे। वह इतनी कमजोर थी कि उसके किसी भी दिन मर जाने की आशंका बनी रहती थी। उसके चन्द महीनों बाद मार्क्स पर उनके जीवन की एक सबसे बड़ी गाज गिरी: उनका एकमात्र बेटा, एडगर, उनका "मुश", "कर्नल मुश" उनकी गोद में ही मर गया। बच्चा हफ़्तों से मौत के ख़िलाफ़ संघर्ष करता आ रहा था और मार्क्स पत्रों द्वारा उसकी हालत की बेहतरी और बदतरी की सूचना देते जा रहे थे। लेकिन ३० मार्च के पत्र में मार्क्स ने एंगेल्स को लिखा: "बीमारी अन्ततः उदर के निचले हिस्से की थाइसिस साबित हुई, जो मेरे परिवार की आनुवंशिक बीमारी है और डॉक्टरों ने सारी आशा त्याग दी है... मेरा हृदय रक्त के आंसू रो रहा है और मेरा सिर जल रहा है, हालांकि

मुझे शान्त रहना चाहिए। अपनी बीमारी के दौरान बच्चा अपने गुणों के अनुरूप ही रहा है—नेक और व्यक्तित्व-गर्भित।"

बच्चा सचमुच ही बहुत ज़हीन था और अपने पिता की तरह किताबों का प्रेमी था।

१२ अप्रैल, १८५५ को बेचारे नाना जी ने एंगेल्स को लिखा: "बच्चे की मृत्यु के बाद, जो घर की रूह था, हमारा घर नितान्त शून्य और उजाड़ हो गया है। मैं तुम से बयान नहीं कर सकता कि हर कहीं हमें उसका अभाव कितना अधिक खटकता है। मैं तरह-तरह की यातनाएं भोग चुका हूं, लेकिन केवल अब जाकर ही मुझे यह पता चला है कि वस्तुतः दुःख क्या होता है। मैं महसूस करता हूं कि मैं बिल्कुल टूट गया हूं। सौभाग्य से दफ़न-कफ़न के दिन से ही मुझे ऐसा सिरदर्द रहा है कि मुझे मानो ज़िन्दा होने की ही चेतना नहीं रही।

"इन दिनों मैंने जो भयानक यातनाएं भोगी हैं, उनमें तुम्हारी दोस्ती के ख़याल और इस यक़ीन ने मुझे हमेशा सहारा दिया है कि हम दोनों के लिए इस धराधाम पर अभी समझदारी का कोई काम करना बाक़ी है।"

चन्द हफ़्तों बाद नानी जी की माता का देहान्त हो गया और उन्हें उत्तराधिकार में कुछ सौ थालेर प्राप्त हुए, जिससे उनका परिवार ग्रैफ़्टन स्क्वेयर के एक अधिक स्वास्थ्यकर मकान में जाकर रहने लगा।

मार्क्स की एक और सन्तान बहुत ही बचपन में मर गई। उसकी मृत्यु के साथ जुड़ी हुई परिस्थितियां घोर पाशविक थीं और नाना जी पर उनकी ऐसी दर्दनाक छाप पड़ी कि वे "कई दिनों तक अपने को सम्भाल नहीं पाये"।

अनेक बरसों तक मार्क्स और उनके परिवार के लिए जीवन वैसा ही कठोर बना रहा, पर शोक की घड़ियां कम आईं।

«New York Tribune» में छपनेवाले उनके लेखों की बदौलत उनकी आर्थिक स्थिति कुछ बरसों के लिए ज़रा बेहतर हो गई और उसके बाद फिर वही ग़रीबी, जो इतनी क्लेशकर थी कि मार्क्स ने एंगेल्स को यह तक लिख दिया: मेरा इरादा हो रहा है कि अपने बच्चों को कुछ मित्रों के हवाले कर दूं, हेलेन देमुत को बर्ख़ास्त कर दूं, बीवी के साथ किसी मामूली होटल में जा बसूं और सामान्य ख़ज़ांची का काम तलाश करूं।

उनकी मां की मृत्यु के बाद १८६३ में उन्हें एक छोटा-सा दायभाग मिल गया। कुछ समय बाद उनके पुराने मित्र विल्हेल्म वोल्फ़ मर गए और अपनी छोटी जमापूंजी उनके लिए छोड़ गए। इससे मार्क्स को अपने क़र्ज़े, जिनमें *«Neue Rheinische Zeitung»* के लिए लिया गया क़र्ज़ भी शामिल था, चुकाने और स्वास्थ्य को ध्यान में रखते हुए अपने को यथासंभव पूर्णतः वैज्ञानिक कार्य में दत्तचित्त कर देने की सुविधा मिल गई। लेकिन उनका स्वास्थ्य बेहतर नहीं हुआ और उनका जीवन कई बार ख़तरे में पड़ा।

उसके बाद से शायद ही कोई साल बीता, जिसके दौरान मार्क्स फोड़ों और गिल्टियों की व्याधि से ग्रस्त न हुए हों, जिनके अलावा जिगर की बीमारी भी परेशान करती रही।

कर्म और संघर्ष का अद्भुत जीवन

इस बात पर प्रकाश डालना दिलचस्प होता कि आर्थिक, नैतिक तथा शारीरिक कठिनाइयों से परेशान मार्क्स किस प्रकार ऐसे महान कार्यभार को साधने में सफल हुए। लेकिन इन टीपों को बहुत लम्बी नहीं करना चाहता, इसलिए मैं महज़ इतना ही ज़िक्र करूंगा कि मार्क्स पूरे का पूरा दिन, सुबह के १० बजे से शाम के ७ बजे तक ब्रिटिश म्युज़ियम पुस्तकालय में नीली किताबों, संसदीय विवरणों और दस्तावेज़ों, सामाजिक तथा आर्थिक अध्ययनों इत्यादि के पन्ने उलटने में गुज़ार देते थे और रात-रात भर घर पर काम करते थे।

उन्होंने अपने लेखन-कार्य द्वारा रोज़ी कमाने के अनेक प्रयास किए, लेकिन उनके लिए प्रकाशक पाना आम तौर से असंभव रहा। इसके अलावा उनका गौण महत्त्व के कार्यों पर समय गंवाना एंगेल्स को बर्दाश्त नहीं था और वे उन्हें हर उपलब्ध क्षण को अर्थशास्त्र सम्बन्धी महान कृति की तैयारी में लगाने के लिए प्रेरित करते रहते थे। इसी प्रयोजन से वे मार्क्स को निरन्तर सहायता देते रहे।

लेकिन वह सहायता नाकाफ़ी थी।

«Neue Rheinische Zeitung» से वे महज़ ऋणग्रस्त ही हुए। यही कारण था कि उन्होंने १८५१ में *«New York Tribune»* के लिए

काम करना स्वीकार कर लिया। इस कारण उन्हें अनेक तरह की सामग्री का अध्ययन करना पड़ा, जिसमें से कुछ उनकी मुख्य वैज्ञानिक कृति में फ़िट बैठ गई। वे लेख निश्चय ही आधुनिक युग के सामान्य तथा आर्थिक इतिहास के लिए मूल्यवान देन थे।

दुर्भाग्यवश आर्थिक दृष्टि से उन्हें उन लेखों के तृतीयांश के लिए ही पैसे प्राप्त हुए, क्योंकि बाक़ी लेख संपादक ने प्रकाशित नहीं किये, अस्तु उनके पैसे देने के लिए भी वे अपने को बाध्य नहीं समझते थे।

यह कहना जरूरी है कि उस आभारहीन साहित्यिक कार्य के प्रति, जिससे उन्हें अपने परिवार का भरण-पोषण करने की भी सुविधा नहीं होती थी, मार्क्स ने बहुत भारी मन से अपने को अर्पित किया था।

१८५२ में उनका अधिकांश समय कम्युनिस्ट लीग के कोलोनवाले तथा दूसरे सदस्यों की गिरफ़्तारी और उनके ख़िलाफ़ चलाए गए मुक़द्दमे में लग गया। मार्क्स ने लन्दन के अपने मित्रों के साथ मिलकर यह साबित करने के लिए अथक रूप से काम किया कि मुक़द्दमा पुलिस और सरकार की साज़िश के सिवा और कुछ नहीं है...

यहां इस बात का उल्लेख भी जरूरी है कि इसी समय, जब मार्क्स कठिनाइयों के बोझ से पिसे जा रहे थे, उन्होंने अपनी अध्यवसाय-साध्य, उदात्त और सूक्ष्मदर्शी कृति 'अठारहवीं ब्रूमेर' की रचना की थी और उस पूरे दौर में मार्क्स घर से बाहर नहीं निकल सकते थे, क्योंकि उनके सारे कपड़े गिरवी हो चुके थे।

और साल बीतते गये, ऐसी ही आर्थिक कठिनाइयों में, लम्बी बीमारियों में, बेतहाशा काम की अवधियों में, और इन सभी चीजों के बावजूद उनकी महान कृति जारी रही। वह एक योद्धा, एक चिन्तक और एक स्रष्टा की कृति थी, क्योंकि मार्क्स ने अध्ययन-कक्ष तक ही अपने काम को सीमित न रखकर अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर संघ के संचालन में भी अपने को निरन्तर उतना ही खपाया, जितना अपनी प्रकाण्ड सैद्धान्तिक कृति की रचना में।

सब कुछ होते हुए भी उनका घर, ख़ास तौर से जब वे मेटलैण्ड पार्क में रहते थे (नाज़ी बमवर्षकों ने उसे भी नहीं बख़्शा), सभी उत्प्रवासियों और सभी संघर्षशीलों के लिए आश्रय-स्थान था, चाहे वे अंग्रेज हों या विदेशी।

बचपन से ही मेरे मानस-पट पर उस घर का व्याप्त वातावरण अंकित है, जिसमें मार्क्स अपनी पत्नी, – जो बच्चों की मौतों और यातनाओं के बावजूद हमेशा अपने मेहमानों का, जिनमें से अधिकतर उत्प्रवासी होते थे, मुस्कुराती हुई स्वागत करती थीं – और अपनी पुत्रियों – जेनी, लौरा (बाद को पाल लफ़ार्ग की पत्नी) तथा एल्योनोरा – के साथ रहते थे। उनकी तीनों पुत्रियां अपनी मेधा और शिष्टता-शालीनता के कारण असाधारण थीं और उनमें से प्रत्येक का अलग-अलग जीवन-चरित लिखा जाना चाहिए।

मार्क्स की बेटियां उनकी आराधना करती थीं, वे स्वयं बच्चों के प्रति अनुरक्त थे और यह समझना आसान है कि उनके लिए सन्तान-विछोह का दुःख कितना दारुण रहा होगा। हां, मार्क्स बच्चों के दीवाने थे और उनके साथ सदा स्नेहशील और आनन्दित बने रहते थे। उस दुर्द्धर्ष योद्धा के अन्तस्तल में संवेदनशीलता, दयार्द्रता तथा कोमल समर्पणशीलता का भंडार था।

वे बच्चों के साथ इस तरह खेलते थे, जैसे स्वयं बच्चे हों और उस समय इस बात की तनिक चिन्ता नहीं करते थे कि उनकी मर्यादा को कोई धक्का लग सकता है। अपने नगर-खण्ड में वे "मार्क्स बप्पा" के नाम से प्रख्यात थे और इन महाशय की जेब में नन्हे-मुन्नों के लिए सदा मिठाई रहा करती थी।

बाद में उन्होंने अपना यह स्नेह अपने नातियों पर लुटाया। "तुम्हें और तुम्हारे नन्हे-मुन्नों को अनेक चुम्मियां," उन्होंने मेरी मां को लिखा था। उनका कोई पत्र ऐसा नहीं होता था, जिसमें बच्चों की चर्चा न हो:

"जॉन और तुम्हारे दूसरे बच्चे जो कुछ करते रहे हैं, अब उन सब का मुझे विवरण लिखो।"

मेरी मां को १८८१ में लिखे गये एक पत्र में उन्होंने कहा था: "एंगेल्स की मदद से तुस्सी ने अभी-अभी बच्चों को बड़े दिन के उपहारों का पार्सल भेजा है। हेलेन ख़ास तौर पर तुम से यह कहने की ताकीद करती है कि वह हैरी" (मार्क्स की मृत्यु के शीघ्र ही बाद वह भी चल बसा था) "के लिए फ़्रॉक, एड्डी के लिए" (मेरे लिए) "फ़्रॉक और पा" (मेरा भाई मार्सें) "के लिए एक टोपी भेज रही है। पा के लिए लौरा एक नीला सूट भी भेज रही है। मेरी तरफ़ से प्रिय जॉनी के लिए एक नौसैनिक वर्दी है। मां अपने जीवन के बिलकुल अन्तिम दिनों में

लौरा से यह कहती हुई कितने ग्रानन्दपूर्वक हंसा करती थीं कि जॉनी के साथ हम ग्रौर तुम किस तरह एक सूट ख़रीदने पेरिस गए थे, जिसे पहनकर वह «Bourgeois Gentilhomme» जैसा दीखने लगा था।"

चूंकि जॉनी सबसे बड़ा था, इसलिए वही सबसे ग्रधिक उनके पास जाता था।

एक दूसरे पत्र में उन्होंने मेरी मां को लिखा था, "जॉनी को बताना कि कल जब मैं मेटलैण्ड पार्क में टहल रहा था, तो रखवाले ने ग्रपनी पूरी गरिमा के साथ ग्राकर मुझसे पूछा कि जॉनी के क्या हालचाल हैं।"

ग्रपने नाती-नातिनों के बारे में वे जो शब्दावली इस्तेमाल करते थे, वह ग्रक्सर उतनी ही मौलिक होती थी, जितनी रोचक:

"जॉनी, हैरी ग्रौर नेक "भेड़िये" को ढेरों-ढेरों चुम्मियां। जहां तक "महान ग्रज्ञात" का सम्बन्ध है, उसके साथ मैं ऐसी ग्राज़ादी नहीं ले सकता।" (उनका ग्राशय मेरे भाई मार्सें से था, जो ग्रप्रैल, १८८१, में पैदा हुग्रा था ग्रौर जिसे उन्होंने ग्रभी देखा नहीं था।)

नाती-नातिनों के प्रति उनके स्नेह को व्यक्त करने के लिए नानी जी की मृत्यु के कुछ ही दिन बाद मेरी मां को लिखे गये उनके एक पत्र के ग्रन्तिम वाक्य को उद्धृत करने से बेहतर ग्रौर कुछ नहीं हो सकता:

"मैं तुम्हारे साथ ग्रनेक मधुर दिन गुज़ारने ग्रौर नाना के रूप में ग्रपने कर्त्तव्य की ढंग से पूर्त्ति करने की ग्राशा करता हूं।"

ग्रफ़सोस है कि वे ग्रपनी यह ग्राकांक्षा पूरी न कर सके!

बार-बार की बीमारियों से ग्राक्रान्त ग्रौर ग्रपनी पत्नी की मृत्यु से बिलकुल टूटे हुए मार्क्स को चन्द महीने बाद ही, जनवरी १८८३ में, ग्रपनी सबसे बड़ी बेटी, मेरी मां, जेनी लॉन्गे की मृत्यु का ज़बर्दस्त धक्का सहना पड़ा। यातनाग्रों ग्रौर दुर्दैन्य के ग्रनेकानेक बरसों के ऊपर इस ग्रंतिम चोट ने प्रतिभा के धनी उस इंसान को १४ मार्च, १८८३ को मृत्यु की गोद में पहुंचा दिया, जिसने सर्वहारा वर्ग की मुक्ति की तैयारी में ग्रपना जीवन उत्सर्ग कर दिया था ग्रौर जो मानवजाति के सुख के लिए ग्रपनी ग्रंतिम सांस तक लड़ता रहा था।

फ़्रेडरिक एंगेल्स ने उनपर मिट्टी डाले जाने के बाद ठीक ही कहा था:

"उनका नाम ग्रौर काम युग-युगों तक ग्रमर रहेगा!"

आत्मस्वीकृतियां*

आपका अभीष्ट गुण . . . . सादगी
पुरुषों के लिए . . . . सबलता
स्त्रियों के लिए . . . . दुर्बलता
आपकी मुख्य चारित्रिकता . . . . उद्देश्य की अनन्यता
आपकी नज़र में सुख क्या है . . . . संघर्ष
आपकी नज़र में दुःख क्या है . . . . परवशता
आपके निकट क्षम्य दोष . . . . सहजविश्वास
आपके निकट घृण्य दोष . . . . चाटुकारिता
आपके लिए असह्य . . . . मार्टिन टप्पर**
प्रिय काम . . . . किताबें चाटना
प्रिय कवि . . . . शेक्सपियर, एस्कीलस, गेटे
प्रिय गद्यकार . . . . सिसेरो
प्रिय वीरनायक . . . . स्पार्टकस, केप्लर***

---

*१८६५ की ये आत्मस्वीकृतियां मार्क्स द्वारा दिये गये उन प्रश्नों के उत्तर हैं, जिनकी उस समय ब्रिटेन और जर्मनी में काफ़ी चर्चा रही। कुछ हद तक मज़ाकिया होते हुए भी ये उत्तर मार्क्स के चरित्र-चित्रण की दृष्टि से दिलचस्प हैं। सं०

**टप्पर, मार्टिन (१८१०–१८८९)–अंग्रेज लेखक, जिसे मार्क्स बाज़ारूपन का प्रतीक मानते थे।–सं०

***केप्लर, जोहान (१५७१–१६३०)–जर्मन ज्योतिषी, जिन्होंने कॉपरनिकस की शिक्षा के आधार पर ग्रह-गति की खोज की।–सं०

प्रिय वीरनायिका . . . . ग्रेत्खेन *

प्रिय फूल . . . . दाफ़्ने

प्रिय रंग . . . . लाल

प्रिय नाम . . . . लौरा, जेनी

प्रिय खाद्य . . . . मछली

प्रिय सूक्ति . . . . Nihil humani a me alienum puto **

प्रिय आदर्शवाक्य . . . . De omnibus dubitandum ***

कार्ल मार्क्स

---

* ग्रेत्खेन – गेटे के 'फ़ाउस्ट' की मर्गारीता के नाम का लघु रूप। – सं०

** जो कुछ, जैसा है इनसान, मैं हूं कब उससे अनजान। – सं०

*** अच्छी तरह जानो, फिर मानो। – सं०

फ़्रांसिस्का कुगेलमान

मार्क्स के महान चरित्र की कुछ लाक्षणिकताएं*

मेरे पिता अपने विद्यार्थी जीवन में कार्ल मार्क्स के उत्साही प्रशंसक बन गये थे। वे 'नोर्मान्निया' नामक एक विद्यार्थी-क्लब के सदस्य थे और उसी क्लब के एक अन्य सदस्य, माइकेल, से मार्क्स का लन्दन का पता प्राप्त कर उन्होंने मार्क्स को पत्र लिखा। मार्क्स का उत्तर आने पर उन्हें बेहद ख़ुशी हुई और धीरे-धीरे दोनों के बीच नियमित पत्राचार शुरू हो गया। मार्क्स को "ए० विलियम्स" के नाम से पत्र भेजे जाते थे, क्योंकि उनके पत्राचार की सरकारी तौर पर जांच की जाती थी, पत्र खोलकर देखे जाते थे और अक्सर रोक लिए जाते थे। ठीक इसी कारण मेरे पिता अपने पत्रों में मार्क्स को उनके नाम से न सम्बोधित करने की एहतियात बरतते थे और उन्हें "मेरे आदरणीय और प्रिय मित्र" के रूप में संबोधित करते थे।

अनेक वर्ष बाद, जब मार्क्स ने लिखा कि वे यूरोप आने का इरादा कर रहे हैं, तो मेरे पिता ने, जिन्होंने अब तक शादी कर ली थी, उन्हें अपना आतिथ्य स्वीकार करने को लिखा और मार्क्स ने चन्द दिनों के लिए वह निमंत्रण स्वीकार कर लिया।

---

*कुगेलमान फ़्रांसिस्का – मार्क्स और एंगेल्स के एक मित्र, जर्मन डॉक्टर लुडविग कुगेलमान की बेटी। यहां १९२८ में लिखित उनके संस्मरणों का एक अंश प्रकाशित किया जाता है। – सं०

मेरी जवान, ख़ुशमिज़ाज मां, जो राइनी प्रदेश की रहनेवाली थीं, मार्क्स के आगमन के बारे में किसी क़दर चिन्तित थीं, क्योंकि उन्हें गुमान था कि मार्क्स के रूप में उन्हें राजनीतिक विचारों में पूर्णतः निमग्न और तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था के प्रति वैरभाव रखनेवाले किसी महान पंडित के दर्शन होंगे। डॉक्टर की हैसियत से मेरे पिता सवेरे पूर्णतः और तिपहरी को अंशतः अपने काम में व्यस्त रहा करते थे। फिर वे मार्क्स जैसे व्यक्ति का आदर-सत्कार किस प्रकार कर पाएंगी? मेरे पिता ने उन्हें आश्वासन दिया कि मार्क्स की मेज़बानी के दिनों की उनके शेष जीवन में बहुत ही मधुर स्मृति बनी रहेगी।

स्टेशन से लोगों के आने पर प्रत्याशित कटु क्रान्तिकारी के बजाए एक चुस्त, ख़ुशमिज़ाज सज्जन ने मेरी मां का अभिवादन किया, जिनके सुखद राइनी उच्चारण ने उनके मन में फ़ौरन वतन की याद ताज़ा कर दी। पके घने केशों के नीचे से मार्क्स की तरुण काली आंखें मुस्कुरा रही थीं। उनकी चाल-ढाल और बातचीत यौवन-सुलभ ताज़गी से भरपूर थी। उन्होंने मेरे पिता को राजनीति की तनिक भी चर्चा नहीं करने दी और यह कहकर चुप कर दिया कि: "ये बातें युवतियों के लिए नहीं हैं, हम उनका ज़िक्र फिर करेंगे।" पहली ही शाम को उनकी बातचीत इतनी रोचक, सरस और कौतुकपूर्ण रही कि समय उड़ता-सा प्रतीत हुआ।

संयोगवश पावन सप्ताह की शुरूआत थी और मेरे माता-पिता ने उनसे गुड फ़्राइडे को अपने साथ सन्त मैथ्यू के अनुसार बाख़ का पैशन सुनने के लिए चलने को कहा। लेकिन मार्क्स ने यह कहकर इनकार कर दिया कि यद्यपि वे संगीत के, और ख़ास तौर से बाख़ के संगीत के बड़े प्रेमी हैं, लेकिन उन्हें हर हालत में उस दिन से पहले चले जाना है।

लेकिन वे हन्नोवर में चार हफ़्ते रहे।* उनके साथ हुई सारी बातचीत और उन दिनों को ब्योरेवार याद करने में मेरे माता-पिता को बहुत ही आनन्द आता था। उनके रोज़मर्रा के जीवन में यह समय तो मानो ऊपर उठती

---

* मार्क्स १८६७ में १७ अप्रैल से मई के मध्य तक हन्नोवर में रहे। — सं०

हुई और विस्मृति के कुहासे से कभी भी आच्छादित न होनेवाली दीप्तिमान पहाड़ी चोटियों के समान था...

मार्क्स केवल हमारे पारिवारिक क्षेत्र में ही घुले-मिले और प्रीतिकर नहीं होते थे, बल्कि मेरे माता-पिता के परिचितों के साथ भी हर चीज़ में दिलचस्पी लेते थे और जब वे किसी व्यक्ति द्वारा ख़ास तौर से आकर्षित होते अथवा कोई व्यंग-चातुरी की बात सुनते, तो अपना एक शीशेवाला चश्मा चढ़ाकर सम्बन्धित व्यक्ति को दोस्ताना दिलचस्पी से देखते।

उनकी नज़र कुछ कमज़ोर थी, लेकिन वे चश्मा केवल तभी लगाते थे, जब उन्हें देर तक पढ़ना या लिखना होता था। मेरे माता-पिता उनके साथ सवेरे-सवेरे हुई बातचीतों को, जब वे सर्वथा निश्चिन्त होते थे, विशेष आनन्द के साथ दोहराया करते थे। इसीलिए मेरी मां बहुत सवेरे ही उठकर नाश्ते से पहले घर का सारा काम-काज निबटा दिया करती थीं। वे अक्सर कॉफ़ी की मेज़ के गिर्द घंटों बैठे रहा करते थे और जब मेरे पिता को अपने काम के लिए उठकर जाना पड़ता था, तो उन्हें हमेशा अफ़सोस होता था।

वे मार्क्स के आन्तरिक जगत और उनके बाह्य जीवन की परिस्थितियों के बारे में ही नहीं, बल्कि कला, विज्ञान, कविता और दर्शन के सभी क्षेत्रों के सम्बन्ध में भी बातचीत किया करते थे। मार्क्स जितने सज्जन और शालीन थे, उतने ही महान भी; वे कभी भी विद्या-दम्भ का लेश तक नहीं प्रदर्शित करते थे। मेरी मां की दर्शन में बड़ी दिलचस्पी थी, यद्यपि उसका कोई गहरा अध्ययन उन्होंने नहीं किया था। मार्क्स ने उनसे कान्ट, फ़िख़्ते और शोपेनहावर और कभी-कभी हेगेल के बारे में भी बातें कीं। जवानी में मार्क्स, हेगेल के उत्साही अनुयायी रह चुके थे। उन्होंने ख़ुद हेगेल की इस उक्ति का हवाला दिया कि उनके विद्यार्थियों में एकमात्र रोज़नक्रान्त्स ने ही उन्हें समझा था, सो भी ग़लत...

मार्क्स को भावुकता से गहरी घृणा थी, जो वास्तविक अनुभूति का महज़ विकृत रूप होती है। समय-समय पर वे गेटे की इस उक्ति का हवाला देते रहते थे: "भावुक सज्जनों के बारे में मेरी कभी ऊंची राय नहीं रही है; अगर कोई घटना हो जाए, तो निश्चय ही वे बुरे साथी साबित होंगे।" अगर उनकी उपस्थिति में कोई अतिशयक भावुकता का प्रदर्शन करता, तब वे हाइने की ये पंक्तियां दोहराते थे:

कितनी घोर पीड़ा और भय से अभिभूत खड़ी
सागर के तट पर बेचारी एक बालिका!
किन्तु उसको क्लेश, दुःख हो रहा किस बात का?
मात्र इसी बात का कि सूर्यास्त हो गया!

हाइने को मार्क्स व्यक्तिगत रूप से जानते थे और उस अभागे कवि से उनके जीवन के अन्तिम दिनों में पेरिस में मिले थे। उनकी यंत्रणाएं इतनी प्रबल थीं कि छुआ जाना भी उन्हें असह्य था और नर्सें उन्हें चादरों के सहारे बिस्तर पर पहुंचाती थीं। लेकिन ऐसी हालत में भी हाइने की विनोदप्रियता क़ायम रही थी और उन्होंने मार्क्स से कमज़ोर आवाज़ में कहा था: "देखिये, प्रिय मार्क्स, महिलाएं अब भी मुझे उठाये-उठाये फिरती हैं।"

हाइने के चरित्र के बारे में मार्क्स की राय बहुत ख़राब थी। उन्होंने कवि की सहायता करनेवाले मित्रों के प्रति उनकी कृतघ्नता के लिए विशेष रूप से उनकी भर्त्सना की। मिसाल के लिए क्रिस्टिआनी के सम्बन्ध में इन पंक्तियों का व्यंग: "इतने प्रियकर तरुण के लिए कोई भी प्रशंसा न अधिक है", इत्यादि।*

मार्क्स के लिए मैत्री पुनीत थी। एक बार उनके पास आए हुए एक साथी ने यह रायज़नी करने की आज़ादी ली कि फ़्रेडरिक एंगेल्स काफ़ी सम्पन्न व्यक्ति हैं और इसलिए मार्क्स की विकट धनाभाव की दिक़्क़तों से उन्हें बचाने के लिए और अधिक सहायता कर सकते थे। मार्क्स ने इन शब्दों के साथ उन्हें चुप कर दिया कि "मेरे और एंगेल्स के सम्बन्ध इतने आन्तरिक और स्नेहमय हैं कि किसी को उनमें हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं है।" जब कोई उनसे अप्रिय बात कहता, तब वे आम तौर से मज़ाक़ में जवाब देते थे। सामान्यतः वे कभी भी प्रतिवाद के भोंडे साधन नहीं अपनाते थे, बल्कि ऐसे तीखे कटाक्षों द्वारा प्रतिकार करते थे, जो सीधे अपने निशाने पर बैठते थे।

---

*हाइने के नज़दीकी दोस्त रुडोल्फ़ क्रिस्टिआनी को अर्पित हाइने की व्यंग कविता से अभिप्राय है।—सं०

विज्ञान का शायद ही कोई क्षेत्र रहा हो, जिसमें उनकी गहरी पैंठ न रही हो, कोई भी ऐसी कला नहीं थी जिसके वे अनुरागी न रहे हों और प्राकृतिक सौन्दर्य का कोई भी ऐसा रूप नहीं था, जिसपर वे मुग्ध न हुए हों। लेकिन वे मिथ्याचार, कृत्रिमता, जीटबाज़ी और छल-छप नहीं झेल सकते थे।

दोपहर के खाने से पहले वे लगभग डेढ़ घंटे तक अपने सोने के कमरे से सटे हुए कमरे में या तो पत्र लिखते थे, या काम करते थे अथवा अख़बार पढ़ते थे। वहीं पर उन्होंने 'पूंजी' के पहले खण्ड का सम्पादन भी किया था। वहां बुद्धि की देवी (माइनेर्वा मेडिका) के चिह्न – लघु उलूक – सहित उसकी एक मूर्ति रखी थी। मार्क्स ने, जो मेरी मां की नेकदिली, उनकी समझ-बूझ तथा सौहार्द, उनके ज्ञान, विशेषत: काव्य और साहित्य के ज्ञान के, जो उनकी आयु को देखते हुए व्यापक था, बड़े प्रसंशक थे, एक बार हंसी-हंसी में ही कहा कि आप तो स्वयं ही बुद्धि की तरुणी देवी हैं। मेरी मां ने उत्तर दिया, "नहीं, मैं तो मात्र वह लघु उलूक हूं, जो उसके चरणों में बैठा सुनता रहता है।" इसी कारण वे मेरी मां को कभी कभी "मेरी प्रिय लघु उलूक" कहा करते थे, जो नाम उन्होंने बाद में एक छोटी-सी बच्ची को दे दिया, जिसे वे बहुत प्यार करते थे और जो उनके घुटनों पर घंटों बैठी उनके साथ खेलती और बतियाती रहती थी।

मेरी मां लोगों से मिलने-जुलने में बहुत सलीक़े से काम लेती थीं और यों भी तौर-तरीक़े वाली महिला थीं, इसलिए मार्क्स उन्हें "श्रीमती काउंटेस" कहने लगे थे। जल्दी ही वे हर किसी की उपस्थिति में उन्हें केवल इसी नाम से पुकारते।

वैसे मार्क्स परिवार में लोगों को उपनाम देने की एक आदत सी थी। ख़ुद उन्हें उनकी बेटियां और उनके मित्र "मूर" कहकर पुकारते थे। उनकी दूसरी बेटी लौरा, श्रीमती लफ़ार्ग आम तौर से «Das Laura» या एक पुराने उपन्यास के फ़ैशनी दर्ज़ी के नाम पर "मास्टर काकाडू" कहलाती थीं, क्योंकि वे बहुत ही सुन्दर और सुरुचिपूर्ण ढंग से पहनती-ओढ़ती थीं। मार्क्स अपनी सबसे बड़ी बेटी जेनी को "जेन्नीहेन" पुकारते थे। मेरी मां ने जेनी के उपनाम की भी चर्चा की थी, लेकिन वह मुझे याद नहीं रहा। उनकी छोटी बेटी एल्योनोरा सदा "तुस्सी" कहलाती थीं।

मार्क्स ने मेरे पिता को वेन्त्सेल नाम दे रखा था। कारण यह था कि उन्होंने मार्क्स से एक बार कह दिया कि प्राग में एक गाइड ने उन्हें दो बोहेमियाई शासकों, एक अच्छे और दूसरे बुरे वेन्त्सेल, के ब्योरों से बहुत उबा दिया था। बुरे वेन्त्सेल ने सन्त नेपोमुक को मोल्टवा में फेंकवा दिया था और अच्छा वेन्त्सेल बड़ा ही धर्मात्मा था। मेरे पिता अपने सहज समर्थन तथा सहज विरोध के बारे में अत्यन्त स्पष्टवादी थे और मार्क्स उन्हें उनके रुख़ के अनुसार अच्छा या बुरा वेन्त्सेल कहते थे। बाद में उन्होंने मेरे पिता के नाम "अपने वेन्त्सेल को" समर्पित अपना एक फ़ोटो भी भेजा था।

वे मेरे माता-पिता के मित्रों और परिचितों को उनकी अनुपस्थिति में अक्सर दूसरे-दूसरे नाम देते रहते थे और कहते थे कि वे ही उनके असली नाम होने चाहिए, हालांकि वे प्रायः ऐसे ही नाम चुनते थे, जो बहुत लाक्षणिक नहीं, बल्कि आम होते थे। फलतः हर बार जब मार्क्स का परिचय हमारे किसी परिचित से कराया जाता, तो बाद में मेरे पिता उनसे पूछते: "हां, मार्क्स, उसका असली नाम क्या होना चाहिए था?"

मार्क्स सदा उल्लसित रहते थे, मज़ाक़ करने और छेड़ने के लिए तैयार और जब कोई भोंडे ढंग से उनकी शिक्षा के बारे में कुछ पूछ बैठता, तब उनका मन सर्वाधिक उचट जाता था। वे ऐसे सवालों का जवाब कभी नहीं देते थे। परिवार में वे अपनी बाबत इस कुतूहल को निकम्मी जिज्ञासा कहा करते थे। लेकिन ऐसा बहुत कम होता था।

एक बार किसी सज्जन ने उनसे पूछ लिया कि भावी राज्य में जूते कौन साफ़ करेगा। उन्होंने चिढ़कर उत्तर दिया, "आप करेंगे!" फूहड़ प्रश्नकर्त्ता समझ गए और चुप्पी साध गए। वह शायद एकमात्र अवसर था, जब मार्क्स आपे से बाहर हो गये थे...

हर कहीं से, अक्सर सुदूरतम स्थानों से, पार्टी के साथी मार्क्स से मिलने आते थे। वे उन सब से अपने कमरे में मिलते थे। राजनीति पर अक्सर लम्बी बहसें शुरू हो जाती थीं जो बाद को मेरे पिता के अध्ययनकक्ष में जारी रहती थीं...

विज्ञान और ललित कलाओं की भांति ही कविता में भी मार्क्स की रुचि सर्वाधिक परिष्कृत थी। उनका ज्ञान-भण्डार असाधारण था और स्मरण-

शक्ति अद्भुत थी। यूनान के क्लासीकी महाकवियों, शेक्सपियर और गेटे के वे मेरे पिता की तरह ही बड़े प्रशंसक थे और शमिस्सो और र्‌योकेर्त* जैसे कवि उन्हें प्रिय थे। वे शमिस्सो की मर्मस्पर्शी कविता 'भिखारी और उसका कुत्ता' के अंश उद्धृत करते रहते थे। वे र्‌योकेर्त की लेखन-कला के, विशेषतः अपनी मौलिकता में अद्वितीय 'मकामेहरीरी' के उनके श्रेष्ठ अनुवाद पर मुग्ध थे। सालों बाद मार्क्स ने वह कृति उन दिनों की याद में मेरी मां को भेंट की थी।

भाषाओं के लिए मार्क्स की प्रतिभा अद्भुत थी। अंग्रेज़ी के अलावा वे फ़ान्सीसी इतनी अच्छी जानते थे कि उन्होंने 'पूंजी' का फ़ान्सीसी में ख़ुद अनुवाद किया।** ग्रीक, लातीनी, स्पेनी और रूसी भाषाओं का उनका ज्ञान इतना अच्छा था कि वे उन्हें ऊंचे-ऊंचे पढ़ते हुए साथ ही साथ जर्मन में अनुवाद भी कर सकते थे। जब वे जहरबाद से ग्रस्त थे, तब उन्होंने "मनबहलाव के साधन" के रूप में रूसी अपने आप सीखी थी।

उनकी राय थी कि तुर्गेनेव*** ने स्लावी आवृत भावुकता से पगी रूसी आत्मा की विलक्षणताओं का आश्चर्यजनक रूप से सही चित्रण किया है। उनके विचार से शायद ही किसी लेखक ने लेर्मोन्तोव**** से अधिक सुन्दर प्रकृति-वर्णन किया हो, उनकी बराबरी भी बहुत कम ही कर पाये हैं।

---

* शमिस्सो, अवालबर्त (१७८१–१८३८) – जर्मन रोमानी कवि, अपनी कविताओं में सामन्ती प्रतिक्रिया पर बरसे। र्‌योकेर्त, फ़्रेडरिक (१७८८–१८६६) – जर्मन रोमानी कवि तथा पूर्वी कविताओं के अनुवादक। – सं०

** 'पूंजी' के पहले खण्ड का अनुवाद फ़ान्सीसी में मार्क्स ने नहीं किया था, बल्कि उन्होंने जामिनी रूआ के अनुवाद का, जिससे वे सन्तुष्ट नहीं थे, सावधानी के साथ सम्पादन किया था। – सं०

*** तुर्गेनेव, इवान सेर्गेयेविच (१८१८–१८८३) – महान रूसी लेखक। – सं०

**** लेर्मोन्तोव, मिखाईल यूर्येविच (१८१४–१८४१) – महान रूसी कवि। – सं०

स्पेनियों में उनके प्रियपात्र काल्देरों* थे, जिनकी कई कृतियां वे अपने साथ लाये थे और हमें पढ़कर सुनाया करते थे...

हमारे मकान में पांच खिड़कियों वाला एक बड़ा-सा कमरा था, जिसे हम हॉल कहते थे और जहां हम संगीत का अभ्यास किया करते थे। घनिष्ठ मित्र उसे ओलिम्पस कहते थे, क्योंकि वहां दीवारों के साथ-साथ यूनानी देवताओं की मूर्तियां रखी हुई थीं। और उन सब के ऊपर आसीन थे जीयस ओत्रिकोलस।

मेरे पिता का विचार था कि मार्क्स जीयस से बहुत मिलते-जुलते थे और इस बात पर बहुत-से लोग सहमत थे। प्रचुर केशराशि-मंडित दोनों के बड़े-बड़े सिर थे, चिन्तन रेखाओं सहित भव्य ललाट थे, रोबीली किन्तु सदय मुखाभिव्यक्ति थी। मेरे पिता का ख़याल था कि मार्क्स का शान्त, किन्तु जोशीला एवं जीवन्त स्वभाव, जिसमें न अन्यमनस्कता थी और न ही शून्यमनस्कता, उन्हें उनके प्रिय ओलिम्पियाइयों की समरूपता प्रदान करता था। वे इस जुगुप्सा के कि "क्लासीकी देवता रागहीन शाश्वत शान्ति हैं" मार्क्स द्वारा दिए गए यथोचित उत्तर का हवाला देना पसन्द करते थे। मार्क्स का उत्तर यह था कि "उल्टे, वे अशान्तिरहित शाश्वत राग हैं।" मेरे पिता उन लोगों के बारे में अपनी राय प्रगट करते हुए बहुत उत्तेजित हो जाते थे, जो पार्टी की राजनीतिक कार्रवाइयों में मार्क्स को घसीटने की कोशिश करते थे। वे चाहते थे कि देवताओं और मनुष्यों के ओलिम्पियाई पिता की भांति मार्क्स रोज़मर्रा की कार्रवाइयों में अपना अमूल्य समय न गंवाकर केवल संसार में अपना विद्युत्स्फूरण और यदाकदा वज्रस्फुलिंग प्रक्षेपित करते रहें। गम्भीर चर्चाओं और हंसी-मज़ाक में दिन उड़ते चले गये। मार्क्स स्वयं इस दौर को अक्सर अपने जीवन के रेगिस्तान का नख़लिस्तान कहते थे।

दो साल बाद मेरे माता-पिता को फिर मार्क्स का आतिथ्य-सत्कार करने का सुख प्राप्त हुआ। इस बार उनकी सबसे बड़ी बेटी जेनी भी उनके साथ थीं, जो काले घुंघराले बालों वाली आकर्षक छरहरी लड़की थीं और

---

*काल्देरों, पेद्रो (१६००–१६८१) – प्रसिद्ध स्पेनी नाटककार। – सं०

स्वभाव तथा रूप में अपने पिता से बहुत मिलती-जुलती थीं। वे ख़ुशमिज़ाज, ज़िन्दादिल और सौहार्दपूर्ण तथा अपने तौर-तरीक़ों में बेहद परिष्कृत और सलीक़ेदार थीं। वे हर अशिष्ट और दिखावटी चीज़ से नफ़रत करती थीं।

मेरी मां की झटपट उनसे दोस्ती हो गई और जेनी के प्रति उनका स्नेह जीवन-पर्यन्त बना रहा। मेरी मां अक्सर कहा करती थीं कि जेनी ने कितना अधिक पढ़ा है, उसका दृष्टिकोण कितना व्यापक है और हर उत्कृष्ट एवं सुन्दर चीज के प्रति उसे कितना अनुराग है। जेनी शेक्सपियर की बड़ी प्रशंसिका थीं और निश्चय ही उनमें नाटकीय प्रतिभा रही होगी, क्योंकि एक बार लन्दन की किसी रंगशाला में उन्होंने लेडी मैकबेथ की भूमिका अदा की थी। एक बार हमारे घर पर भी, लेकिन केवल मेरे माता-पिता और अपने पिता की मौजूदगी में, उन्होंने पत्र के पैशाचिक दृश्य में वह भूमिका अदा की थी। लन्दन के उपरोक्त अभिनय द्वारा अर्जित धन से उन्होंने उस वफ़ादार परिचारिका के लिए एक मख़मली कोट ख़रीदा था, जो उनके परिवार के साथ त्रियेर छोड़कर ब्रिटेन आई थी और जिसका प्रेम और लगाव सुख-दुःख तथा अभावों के दौरान भी उन सभी के प्रति अडिग रहा था।

मार्क्स परिवार में पैसों के मामले में किसी को भी किफ़ायतशारी अथवा व्यावहारिकता का गुण नहीं प्राप्त था। जेनी ने बताया कि उनकी मां को अपनी शादी के फ़ौरन ही बाद कुछ विरासत मिली। युवा दम्पत्ति ने पूरी सम्पत्ति नक़दी के रूप में ली और उस दो हैंडलों वाली एक छोटी-सी तिजोरी में डाल लिया, जिसे कोच में रखकर वे अपनी मधुमास की यात्रा के दौरान विभिन्न होटलों में, जहां-जहां वे ठहरे, लिये फिरे। जब जरूरतमन्द दोस्त या हमख़याल मिलने आते तो वे अपने कमरे में तिजोरी को खोलकर मेज पर रख देते, जिसमें से कोई भी मनचाही रक़म ले सकता था। ज़ाहिर है कि तिजोरी जल्दी ही ख़ाली हो गई। बाद को लन्दन में उन्हें अक्सर कठोर अभाव झेलने पड़े। मार्क्स ने बताया कि अक्सर उन्हें अपने पास की हर क़ीमती चीज गिरवी रखने या बेचने के लिए मजबूर होना पड़ा। फ़ॉन वेस्टफ़ालेन परिवार की आर्गिल्ल के ड्यूकों के साथ दूर की रिश्तेदारी थी। जब जेनी फ़ॉन वेस्टफ़ालेन ने मार्क्स से शादी की, तो उनके दहेज में चांदी की ऐसी चीजें भी शामिल थीं, जिनपर आर्गिल्ल का कुल-चिन्ह अंकित

था और जो लम्बे अर्से से फ़ॉन वेस्टफ़ालेन परिवार की सम्पत्ति थीं। एक वार स्वयं मार्क्स चांदी के चन्द भारी चम्मच लेकर गिरवी रखने गए और उनसे इस बात की सफ़ाई मांगी गई कि उन पर खुदे प्रसिद्ध कुल-चिन्ह वाली वे वस्तुएं उन्हें किस प्रकार प्राप्त हुईं। जाहिर है कि सफ़ाई देने में उन्हें कोई कठिनाई नहीं हुई।

जब उनके एकमात्र पुत्र की मृत्यु हुई, तब वे इतने अभावग्रस्त थे कि कफ़न-दफ़न का खर्च भी अदा करने में असमर्थ थे। उस रात मार्क्स के बाल सफ़ेद हो गए...

जेनी ने अपनी हन्नोवर की रिहाइश के दौरान मेरी मां को आत्मस्वीकृति-पुस्तिका कहलानेवाली एक दस्तावेज़ भेंट की। ब्रिटेन और फिर जर्मनी में तब ऐसी पुस्तिकाओं का चलन था, जो 'अपने को जानिये' के नाम से नमूदार हुईं। मार्क्स को ही उसमें सबसे पहले अपने उत्तर लिखने थे और जेनी ने पहले पृष्ठ पर उनके लिए निर्धारित प्रश्न लिख दिये थे। लेकिन मार्क्स ने उनके उत्तर नहीं दिये थे।* मेरे माता-पिता को जेनी द्वारा लिखित आत्मस्वीकृति जेनी के स्वभाव के लिए इतनी चारित्रिक लगी कि मैं उसकी नक़ल यहां दे रही हूं।

जेनी ने अंग्रेज़ी में लिखा था, क्योंकि वे जर्मन से अंग्रेज़ी बेहतर लिख सकती थीं। उन्होंने बताया कि जर्मन में वे चार पृष्ठों पर जितना लिख सकती थीं, अंग्रेज़ी में उतना ही लिखने के लिए एक पृष्ठ पर्याप्त था, क्योंकि अंग्रेज़ी संक्षिप्ततर, अधिक सटीक और प्रासंगिक है। वे अपने अन्तरंग पत्र फ़्रान्सीसी में लिखती थीं, जिसे वे हार्दिकतर और विचारों तथा भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए अधिक उपयुक्त समझती थीं। उनका जर्मन भाषा का उच्चारण उनके पिता की भांति ही शुद्ध राइनी प्रदेश का था। वे कभी राइनी प्रदेश में रही नहीं थीं, लेकिन उन्होंने बचपन से अपने माता-पिता और त्रियेर की वफ़ादार परिचारिका से वही उच्चारण सुना था।

उक्त आत्मस्वीकृति को समझने के लिए चन्द बातों का स्पष्टीकरण आवश्यक है। जेनी का कहना है कि नारी के लिए उनका प्रिय गुण निष्ठा

---

* ऐसी ही प्रश्नावली के मार्क्स द्वारा दिये गये उत्तर प्रस्तुत पुस्तक के पृष्ठ २३०–२३१ पर दिये गये हैं।–सं०

है। जिस शाम को उन्होंने यह लिखा था, तब बातचीत धर्म पर चल रही थी। मार्क्स, जेनी और मेरे पिता आज़ादख़याली के हामी थे, जबकि मेरी मां किसी प्रकार की कट्टरपंथी और जड़सूत्रवादी संकुचित मनोवृत्ति को नापसन्द करते हुए भी धर्म के बारे में उनसे भिन्न विचार रखती थीं...

मेरी मां इतनी सादगी, संजीदगी, साफ़दिली के साथ और बनावटी जोश के बिना बोलती थीं कि हर कोई प्रभावित हो जाता था। इसी बात को ध्यान में रखते हुए जेनी ने लिखा था कि नारी के लिए उनका प्रिय गुण निष्ठा था।

पिता-पुत्री दोनों ही नेपोलियन प्रथम से घृणा करते थे, जिसे वे महज़ बोनापार्त कहते थे। लेकिन वे नेपोलियन तृतीय से इतनी अधिक नफ़रत करते थे कि कभी उसका नाम तक नहीं लेते थे। इसी कारण जेनी ने लिखा था कि जिन ऐतिहासिक हस्तियों को वे सबसे ज्यादा नापसन्द करती थीं, वे बोनापार्त और उसका भतीजा थे...

जेनी अपने पिता के समान ही क्लासीकी संगीत से प्यार करती थीं। दोनों ही हेण्डेल की कृतियों को निश्चयात्मक रूप से क्रान्तिकारी मानते थे। जेनी अभी वैग्नर से सर्वथा अपरिचित थीं: उन्होंने हन्नोवर में ही पहली बार 'तन्हैज़र' का उत्कृष्ट प्रस्तुतीकरण सुना और इतनी आनन्द-विभोर हुईं कि वैग्नर को अपने प्रिय स्वरकारों में मानने लगीं। आत्मस्वीकृति में उनकी प्रिय सूक्ति कोई उद्धरण प्रतीत होती है, क्योंकि वह उद्धरण चिन्हों के भीतर लिखी गई है। उन्होंने सुख और दुःख के बारे में अपने विचार नहीं लिखे थे। मैं अनुवाद न करके मूल की नक़ल दे रही हूं:

आपका अभीष्ट गुण . . . . मानवीयता
पुरुषों के लिए . . . . नैतिक साहस
स्त्रियों के लिए . . . . निष्ठा
आपकी नज़र में सुख क्या है . . . .
आपकी नज़र में दुःख क्या है . . . .
आपके निकट क्षम्य दोष . . . . फ़िज़ूलख़र्ची
आपके निकट घृण्य दोष . . . . ईर्ष्या
आपके लिए असह्य . . . . अमीर-उमरा, पुरोहित, सैनिक

प्रिय काम . . . . पढ़ना
ऐतिहासिक व्यक्ति जिन्हें ग्राप सबसे ग्रधिक
नापसन्द करते हैं . . . . **बोनापार्त ग्रौर उसका भतीजा**
प्रिय कवि . . . . शेक्सपियर
प्रिय गद्यकार . . . . सेर्वान्ते
प्रिय स्वरकार . . . . हेण्डेल, बीयोवेन, वैग्नर
प्रिय रंग . . . . लाल
प्रिय सूक्ति . . . . «To thine own self be true» *
प्रिय ग्रादर्शवाक्य . . . . **सब एक के लिए ग्रौर एक सब के लिये**

हमारे यहां जोजेफ़ रिस्से, जो वढ़िया गायक थे, ग्रक्सर गान सुनाया करते थे। उनकी ग्रसाधारण शक्तिवाली विस्तृत ग्रारोह-ग्रवरोह की गुरु ध्वनि थी ग्रौर वे बहुत प्रतिभाशाली थे। प्रसंगवश कहें कि उन्होंने *«Erin's Harp»* नाम से ग्रपने ग्रनुवाद तथा स्वर-संयोजन के साथ टॉमस मूर ** के ग्रायरी लोकगीतों की एक पुस्तकमाला प्रकाशित करायी थी। एक पुस्तक मेरे पिता को समर्पित थी। ग्रभागे, उत्पीड़ित ग्रायरलैण्ड के प्रति, उनके पूरे परिवार की भांति, मार्क्स की भी जवर्दस्त हमदर्दी थी ग्रौर उन हृदयग्राही गीतों को वे बहुत चाव से सुनते थे। ग्रायरलैण्ड के प्रति ग्रपनी हमदर्दी व्यक्त करने के लिए तुस्सी ने ग्रपना मनचाहा रंग हरा बना लिया था ग्रौर वह ग्रधिकतर हरे कपड़े पहनती थीं।

ग्रायरी स्वतंत्रता के लिए लड़नेवाले ग्रो' डोनोवान रोस्सा को जब जेल में बन्द कर दिया गया ग्रौर ग्रंग्रेजों ने उनके साथ गर्हित व्यवहार किया, तब जेनी ने, जिन्होंने उन्हें देखा तक न था, ग्रपने जे० विलियम्स उपनाम से उनकी दृढ़ता की सराहना करते हुए उन्हें पत्र लिखे। श्रीमती रोस्सा को जब यह मालूम हुग्रा कि उन पत्रों की लेखिका एक लड़की है, तो कहते हैं कि उन्हें बड़ी जलन हुई ग्रौर मार्क्स को यह सुनकर बड़ा मजा ग्राया...

---

* शेक्सपियर, 'हैमलेट'।–सं०

** **मूर, टॉमस** (१७७९–१८५२)–ब्रिटिश रोमानी कवि, जन्म से ग्रायरिश, ग्रायरी जनता के राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष के प्रवक्ता।–सं०

उस दौर में पार्टी के मित्र मार्क्स से मिलने अक्सर आते रहते थे। उन्हीं में एक धीर एवं सुसंस्कृत व्यक्ति श्री डीयेट्ज़गेन* भी थे, जिनसे मार्क्स और जेनी को वहुत आशाएं थीं। उन्हें उनके शान्त तौर-तरीक़े के साथ-साथ प्रकाण्ड कार्य-क्षमता और उत्साह वहुत पसन्द थे।

एक दिन एक साहव मिलने आए और उन्होंने किसी क़दर दुराग्रहपूर्ण तथा मनमाने ढंग से व्यवहार किया। मार्क्स बोले, "ऐसे व्यक्ति की वातें सुनने के वाद यह सोचकर आश्चर्य होने लगता है कि अमीर-उमरा की शिक्षा और उनके परिवेश को देखते हुए, वे जितने वुरे हैं, उससे बदतर क्यों नहीं हैं..."

वे अपने विरोधी को इस तरह शान के घोड़े से गिरा देते थे, जैसे दंगल में करते हैं, लेकिन उसे कभी चारों खाने चित नहीं करते थे...

* * *

हमारे साथ मार्क्स और जेनी की लम्बी रहाइश के फलस्वरूप उनके लन्दन लौटने पर स्वभावतः रोचक पत्र-व्यवहार शुरू हो गया।

यह पहले ही वताया जा चुका है कि जेनी पत्र-व्यवहार में फ़ान्सीसी और संक्षिप्त टीपों के लिए अंग्रेज़ी भाषा को तरजीह देती थीं। एल्योनोरा हमेशा अंग्रेज़ी और मार्क्स तथा उनकी पत्नी जर्मन में लिखती थीं। श्रीमती मार्क्स बहुत ही बढ़िया पत्र लिखती थीं, जिनमें न केवल अपने जीवन का विशद विवरण देती थीं, वल्कि मेरे माता-पिता के जीवन में भी गहरी दिलचस्पी लेती थीं। उनके पत्रों से प्रगट होता था कि जो कुछ उनके पति और जेनी ने उन्हें मेरे माता-पिता के बारे में वताया था, उससे वे उन्हें कितनी अच्छी तरह जान गई थीं और हम से सम्बन्धित सभी मामलों की ओर कितना अधिक ध्यान देती थीं। मेरी मां फ़ान्सीसी और अंग्रेज़ी दोनों ही पढ़ और वोल सकती थीं, लेकिन पत्र-व्यवहार में उनकी मातृभाषा ही अधिक स्वाभाविकता तथा प्रवाह के साथ काम आती थी...

---

*डीयेट्ज़गेन, जोज़ेफ़ (१८२८–१८८८) – जर्मन समाजवादी, पेशे से चमड़ा-मज़दूर, दार्शनिक, जो स्वतन्त्र रूप से द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद पर पहुंचे। – सं०

वड़े दिनों पर पूरा मार्क्स परिवार हम लोगों के लिए बड़े शौक़ से चुने गए स्मृति-चिन्ह ग्रौर कशीदाकारी की सुन्दर-सुन्दर चीजें भेजा करता था। उनमें से एक था फूलों से ग्रारास्ता रेशमी थियेटर हैट, जिसे उन्होंने ख़ुद ही बनाया था। उसे जर्मनी में नहीं पहना जा सकता था, लेकिन मेरी मां ने उसे बहुत दिनों तक यादगार के रूप में सुरक्षित रखा था। कई बार उन लोगों ने हमें घर का बना बहुत बड़ा प्लम-पडिंग भी भेजा...

मार्क्स से फिर मिलने ग्रौर श्रीमती मार्क्स तथा लफ़ार्ग दम्पति से परिचय प्राप्त करने के लिए मेरे पिता सभा-सम्मेलनों के प्रति ग्रपनी नापसन्दी को दबाकर सामाजिक-जनवादियों की हेग कांग्रेस* में गए।

मेरे पिता ने श्रीमती लफ़ार्ग का वर्णन सुन्दरी, सुशीला ग्रौर स्नेहशीला के रूप में किया। उन्होंने बताया कि छरहरी, युवती-सी प्रतीत होनेवाली श्रीमती मार्क्स ने पार्टी के जीवन में गहरी दिलचस्पी ली ग्रौर ऐसा लग रहा था कि उन्होंने उसके लिए ग्रपने को पूर्णतः उत्सर्ग कर दिया है...

चन्द साल बाद मेरे माता-पिता मार्क्स ग्रौर एल्योनोरा से कार्ल्सबाद में मिले ग्रौर इस प्रकार एल्योनोरा से उनका व्यक्तिगत परिचय हुग्रा, जिनसे वे पत्रों द्वारा ग्रक्सर बातें करते रहे थे। जेनी का विवाह श्री लॉन्गे के साथ हो चुका था ग्रौर वे ग्रपने पति ग्रौर बच्चे को छोड़कर उनके साथ नहीं ग्रा सकी थीं।

एल्योनोरा, जिन्हें वे तुस्सी कहा करते थे, चरित्र ग्रौर शक्ल-सूरत दोनों में ही ग्रपनी बड़ी बहन से ग्रत्यधिक भिन्न थीं। उनका नाक-नक़्शा उतना बढ़िया नहीं था, लेकिन उनकी ग्रांखें भी पिता की तरह ही विचक्षण ग्रौर भूरी थीं। सुन्दर न होते हुए भी वे ग्राकर्षक ग्रवश्य थीं। सुनहरी झिलमिली युक्त उनके सुन्दर गहरे भूरे केश थे...

मेरी मां के मन पर यह छाप पड़ी कि सारे परिवार की दुलारी होने के कारण सबसे छोटी बेटी को सब ने सिर चढ़ा रखा था ग्रौर वह लाड़-प्यार से बिगड़े बच्चे की तरह मनमानी करती थीं। वे ग्रपने पिता को जेनी

---

* पहले इन्टरनेशनल की सितम्बर १८७२ में हेग में हुई कांग्रेस।—सं०

की तरह ही बेहद प्यार करती थीं। वे वहुत जहीन, स्नेहमयी और इतनी साफ़गो थीं कि जो कुछ ठीक समझतीं वह हर किसी से शिष्टाचार-प्रदर्शन के बिना कह डालती थीं, चाहे किसी को बुरा लगे या भला।

मार्क्स पहले की तरह ही थे – देखने में भी जैसे के तैसे। उन्होंने उस स्वास्थ्य-स्थल पर देश-देश के लोगों के जीवन को दिलचस्पी के साथ देखा और कुछ अधिक ध्यान आकर्षित करनेवालों को अपनी आदत के मुताबिक चटपटे उपनाम प्रदान किये।

वनाच्छादित पर्वतों की विभिन्न सुन्दर गुज़रगाहों को, विशेषतः एगेर्ताल को, देखकर वे बहुत आनन्दित हुए। दन्तकथाओं ने वहां की कुछ विचित्र आकारवाली चट्टानों का वैयक्तीकरण कर दिया है और उनका नाम हान्स हाइलिंग की चट्टानें पड़ गया है।

कहा जाता है कि हान्स हाइलिंग एक युवक गड़रिया था, जिसने एगेर नाम की एक सुन्दर जलपरी का हृदय जीत लिया था। जलपरी ने भयानक प्रतिशोध का भय दिखाकर शाश्वत वफ़ादारी की मांग की। हान्स हाइलिंग ने उसे कभी न छोड़ने की क़सम खाई, लेकिन चन्द साल बाद उसने अपनी क़सम तोड़ दी और गांव की एक लड़की से शादी कर ली। क्रोधोन्मत्त जलपरी शादी के समय सहसा नदी में से प्रगट हुई और पूरी बारात को पत्थर में परिवर्तित कर दिया।

इन चट्टानों में बारात के आगे-आगे चलते तुरही और सिंगावादकों, दुलहन की बग्गी और कोच में चढ़ने के लिए अपने स्कर्ट को समेटती हुई सुंदर कपड़ों से सजी एक वृद्धा के आकार खोजने में मार्क्स आनन्द लेते थे। साथ ही वे तीव्रप्रवाहिणी फेनिल नदी की कल-छल सुनते, जो उस जादुई घाटी में पुरुष की चलचित्तता पर निरन्तर रुदन करते किसी अमर प्राणी का प्रतिनिधित्व करती मानी जाती है।

डाल्वित्स में हमने क्योर्नर के बलूत देखे, जिनके नीचे प्रख्यात कवि ने गंभीर ज़ख़्मों के भरने के दौरान अक्सर अपना समय बिताया था और 'बलूत के वृक्ष' नामक अपनी सुन्दर कविता रची थी।*

---

*जर्मन रोमानी कवि क्योर्नर (१७९१–१८१३) से अभिप्राय है, जिन्होंने नेपोलियन के विरुद्ध मुक्ति-संघर्ष में भाग लिया। – सं०

श्राइख़ में मार्क्स ने चीनी मिट्टी के बर्तनों के कारख़ाने में बड़ी दिलचस्पी ली और चीनी मिट्टी के बर्तन बनते देखे।

लवीोत्स्की द्वारा निदेशित बढ़िया वाद्यवृन्द को मार्क्स बड़े चाव से सुनते थे। जहां तक गंभीर राजनीतिक बातचीत या पार्टी सम्बन्धी मामलों पर बहस का सम्बन्ध था, तो उन्हें मार्क्स मेरे पिता अथवा अपने अन्य परिचित व्यक्तियों के साथ सुबह की सैर के थोड़े-से समय तक ही सीमित रखते थे। उनके परिचितों में एक पोलैण्डी क्रान्तिकारी काउन्ट प्लेटर थे, जो अपने विचारों द्वारा इतने ग्रस्त थे कि हल्की-फुल्की बातचीत में भाग लेना उनके लिए प्रत्यक्ष ही कठिन था, जबकि लोगों के विस्तृत दायरे अथवा स्त्रियों की सुखद संगति में मार्क्स हल्की-फुल्की बातचीत का ही आग्रह करते थे। काले बालों वाले काउन्ट, बहुत ही नाटे और बेडौल थे। मेरे पिता के मित्र, ऐतिहासिक विषयों के चित्रकार, ओटो क्निल्ले, की राय थी कि अगर किसी से पूछा जाता कि मार्क्स और प्लेटर में से कौन काउन्ट है, तो वह निश्चय ही मार्क्स का नाम लेता। क्निल्ले के साथ कला सम्बन्धी बातें करना मार्क्स अक्सर पसन्द करते थे। इस प्रकार वे दिन विभिन्न सुखद व्यस्तताओं में बीत गए।

वहीं, अन्तिम दिनों में मेरे पिता के साथ एक लम्बी सैर के दौरान अचानक उनके बीच कोई मतभेद पैदा हो गया, जो कभी भी दूर नहीं हुआ। मेरे पिता ने उसका केवल अस्पष्ट इशारा ही किया। ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने मार्क्स को हर प्रकार के राजनीतिक प्रचार से परहेज करके हर चीज से पहले 'पूंजी' के तीसरे खण्ड को पूरा करने के लिए समझाने-बुझाने की कोशिश की थी... बाद में मेरे पिता अक्सर कहा करते थे कि "मार्क्स अपने युग से सौ साल आगे हैं, लेकिन जो लोग अपने युग के साथ हैं उन्हें तात्कालिक सफलता मिलने की अधिक संभावना है: जो लोग बहुत दूर तक आगे देखते हैं, वे पास की चीजें अनदेखी कर जाते हैं, जिन्हें कम दूरदर्शी लोग अधिक स्पष्ट रूप में देखते हैं।"

शायद मेरे पिता उस समय कुछ-कुछ "बुरे वेन्त्सेल" की भांति अध्याग्रही थे। अपने से कमउम्र व्यक्ति की यह बात मार्क्स नहीं सहन कर पाए और उसे अपनी आजादी में हस्तक्षेप समझा। फलतः उनका पत्र-व्यवहार भी बन्द हो गया। तुस्सी कभी-कभी लिखती रहती थीं, पर

मुझे नहीं मालूम कि जेनी भी वैसा करती थीं कि नहीं। तुस्सी सदा अपने पिता की शुभकामनाएं लिखती रहती थीं, जो मेरी मां के साथ हुई पहले की बातचीत की यादगार में उन्हें पुस्तकें भी भेजते थे: मकामेहरीरी के र्‍योकेर्त कृत अनुवाद, शमिस्सो की कृतियां और ई० टी० ए० हॉफ़मैन का 'नन्हा त्साखेस'। पुराख्यान के रूप में यह व्यंग्य-रचना मार्क्स को ख़ास तौर से पसन्द थी। स्वयं उन्होंने फिर कभी पत्र नहीं लिखा। संभवतः वे मेरे पिता की उपेक्षा करके उन्हें आघात पहुंचाना नहीं चाहते थे, फिर भी वे उस घटना को नहीं भूल सके।

मेरे पिता बाद में भी पहले की तरह ही मार्क्स का आदर करते रहे और एक ऐसे मित्र के साथ विच्छेद की वेदना से कभी भी मुक्ति नहीं पा सके। फिर भी उन्होंने सुलह-मेल के लिए कभी कोई कोशिश नहीं की, क्योंकि वे अपना विश्वास नहीं बदल सकते थे। मार्क्स की मृत्यु के बाद मेरी मां को कभी-कभार केवल तुस्सी के पत्र ही मिलते रहे...

मार्क्स के साथ मेरे माता-पिता के सम्बन्ध, जिन्हें वे इतना प्रिय समझते थे कि उनके प्रत्येक ब्योरे को सदा स्नेहपूर्वक याद किया करते थे, शिलर के इन शब्दों में व्यक्त किए जा सकते हैं:

> काल तेज़ चाल से भाग रहा है;
> स्थायित्व की खोज में।
> स्थायी होकर
> तुम उसे बांध लोगे--
> सदा-सर्वदा के लिए।

नि० मोरोज़ोव

कार्ल मार्क्स से भेंट*

दिसम्बर, १८८० में मैंने लन्दन की यात्रा की और 'नरोद्नाया वोल्या'** के अपने एक साथी, लेव हार्टमैन, के साथ मार्क्स से मिलने गया, जो अक्सर उनके यहां जाया करते थे। हम लन्दन की मेट्रोपॉलिटन रेल गाड़ी से गए, जो तब भाप के इंजिनों से चलती थी। उस समय मार्क्स अपनी बेटी एल्योनोरा के साथ अकेले रहते थे।

---

* **मोरोज़ोव, निकोलाई अलेक्सान्द्रोविच** (१८५४–१९४६) – रूसी क्रान्तिकारी आन्दोलन में सक्रिय रूप से भाग लेनेवाले; नरोद्वादी। सोवियत काल में सोवियत विज्ञान अकादमी के सम्मानित सदस्य, रसायनशास्त्री, खगोलशास्त्री। प्रस्तुत संस्मरण १९३५ में प्रकाशित हुए। – सं०

** **'नरोद्नाया वोल्या'** (जनता की आज़ादी) – १८७९ में स्थापित क्रान्तिकारी बुद्धिजीवियों (नरोद्वादियों) का गुप्त राजनीतिक संगठन। काल्पनिक समाजवादी होते हुए भी ज़ारशाही स्वेच्छाचारी शासन का तख़्ता उलटने और राजनीतिक आज़ादी प्राप्त करने के लक्ष्य से नरोद्वादियों ने राजनीतिक संघर्ष का पथ अपनाया। वैयक्तिक आतंक का रास्ता अपनाकर उन्होंने ज़ार अलेक्सान्द्र द्वितीय की १ मार्च, १८८१ को हत्या की। इसके बाद ज़ारशाही सरकार ने उक्त संगठन को कुचल दिया। नवें दशक के उत्तरार्द्ध तक इस संगठन का बिल्कुल अन्त हो गया। – सं०

हार्टमैन के तीन बार दरवाज़ा खटखटाने पर जब नौजवान नौकरानी ने दरवाज़ा खोला, तब उन्होंने पूछा, "क्या श्री मार्क्स घर पर हैं?"

उसने उन्हें पहचान लिया और बताया कि मार्क्स अभी ब्रिटिश म्युज़ियम से नहीं लौटे हैं, लेकिन उनकी बेटी घर पर हैं।

बैठकख़ाने में हमारे प्रवेश करते ही उनकी बेटी, एक जर्मन नाक-नक़्शेवाली छरहरी आकर्षक लड़की, दाख़िल हुई। उन्हें देखकर मुझे रोमानी ग्रेत्खे़न, अथवा 'फ़ाउस्ट' की मार्गरेट की याद आ गई।

हमारी बातचीत अंग्रेज़ी में शुरू हुई। लेकिन मैंने किसी अंग्रेज़ी शब्द के सम्बन्ध में कठिनाई अनुभव की और उसके बजाए फ़्रान्सीसी शब्द का इस्तेमाल किया। तब एल्योनोरा ने फ़ौरन पटरी बदल दी और हमारी बातचीत फ़्रान्सीसी में चलने लगी।

एल्योनोरा ने दोहराया कि उनके पिता अभी ब्रिटिश म्युज़ियम में हैं और शाम से पहले घर नहीं लौटेंगे। हम आध घंटे बाद चल दिए और दूसरे दिन नियत समय पर फिर आए।

मुझे अच्छी तरह याद है कि मार्क्स को देखकर मेरे मन पर पहली छाप यह पड़ी कि वे अपने चित्र से कितने मिलते-जुलते हैं! पहले परिचय के बाद हम एक छोटी-सी मेज़ के गिर्द दीवार से लगे सोफ़े पर बैठ गए और मैं अपने मन पर उनकी छाप की बात कहकर हंस पड़ा। वे भी हंस पड़े और बोले कि उनसे ऐसा अक्सर कहा जाता है और चित्र के अपने अनुरूप होने के बजाय स्वयं के चित्र के अनुरूप होने की अनुभूति कुछ विचित्र-सी होती है।

वे मुझे किसी क़दर मझोले क़द, लेकिन चौड़ी काठी के व्यक्ति प्रतीत हुए। वे हम दोनों के साथ अधिकतम सौजन्य से पेश आए। लेकिन उनके प्रत्येक हाव-भाव और शब्दों से आदमी को फ़ौरन महसूस हो जाता था कि वे अपने असाधारण महत्त्व को पूर्णतः समझते थे। मैंने उनमें उस ग़ैरमिलनसारी अथवा उदासीनता का लेश भी नहीं पाया, जिसकी बाबत मुझसे किसी ने ज़िक्र किया था। उस समय लन्दन में कुहरा छाया था और सभी घरों में लैम्प जल रहे थे। मुझे स्पष्ट रूप से याद है कि मार्क्स के घर जलनेवाले लैम्प का शेड हरे रंग का था। लेकिन उस रोशनी में भी मैं उन्हें और

उनके अध्ययनकक्ष को बिलकुल अच्छी तरह देख सकता था। तीन तरफ़ की दीवारें किताबों से ढंकी हुई थीं और चौथी पर चित्र टंगे हुए थे।

एल्योनोरा के सिवा और कोई कमरे में नहीं आया और मुझे लगा कि परिवार के अन्य सदस्य घर में नहीं हैं। एल्योनोरा जब-तब कमरे में आतीं और सोफ़े पर कुछ किनारे बैठकर बातचीत में हिस्सा लेती रहीं। हमारे लिए चाय और बिस्कुटें लायी गईं।

बातचीत मुख्य रूप से 'नरोद्नाया वोल्या' के मामलों पर होती रही, जिसमें मार्क्स ने बहुत दिलचस्पी प्रदर्शित की। उन्होंने कहा कि अन्य सभी यूरोपीयों की भांति वे भी तानाशाही के ख़िलाफ़ हमारे संघर्ष को अकल्पनीय आख्यान जैसी कोई चीज़, किसी काल्पनिक उपन्यास जैसा समझते थे।

दो दिन बाद, लन्दन छोड़ने से पहले मैं फिर मार्क्स से मिलने गया और उनके तथा उनकी पुत्री के साथ कुछ समय बिताया। जब मैंने उनसे अलविदा कहा, तो उन्होंने पांच या छे किताबें दीं, जिन्हें उन्होंने मेरे लिए पहले से ही तैयार कर रखा था। उन्होंने यह भी वायदा किया कि उनमें से जो किताब हम छापने के लिए चुनेंगे, उसके अनुवाद के पहले प्रूफ़ पाते ही वे उसकी भूमिका भी लिख देंगे।

जब उन्होंने सुना कि मैं दो या तीन सप्ताह में रूस वापस जा रहा हूं, तब उन्होंने बड़ी हार्दिकता से हाथ मिलाया और रूस से मेरी सकुशल वापसी की कामना की। हम दोनों ने पत्र लिखने के वायदे किए, पर वे वायदे पूरे नहीं हुए। जेनेवा में लौटने पर मुझे पेरोव्स्काया* से एक पत्र मिला, जिसमें मुझे बताया गया था कि अनेक उन घटनाओं का, जिनके लिए तैयारियां की जा रही हैं, तकाजा है कि मैं फ़ौरन लौट आऊं। मैंने अपना सामान बांधा और चल पड़ा। लेकिन जब २८ फ़रवरी को मैं जेनेवा विश्वविद्यालय के एक विद्यार्थी, लॉकिएर, के नाम से सीमा पार कर रहा था, तब मुझे गिरफ़्तार करके वार्सा के क़िले में पहुंचा दिया गया। वहां

---

* **पेरोव्स्काया, सोफ़्या ल्वोव्ना** (१८५३–१८८१) – रूसी क्रान्तिकारी, 'नरोद्नाया वोल्या' नामक गुप्त संगठन की प्रमुख कार्यकर्त्री; ज़ारशाही सरकार ने उन्हें मौत की सजा दी। – सं०

मुझे बग़ल की कालकोठरी में बन्द तदेउश बलीत्स्की नामक एक साथी के दीवार पर थपथपी मारने के इशारों से १ मार्च की घटनाओं की ख़बर मिली।

शुरू में मुझे पीटर और पॉल क़िले के अलेक्सेयेव्स्की दुर्ग-प्राकार में क़ैद रखा गया और फिर शिलसेलबर्ग क़िले में। १९०५ में रिहा होने के समय तक मार्क्स के साथ मेरी बातचीत के नतीजे के बारे में मुझे कुछ पता नहीं था। सच तो यह है कि १९३० तक उसके बारे में मुझे कोई ख़बर नहीं थी, जबकि राजनीतिक बन्दी समिति के एक प्रकाशन, ''नरोद्नाया वोल्या' का साहित्य' में 'सामाजिक-क्रान्तिकारी पुस्तकालय' द्वारा प्रकाशित, जिसकी स्थापना में मैंने भी योगदान किया था, 'कम्युनिस्ट घोषणापत्र' की मार्क्स लिखित 'भूमिका' अकस्मात देखने को मिली। उसे देखकर मेरे मन में अनेक स्मृतियां जागृत हो गईं।

मार्क्स और उनकी पुत्री से अपनी मुलाक़ातें याद आयीं और याद आया कि किस प्रकार जेनेवा से जल्दी-जल्दी रूस के लिए रवाना होते समय मैंने 'सामाजिक-क्रान्तिकारी पुस्तकालय' के एक कार्यकर्त्ता को (मेरा ख़याल है कि वे प्लेख़ानोव थे), जो वहां रुक रहे थे, मार्क्स का 'घोषणापत्र' तथा अन्य पुस्तकें रूसी में अनुवाद के लिए दी थीं।

मार्क्स लिखित जिस भूमिका का अभी-अभी मैंने जिक्र किया है, उसमें इन शब्दों को पढ़कर मुझे विशेष प्रसन्नता हुई:

"ज़ार को यूरोपीय प्रतिक्रिया का मुखिया घोषित किया गया था। आज* वह गात्चिना में क्रान्ति का युद्धबन्दी है और रूस यूरोप में क्रान्तिकारी आन्दोलन का हरावल है।"

---

*यानी १८८१ में। (मोरोज़ोव का नोट)

एडुअर्ड एवेलिंग*

एंगेल्स घर में

१

सारे संसार के समाजवादी और अन्य अख़बारों ने उस महान समाजवादी के जीवन और कामों के विवरण प्रस्तुत किए हैं, जिनकी अभी हाल में मृत्यु हुई। इस लेख में मैं उनके जीवन के अन्तरंग पक्ष की कुछ बातों का ज़िक्र करूंगा।

जिन लोगों से मैं अब तक मिला हूं, उन में से कार्ल मार्क्स, चार्ल्स डार्विन, फ़्रेडरिक एंगेल्स और, जीवन के बिलकुल दूसरे ही क्षेत्र में, हेनरी इर्विंग** सर्वाधिक उल्लेखनीय हैं। चारों ही व्यक्तियों में महान बौद्धिक शक्ति के साथ महान शारीरिक गुण जुड़े हुए थे। जहां तक मार्क्स और डार्विन का सम्बन्ध है, यद्यपि मुझे उनके लिखित और व्यावहारिक कृतित्व की कमोवेश जानकारी रही है, तथापि उनसे मिलने का महान सौभाग्य मुझे केवल एक या दो अवसरों पर ही मिला है। मैंने जीवित मार्क्स को केवल एक बार तब देखा था, जब मैंने नौउम्री में हैवरस्टॉक हिल स्थित अनाथ

---

* **एवेलिंग, एडुअर्ड** (१८५१–१८९८)—ब्रिटिश समाजवादी, लेखक, मार्क्स की बेटी एल्योनोरा के पति। प्रस्तुत संस्मरण १८९५ में प्रकाशित हुए।—सं०

** **इर्विंग, हेनरी** (१८३८–१९०५)—प्रसिद्ध अंग्रेज थियेटर निर्देशक और अभिनेता जिन्होंने शेक्सपियर के कई दुःखान्त नाटकों में अभिनय किया।—सं०

व्यावसायिक स्कूल के बच्चों के लिए "कीड़े-मकोड़े और फूल" विषय पर एक भाषण दिया था। स्कूल के उत्सव का दिन था और बच्चों के अलावा श्रोताओं में ऐसे लोग भी थे, जिनकी उक्त विषय में दिलचस्पी थी। भाषण समाप्त होने पर सिंहीय सिरवाले एक वृद्ध सज्जन ने एक महिला तथा एक नवयुवती के साथ आगे बढ़कर मुझे अपना परिचय दिया। ये सज्जन कार्ल मार्क्स, महिला उनकी पत्नी जेनी फ़ॉन वेस्टफ़ालेन और नवयुवती उनकी पुत्री एल्योनोरा थीं। मार्क्स ने अत्यधिक प्रशंसा तथा प्रोत्साहन के जो अनुग्राही तथा उदारतापूर्ण शब्द कहे थे, वे मुझे आज तक याद हैं। दूसरी बार मैंने उन्हें तब देखा, जब वे चिर-निद्रा में सो चुके थे। लेकिन उनकी महान शारीरिक शक्ति की छाप, जो मुझपर पड़ी थी, वह अब तक बनी हुई है...

एंगेल्स छे फ़ुट से ज़रा अधिक लम्बे थे और अन्तिम बीमारी के समय तक सिपाहियाना ढंग से तनकर चलते थे और सत्तर साल से अधिक का बोझ उनके लिए भारी नहीं हुआ। फुर्तीले-लचीले क़दम के साथ उनकी फ़ौजी चाल-ढाल उनके "जनरल" उपनाम के बिल्कुल अनुरूप थी। अपने अन्तरंग मित्रों में वे सदा इसी नाम से पुकारे जाते थे।

इस नाम का उद्भव-स्रोत १८७० के फ़्रान्सीसी-प्राशियाई युद्ध के दौरान «*Pall Mall Gazette*» को लिखे गए उनके उल्लेखनीय लेख थे। उनमें से एक में, २ सितम्बर से कोई आठ दिन पहले, उन्होंने सेदान में फ़्रान्सीसियों पर जर्मनों की निर्णयात्मक विजय की भविष्यवाणी की थी। कुल मिलाकर उन लेखों ने युद्धकला के ज्ञान का ऐसा परिचय दिया कि जनता उन्हें किसी बड़े प्रामाणिक सैनिक अधिकारी द्वारा लिखित समझती थी, जैसे कि सचमुच वे थे भी। लेकिन वे बड़े प्रामाणिक सैनिक अधिकारी... समाजवादी निकले।

बाद को इस उपनाम ने अधिक गहन अर्थ प्राप्त कर लिया, क्योंकि मार्क्स की मृत्यु के बाद पूंजीवाद के ख़िलाफ़ समाजवादी सेना की लड़ाई में उन्होंने ही प्रधान सेनापति का पद ग्रहण कर लिया था।

२

रीजेण्ट पार्क रोड के १२२ नम्बरवाले मकान में रविवारों को जो शानदार महफ़िलें जमती थीं, उनमें एक बार भी शरीक रहनेवाला व्यक्ति उन्हें कभी नहीं भूल सकता!

मार्क्स, उनकी पत्नी और एंगेल्स की भी मित्र, हेलेन देमुत तब जीवित थी। वह उनकी गृह-प्रबन्धिका थी तथा न केवल दैनिक जीवन के मामलों में, बल्कि राजनीति में भी उनकी परामर्शदात्री थी। उसकी कुशाग्र बुद्धि, व्यावहारिक ज्ञान, लोगों और चीज़ों के बारे में उसकी समझ ने उसे राजनीति तक में मार्क्स और एंगेल्स जैसे दो महारथियों की भी सहायिका बना दिया था।

मामला कुछ-कुछ पंचमेली भीड़ जैसा होता था, क्योंकि वहां केवल हमीं लोग नहीं होते थे, जो दर-असल उनके परिवार में शामिल थे, बल्कि दूसरे देशों के समाजवादियों ने भी १२२, रीजेण्ट पार्क रोड को अपना मक्का बना रख था।

एंगेल्स उन सब से उनकी ही भाषाओं में बात कर सकते थे। मार्क्स की तरह वे भी जर्मन, फ़्रान्सीसी और अंग्रेज़ी बहुत अच्छी तरह बोलते और लिखते थे; प्राय: उतनी ही अच्छी तरह इतालवी, स्पेनी और डेनमार्की भी। लातीनी तथा यूनानी की तो चर्चा ही क्या, वे रूसी, पोलैण्डी और रूमानियाई भी पढ़ लेते थे और उनमें काम चला लेते थे।

हर रोज़, हर डाक से उनके घर सभी यूरोपीय भाषाओं के अख़बार और पत्र आते थे और यह सोचकर हैरत होती थी कि अपनी इतनी व्यस्तता के बावजूद वे उन्हें पढ़ने, सलीक़े से रखने और उन सभी में लिखी मुख्य बातों को याद रखने के लिए किस तरह समय निकाल पाते थे। जब उनकी या मार्क्स की कृतियों में से कुछ अन्य भाषाओं में अनुवादित होने को होता था, तब अनुवादक हमेशा अनुवाद को उनके पास नज़रेसानी और इसलाह के लिए भेजते थे। फ़्रेनॉलाजी* के वैज्ञानिक महत्त्व से भला

---

* फ़्रेनॉलाजी – पूंजीवादी शरीररचनाशास्त्रियों की प्रतिक्रियावादी "शिक्षा" जो कपाल के बाह्य रूप तथा बौद्धिक और नैतिक गुणों के सम्बन्ध पर ज़ोर देती थी। – सं०

कौन इनकार कर सकता है, जबकि यारमाउथ के एक कपालवैज्ञानिक ने एंगेल्स के कपाल के उभाड़ों की परीक्षा करने के बाद कहा था (जिसे सुनकर उनके साथियों को बेहद मजा आया था) कि ये साहब "अच्छे कारोबारी हैं... लेकिन भाषाओं के लिए इनके पास प्रतिभा नहीं है!"

एंगेल्स तो बहुत ही अच्छे मेजबान थे। रविवार को छोड़कर सप्ताह के कोई दिन अगर हम में से कोई उनसे मिलने और उनके साथ दिन या शाम का खाना खाने न पहुंच जाता, तो वे हफ़्ते भर असाधारण किफ़ायत से रहते थे। लेकिन रविवारों को यह देखते ही बनता था कि अपने मित्रों के बीच उन्हें अच्छे से अच्छा खिला-पिलाकर ख़ुश करते हुए उन्हें कितना सुख मिलता था!

रूसी स्तेप्न्याक* भी कभी-कभी आते थे और ब्रिटेन आने के बाद से वेरा ज़ासूलिच** निरन्तर आनेवालों में रहीं, जिनके लिए निमन्त्रण की कोई आवश्यकता न थी। उनके वफ़ादार दोस्त और सहकर्मी गेओर्गी प्लेख़ानोव, जो एक सुयोग्यतम विचारक और पार्टी के अधिकतम व्यंग्यकुशल लोगों में से थे और जिनसे अराजकतावादी शायद किसी भी जीवित लेखक से अधिक डरते थे, अपने संक्षिप्त ब्रिटेन प्रवास के दौरान हमेशा एंगेल्स के यहां होते थे...

अमरीका के एक मित्र का उल्लेख भी उचित प्रतीत होता है, जिन्हें अटलान्टिक महासागर ने एंगेल्स के घर से दूर कर रखा था, लेकिन जो उनके अधिकतम वांछित और स्थायी पत्र-व्यवहार करनेवालों में से थे और जो मार्क्स तथा एंगेल्स के अन्तिम बरसों के दौरान उन दोनों के घनिष्ठतम मित्रों में से थे। उनका नाम है फ़ेडरिक अदोल्फ़ ज़ोर्गे, जो न्यूयार्क के निकट होबोकेन में रहते थे। १८८८ में एंगेल्स और रसायनशास्त्रियों,

---

* **क्रव्चोन्स्की, सेर्गेई मिख़ाइलोविच** (साहित्यिक उपनाम – स्तेप्न्याक) (१८५१–१८९५) – रूसी सार्वजनिक लेखक, आठवें दशक के क्रान्तिकारी नरोद्वाद के विख्यात प्रतिनिधि। – सं०

** **ज़ासूलिच, वेरा इवानोव्ना** (१८५१–१९१९) – नरोद्वादी, फिर सामाजिक-जनवादी आन्दोलन की प्रमुख प्रतिनिधि। – सं०

समाजवादियों तथा नेक दोस्तों के सरताज स्वर्गीय प्रोफ़ेसर शोर्लेमेर के साथ मैंने और मेरी बीवी ने जो यात्रा की, उसकी सर्वाधिक रुचिर स्मृतियों में ज़ोर्गे के साथ हमारी मुलाक़ात और उनके साथ बिताया हुआ समय ही है...

ज़ाहिर है कि मार्क्स की पुत्रियों, उनके पतियों – पाल लफ़ार्ग और इन पंक्तियों के लेखक, 'कम्युनिस्ट घोषणापत्र' के दोनों लेखकों के पुराने, आज़माए हुए और विश्वासी मित्र सैमुएल मूर और कार्ल शोर्लेमेर जैसों की ब्योरेवार चर्चा की यहां ज़रूरत नहीं है।

अगर मैं उन सभी आते-जाते समाजवादियों की बात करने बैठूं, जो ब्रिटेन की अपनी सरसरी यात्राओं में एंगेल्स से मिलने आते थे, तो समय और स्थान मेरा साथ नहीं दे सकेंगे। यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि वे केवल प्रमुख कार्यकर्त्ताओं से ही नहीं मिलते थे, बल्कि "जनरल" के घर के दरवाज़े फ़ौज के हर सैनिक के लिए खुले रहते थे।

साथ ही हमें यह भी नहीं समझना चाहिए कि उनकी मेहमाननेवाज़ी या दोस्ती की भावना सभी के लिए समान थी। वे ऐसे किसी से भी नहीं मिलना चाहते थे और न मिलते थे, जिसका उन्हें एतबार न हो। कम से कम एक ऐसी घटना तो मुझे याद है, जब कोई साहब विदेशियों के एक शिष्टमंडल के साथ आए थे और एंगेल्स ने उन्हें फ़ौरन लौटा देने में कोई आगा-पीछा नहीं किया था।

३

मेरा ख़याल है कि जिन लोगों का ज़िक्र मैंने किया है, उनमें शायद ही कोई मेरी इस बात से सहमत न हो कि एंगेल्स दुनिया के अधिकतम सहायतातत्पर व्यक्तियों में से थे। उनकी उपस्थिति मात्र प्रेरणादायक होती थी। वैसी ही थी उनकी दुर्द्धर्ष साहसिकता और आशावादिता। नौजवानों में से कुछ के हताश हो जाने पर भी वे अपराजेय योद्धा कभी हिम्मत नहीं हारते थे और हमेशा दूसरों का हौसला बढ़ाते थे। हम में से उन लोगों के लिए, जो उनसे अपने जीवन के हर रविवार को और अक्सर सप्ताह में कई बार मिलते थे, मैं कह सकता हूं कि उनके अभाव की पूर्ति बिलकुल नहीं हो सकती।

वही ऐसे व्यक्ति थे जिनसे नाना प्रकार की कठिनाइयों में सलाह ली जाती थी और उन्हीं की सलाह का अनुसरण किया जाता था। उनका सर्वव्यापक ज्ञान सदा उनके मित्रों की सेवा में अर्पित रहता था। विशेष विषयों के ज्ञाता भी यह पाते थे कि एंगेल्स उनकी अपेक्षा उस विषय को बेहतर जानते हैं। इस प्रकार जहां तक प्रकृति-विज्ञान का सम्बन्ध है, उसकी किसी भी शाखा अथवा उस शाखा के किसी भी अंग के बारे में यदि उनसे कोई प्रश्न किया जाता था, तो वे सदा कोई न कोई नया विचार, कुछ न कुछ सहायता देने में समर्थ होते थे।

रही राजनीति, जो उनके सभी मित्रों का सर्वसामान्य विषय था, तो सभी उनके पास पथप्रदर्शन के लिए आते थे। वे हर देश के आर्थिक, ऐतिहासिक और राजनीतिक आन्दोलन के केवल आम उसूल ही नहीं, बल्कि अधिकतम सूक्ष्म ब्योरे भी जानते थे।

मसलन इंगलैण्ड के आन्दोलन का उनका ज्ञान असाधारण रूप से गंभीर और सूक्ष्म था। अंग्रेजों के लिए यह स्मरणीय बात है कि १८६० के प्रथम प्रदर्शन से लेकर १८६५ तक, जबकि उनके गिरते हुए स्वास्थ्य ने उन्हें ऐसा नहीं करने दिया, वे आठ घंटे के क़ानूनी कार्य-दिवस के लिए किये गये हर प्रदर्शन में शामिल हुए और अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर उपस्थित रहे।

समसामयिक राजनीति और उसके अध्ययन में उनकी दिलचस्पी अन्तिम समय तक बनी रही। पिछले चन्द साल की घटनाओं के बारे में उनकी अन्य सारी आलोचनाओं की तरह चीन और जापान के युद्ध* पर उनकी तीखी आलोचना भी दूरदर्शितापूर्ण थी। उनकी आलोचनाओं की अगाधता और हर बात तथा हर बात की आपेक्षिक स्थिति की उनकी आश्चर्यजनक पकड़ देखकर आदमी को चकित रह जाना पड़ता था। जब वे आलोचनाएं राजनीतिक घटनाओं की भविष्यवाणी का रूप ग्रहण करती थीं, तो असाधारण ढंग से सही सिद्ध होती थीं।

उनकी अंतिम राजनीतिक बातचीत इन पंक्तियों के लेखक की पत्नी के साथ २८ जुलाई को हुई थी (एंगेल्स की मृत्यु ५ अगस्त को हुई थी)। वे उस दिन नॉटिंघम से वापस आई थीं और उन्होंने एंगेल्स को वहां की

---

* १८६४–१८६५ में।—सं०

स्वतंत्र लेबर पार्टी के आन्दोलन की बाबत बताया था। वे तब बोलने में बिलकुल असमर्थ हो चुके थे। लेकिन अपनी स्लेट और पेन्सिल की सहायता से माक़ूल और सूक्ष्म प्रश्न पूछते हुए उन्होंने उक्त विषय पर उत्साहपूर्ण और बेहद दिलचस्प बातचीत की।

एंगेल्स बेहद नफ़रत भी कर सकते थे, जो वास्तव में हर उस व्यक्ति का लक्षण है जो ख़ूब प्यार करने में समर्थ है। जब वे यह महसूस करते थे कि कोई ग़लत काम किया गया है, तो कभी-कभी आपे से बाहर हो जाते थे, जिससे आम तौर पर लाभ ही होता था।

यह बात सुनने में विचित्र लग सकती है कि वे कुछ बातों में एक ही ढर्रे पर चलनेवाले आदमी थे। वे आदत के पाबन्द थे। वे कुछ चीज़ों का रोज़-रोज़ एक ही वक़्त पर और एक ही तरीक़े से किया जाना पसन्द करते थे।

लेकिन उनकी विश्वसनीयता, उनकी ईमानदारी, नपी-तुली कारोबारी आदतों, सटीकता का बयान करने के लिए शब्द नहीं हैं। इन बातों को वे श्रेष्ठतम अर्थों में अपने राजनीतिक तथा सामाजिक सम्बन्धों में ढालते थे। जैसा कि अभी कुछ दिन पहले वेरा ज़ासूलिच ने कहा था, वे अनेक बार हमें इस चेतना से कि "इसके बारे में जनरल क्या सोचेंगे?" ग़लत काम करने या ग़लत बात कहने से बाज़ रखते थे।

उनसे अधिक स्पष्ट और कुशाग्र मेधा की कल्पना करना कठिन है। जिस किसी विषय को भी वे छू देते थे, वह प्रकाश से जगमगा उठता था और आप जो कुछ पहले नहीं समझे होते थे, वह समझ जाते थे और समझी हुई बात और अचूक ढंग से समझ में आ जाती थी। ऑलिवर गोल्डस्मिथ* के बारे में लिखा गया है, "उन्होंने जिस भी चीज़ को छुआ, वही सुन्दर हो गई", और एंगेल्स के मित्र उनके बारे में लिख सकते हैं कि "उन्होंने जिस भी चीज़ को छुआ, वही प्रकाश से जगमगा उठी।" लेखक के रूप में जर्मन और अंग्रेज़ी दोनों भाषाओं में उनकी शैली स्पष्ट, सजीव और पैनी थी।

---

*गोल्डस्मिथ, ऑलिवर (१७२८-१७७४)—ब्रिटिश लेखक, ब्रिटेन में पूंजीवादी शिक्षा के प्रमुख प्रतिनिधि।—सं०

इन सारी असाधारण ख़ूबियों के साथ उनमें विनोद का विरल और निवारक गुण था। वे हर भाषा में मज़ाक़ का आनन्द लेते थे। वे अधिकतम ख़ुशमिज़ाज साथी थे। उन अविस्मरणीय रविवारों को अधिकतर बातें अनिवार्यत: राजनीति और पार्टी के मामलों पर होती थीं। हम सभी वहां कुछ सीखने आए होते थे। लेकिन काफ़ी बातें अधिक से अधिक हल्की-फुल्की क़िस्म की होती थीं और हंसी-दिल्लगी और ठहाकों का ख़ूब दौर-दौरा रहता था।

जब कभी वहां थोड़े लोग होते थे, तब वे आधी पेनी फ़ी दर्जन के "ऊंचे" हिसाब से कृत्रिम सिक्के दांव पर लगाकर ताश के खेल खेलना पसन्द करते थे और खेल में ऐसे खो जाते थे, जैसे कि उसी पर राष्ट्रों के भाग्य निर्भर हों...

जर्मनी के चुनाव हमारे लिए बहुत बड़ी घटना थे। तब एंगेल्स ने ख़ास जर्मन बियर का एक विशाल पीपा ख़रीदा, विशेष भोजन का प्रबन्ध किया और अपने नितान्त अन्तरंगों को निमन्त्रित किया। देर रात गए तक जर्मनी के सभी भागों से तारों की बौछार होती रही, "जनरल" हर तार को खोलते, उसे जोर से पढ़कर सुनाते और जीत होती या हार, हम हर तार पर पीते।

जैसा कि मैं कह चुका हूं, १८८८ में हमने उनके और शोर्लेमेर के साथ अमरीका और कनाडा की यात्रा की। हमारे दल में एंगेल्स सबसे अधिक नौजवान साबित हुए। जहाज पर सीट के गिर्द चक्कर काटकर गुजरने के बजाय वे उसे छलांग मारकर पार करना बेहतर समझते थे। साधारण यात्रियों की तरह वे बात-बात पर झल्लाते नहीं थे, केवल दो बार ही उन्हें ग़ुस्सा आया। एक तो तब, जब अपने नाश्ते से पहले उन्होंने मच्छरों के काटने के अड़सठ निशान गिने और दूसरी बार तब, जब हमारा सामान न्यूयार्क और ख़ुद हम बोस्टन पहुंच चुके थे।

ईस्टबोर्न में उनकी आख़िरी बीमारी के दौरान सारे दर्द और सारी कमजोरी के बावजूद उनमें पुरानी ज़िन्दादिली और ख़ुशमिज़ाजी की कौंधें मौजूद थीं। जीवन की अन्तिम घड़ी तक वे दूसरों के बारे में सोचते और

उनकी चिन्ता करते रहे। यह स्थान उस कृपालुता और उदारता का जिक्र करने के लिए उपयुक्त नहीं है। उनका प्रत्येक मित्र उस बेजोड़ उदारता और कृपालुता से परिचित है...

एंगेल्स नास्तिक थे। उन्हें भगवान की तनिक भी आवश्यकता नहीं थी और इसी कारण यह संसार ही उनका आशा-केन्द्र था।

एंगेल्स का जीवन बहुत ही कमाल का था और वे उसे प्यार करते थे... अपने ज्ञान, अपने ध्येय के औचित्य के विश्वास, आन्दोलन के भविष्य के सम्बन्ध में दृढ़ आस्था, अपनी मित्र-मंडली – जिसमें मार्क्स, बेशक, प्रथम, अन्तिम और सब कुछ थे – , अपनी अत्यधिक खुशमिज़ाजी के साथ एंगेल्स सही तौर से जीवन को दूसरे लोगों से अधिक प्यार करते थे, उसके प्रति उन्हें बहुत मोह था। इसका मतलब, बेशक, यह नहीं है कि उन्हें मौत से क्षण भर के लिए भी, लेशमात्र भी भय था।

अंग्रेज़ों को याद रखना चाहिए कि संसार के लिए मार्क्स और एंगेल्स ने अपना काम मुख्यतः इसी छोटे-से देश में किया और वे दोनों यहीं मरे। यह सम्मान दुनिया के सभी राजाओं और विजेताओं की क़ब्रों और समाधियों द्वारा प्रदत्त सम्मान से कहीं ऊंचा है। मृतकों के जिन समाधिस्थलों की भविष्य में सर्वाधिक यात्रा की जाएगी, वे होंगे हाईगेट की क़ब्र और वोकिंग* के चीड़ों के बीच सादी-सी छोटी इमारत।

---

*हाईगेट – लन्दन का क़ब्रिस्तान, जहां मार्क्स की क़ब्र है। वोकिंग – लन्दन के निकट का श्मशान है, जहां एंगेल्स का दाह-संस्कार हुआ। – सं०

फ़० म० क्रव्चीन्स्काया

कुछ यादें

प्लेख़ानोव सेर्गेई मिख़ाइलोविच* को जानते थे और उनसे पत्र-व्यवहार रखते थे। सेर्गेई मिख़ाइलोविच को उनका एक पत्र मिला, जिसमें अन्य बातों के अलावा उन्होंने लिखा था : "आप लन्दन में रह रहे हैं। आप वहां क्या कर रहे हैं? क्या आप जानते हैं कि वहां एंगेल्स रहते हैं? ऐसे व्यक्ति अक्सर नहीं पैदा होते। इसी लिए मैं आग्रह करता हूं कि आप उनसे परिचय कीजिए और मुझे रिपोर्ट भेजिए। यह तो बड़े अफ़सोस की बात है कि आप अभी तक उनसे मिलने नहीं गए। आपको लाज़िमी तौर से उनके पास जाना चाहिए।"

एंगेल्स एक बड़े मकान में रहते थे, जिसके दरवाज़े रविवार को मुलाक़ात के सभी इच्छुकों के लिए खुले रहते थे। समाजवादियों, आलोचकों और लेखकों से घिरे एंगेल्स से हर रविवार को उनके बड़े हॉल में मिला जा सकता था। जो कोई भी उनसे मिलना चाहता, वह सीधे जा सकता था।

एक रविवार को मेरे पति और मैं मार्क्स की पुत्री एल्योनोरा के साथ एंगेल्स के यहां गए।

इन अद्भुत वृद्ध सज्जन की मेरे दिल पर बहुत ही गहरी छाप पड़ी। मैं बहुत संकोचशीला थी और उन्होंने मुझे अपने बिलकुल पास ही बैठाकर

---

*क्रव्चीन्स्की, सेर्गेई मिख़ाइलोविच (स्तेप्न्याक) – लेखिका के पति। – सं०

मेरी उलझन बढ़ा दी। मैं मार्क्स की पुत्री के निकटतर खिसकती और एंगेल्स से बात करना बचाती रही। लेकिन वे एक अच्छे मेज़बान की भांति मुझे खिलाने-पिलाने लगे। मैं कोई भी विदेशी भाषा नहीं बोल सकती थी, इसलिए मेरी एक ही चाह थी कि मुझे शान्तिपूर्वक बैठने दिया जाए। एंगेल्स फ़्रान्सीसी, जर्मन और अंग्रेज़ी बोलते थे। बातचीत सभी संभव विषयों पर, मुख्यतः राजनीति पर, हो रही थी। तर्क-वितर्क चल रहे थे।

उनकी गृह-प्रबन्धिका सदा की भान्ति मेज़ के दूसरे सिरे पर बैठी थी। वह हर आगन्तुक को खुले दिल से ख़ासी बड़ी मात्रा में गोश्त और सलाद देती थी तथा गिलासों को शराब से भरती रहती थी।

मेहमानों के बीच गर्मागर्म बहसें चल रही थीं, जो उत्तेजित होकर चिल्लाते थे और एंगेल्स से समस्या का समाधान देने का अनुरोध करते थे।

अकस्मात एंगेल्स मेरी तरफ़ मुड़े और यह ध्यान में रखते हुए कि मैं कोई विदेशी भाषा नहीं जानती, रूसी में बोलने लगे। उन्होंने पुश्किन के 'येव्गेनी ओनेगिन' की बहुत-सी पंक्तियां ज़बानी सुना दीं...

उनका कविता-पाठ समाप्त होने पर मैंने तालियां बजाईं, लेकिन एंगेल्स बोले, "ओह, मेरा रूसी का ज्ञान यहीं तक सीमित है!"

मेरे मन पर उनकी अमिट छाप अंकित हुई। वे बहुत ही मिलनसार और मुक्त-हृदय थे। चन्द दिन बाद वे हमारे यहां आए, लेकिन बहुत देर नहीं रुके। स्पष्ट ही परिचय बढ़ाने के लिए आए थे। मैंने फिर कभी उन्हें बड़ी मण्डली में नहीं देखा। वे और मेरे पति एक दूसरे से मिला और विभिन्न राजनीतिक विषयों पर बातें किया करते थे। उनमें कभी-कभी बहसें और ग़लतफ़हमियां भी हो जाती थीं।

* * *

एंगेल्स के प्रति मेरा रुख़ शायद भावुकतामय था। इस बात में मैं और मेरी मित्र वेरा ज़ासूलिच एक थीं। हम दोनों कभी-कभी मिला करती थीं और जब हम एंगेल्स की बात करने लगती थीं, तो रुआंसी हो जाती थीं, क्योंकि एंगेल्स उन दिनों बहुत बीमार थे।

एक बार काउत्स्की आयीं और बोलीं कि उन्हें कहीं जाना है और मुझसे कहा कि मैं चन्द घंटों के लिए एंगेल्स के यहां चली जाऊं। मैंने

लगभग तीन घंटे एंगेल्स के साथ गुजारे। मेरे लिए उन्हें देखना कष्टकर था। मुझे पहचानकर उन्हें ख़ुशी हुई और उन्होंने मुझे वे सारी कुर्सियां दिखाईं, जिनपर मार्क्स कभी बैठे थे। उन्होंने मार्क्स के पत्र, उनके कुछ फ़ोटो और व्यंग्यचित्र भी दिखाए। यह सब कुछ उन्होंने अधिकतम हार्दिकता के साथ किया और मैं थी कि उन्हें देखती और देखकर दुखी होती रही, क्योंकि जब मैं पहली बार उनसे मिली थी तो वे बहुत ही स्वस्थ थे और अब बहुत बीमार और असहाय। उनकी बीमारी ख़तरनाक थी – गले का कैन्सर।

फिर भी अन्त समय तक सभी घटनाओं में उनकी दिलचस्पी बनी रही थी और उन्होंने बहुत कुछ लिखा। वेरा ज़ासूलिच अक्सर उन्हें देखने जाती थीं और उनके प्रति अपनी भावनाएं मुझे बताती थीं। उन्हें चाहनेवाले सभी लोग अक्सर उनके पास जाते थे और उनके साथ घंटों बिताते थे। लेकिन यह सभी जानते थे कि उनका अन्तकाल आ गया है...